राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' की
सरस कवितावली)

पूर्ण-संग्रह

विहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०

पूर्ण-संग्रह

[स्वर्गीय राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' की चुनी हुई
सरस कविताओं का संग्रह]

संकलनकर्ता
लक्ष्मीकांत त्रिपाठी
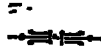
अंधकार है वहाँ, जहाँ आदित्य नहीं है;
है वह मुर्दा देश, जहाँ साहित्य नहीं है।
(पूर्ण)
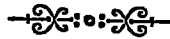
प्रकाशक
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
२९-३०, अमीनाबाद-पार्क
लखनऊ

संवत् १९८२

सजिल्द २)]

छाप लगी हुई है—
...ार सुनाई पड़ती है। यह
...सले प्रकट होता है कि कवि अपने
...नहीं रखना चाहता था। 'पूर्णजी' की पुराने

प्रकाशक
श्रीछोटेलाल भार्गव बी० एस्-सी०, एल्-एल्० बी०
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
श्रीकेसरीदास सेठ
नवलकिशोर-प्रेस
लखनऊ
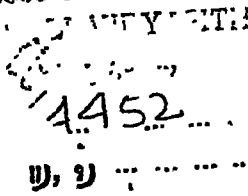
संपादक की भूमिका

राय देवीप्रसादजी 'पूर्ण' हिंदी के एक लब्धप्रतिष्ठ और सुयोग्य कवि थे। इनका देहांत हुए अभी बहुत समय नहीं हुआ। आपने समय-समय पर बहुत-सी कविताएँ लिखी थीं। उनमें से कुछ तो मौलिक थीं, और कुछ अनुवाद-मात्र। आपकी प्रायः सभी कविताएँ प्रकाशित हो गईं हैं, पर अब उनमें से बहुत-सी अप्राप्त हैं। यदि कोई हिंदी-कविता-प्रेमी 'पूर्णजी' की चुनी हुई कविताओं को एक स्थान में पढ़ना चाहता, तो उसके लिये यह संभव न था। इस कमी को पूर्ण करने के लिये यह 'पूर्ण-संग्रह' प्रकाशित किया जाता है। पाठकों के सुबीते के लिये कविताएँ विषय-क्रम से रक्खी गई हैं। संग्रहकर्ता महोदय ने प्रारंभ में 'पूर्ण-जी' का विस्तृत परिचय और उनकी कविताओं पर एक विद्वत्ता-पूर्ण समालोचना भी लिख दी है। इससे संग्रह का महत्त्व बहुत कुछ बढ़ गया है। 'पूर्णजी' की कविता के संबंध में संग्रहकार ने जो कुछ लिखा है, उसके सभी अंशों से हम सहमत नहीं, तो भी 'पूर्णजी' की कविता के पूर्ण प्रशंसक हैं। 'पूर्णजी' व्रज-भाषा के सच्चे शुभचिंतक और उद्धारक थे। 'रसिक-वाटिका' पत्रिका और 'रसिक-समाज' के द्वारा वह कविता को बहुत प्रोत्साहन दिया करते थे। उनकी कविता बड़ी ही रसीली और हृदयग्राहिणी होती थी।

'पूर्णजी' की कविता में समय-प्रवाह की स्पष्ट छाप लगी हुई है—तत्कालीन घटनाओं की प्रतिध्वनि बार-बार सुनाई पड़ती है। यह नितांत स्वाभाविक है, और इससे प्रकट होता है कि कवि अपने विचार-क्षेत्र को संकुचित नहीं रखना चाहता था। 'पूर्णजी' की पुराने

ढंग की कविता में भी समय-प्रवाह के दर्शन सुलभ हैं। उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं—पाठक स्वयं पढ़कर देख सकते हैं। हाँ, इनकी पुराने ढंग की कविता में एक बात अवश्य है, और वह यह कि अधिकांश पद्यों में प्राचीन कवियों के भावों की छाया पूरे तौर से पड़ी है। पाठक हमारे इस कथन की सत्यता को भी बिना अधिक परिश्रम के जाँच सकते हैं।

'पूर्णजी' ब्रज-भाषा के कवि थे। यद्यपि अपने जीवन के अंत-काल में उन्होंने कुछ कविता खड़ी बोली में भी रची थी, पर उनका मन ब्रज-भाषा में ही लगता था। उनकी खड़ी बोली में उर्दूपन की झलक आ जाती थी। उनके काव्य-गुरु मल्लावाँ, ज़ि० हरदोई के निवासी पं० ललिताप्रसादजी त्रिवेदी उपनाम 'ललित' कवि थे। 'ललितजी' की रचनाएँ परम मधुर और रसीली होती थीं। इस कथन में कुछ भी अत्युक्ति नहीं है कि ललितजी की अनेक रचनाएँ पुराने कवियों की उत्कृष्ट रचनाओं से टक्कर ले सकती हैं। इन्हीं 'ललितजी' के सत्संग का प्रभाव 'पूर्णजी' की कविता पर भी पड़ा, और उसके लालित्य को बढ़ाने में समर्थ हुआ।

'पूर्णजी' सनातनधर्म के कट्टर अनुयायी थे, यद्यपि थियासोफ़ी से भी उनका संबंध था। हर्ष की बात है कि मत-विशेष के प्रचारक होते हुए भी उनकी अधिकांश कविता सांप्रदायिकता के दोष से बच गई है। फिर भी यह बात निस्संकोच कही जा सकती है कि कहीं-कहीं पर उन्होंने अन्य मतों पर आक्षेप किए हैं। ऐसे स्थल बहुत कम हैं और जो हैं, उनकी रचना साधारण है।

'पूर्णजी' ने प्रतिकूल परिस्थिति में भी हिंदी-कविता की प्रत्येक रूप से सेवा की। उन्होंने लोगों को कविता करने के लिये प्रोत्साहित किया और स्वयं अपनी रचनाओं द्वारा सरस्वती का भंडार भी भरा। मातृभाषा के ऐसे सपूत का पूर्ण सम्मान होना चाहिए।

आशा है, इस संग्रह द्वारा 'पूर्णजी' की कविताओं का प्रचार होगा, और उनके साहित्यिक जीवन का स्मारक बना रहेगा। यदि इस 'पूर्ण-संग्रह' को हिंदी-संसार ने अपनाया तो हम शीघ्र ही संपूर्ण 'पूर्ण-ग्रंथावली' लेकर पाठकों की सेवा में उपस्थित होंगे।

संपादक

स्वर्गीय देवीप्रसाद 'पूर्ण'

भूमिका

जन्म

संवत् १९२५ विक्रमीय मार्गशीर्ष-कृष्ण १३ के दिवस जबलपुर के राय वंशीधर वकील के गृह में आनंद-बधाव हो रहा था। सबके मुखकमल बाल-रवि के शुभकारी दर्शन से विकसित थे। वेद-ध्वनि के साथ स्त्रियों के सोहरों एवं वाद्य-नाद से घर का एक-एक कोना प्रतिध्वनित था। कारण यह था कि वकील साहब के कुल में दीपक के तुल्य—नहीं-नहीं, बाल-रवि के समान—उसी शुभ घड़ी में एक पुत्ररत्न का जन्म हुआ था। उसी के जन्मोपलक्ष्य में यह सब मंगल-साज रचे जा रहे थे। वैदिक-विधानानुसार उस पुत्र का नाम देवीप्रसाद रक्खा गया। हमारे स्वनामधन्य चरित-नायक वही हैं।

वंश-परिचय

राय वंशीधर चित्रगुप्त-वंशोत्पन्न श्रीवास्तव (दूसरे) कायस्थ थे। उनके पूर्वजों को बादशाही ज़माने में 'राय' की पदवी मिली थी, जो पुरुषा-क्रम से अभी तक वंश में चली आती है। उनके पुरुषा कानपुर-ज़िले के भदरस या भद्रपुर-ग्राम में, जो तहसील-घाटमपुर में घाटमपुर स्टेशन से लगभग २ मील पर स्थित है, रहते थे। हिंदी के कविरत्न भूषण और मतिराम का निवासस्थान 'तिकवाँपुर' अथवा त्रिविक्रमपुर भी वर्तमान घाटमपुर तहसील में ही है और भदरस से बहुत दूर नहीं है।

पूर्णजी की जीवनी लिखने के लिये यदि किसी अन्य प्रकार की सामग्री उपलब्ध न होती तो भी उनके रचित सब छोटे-मोटे ग्रंथों से ही उनके जीवन, स्वभाव, धार्मिक, राजनैतिक एवं सामाजिक विचारों का भली भाँति पता लग सकता है। अपने बनाए 'राम-रावण-विरोध' में, जिसका पूरा परिचय उचित स्थान पर दिया जायगा, वे अपना परिचय यों देते हैं—

सुमिरि जस पुलकि उठत मम गात ;
श्रीयमुना जननी शुभ मेरी श्रीवंशीधर तात ;
सद्र मद्रपुर सुठि गृह मेरो शुचि सुछंद सुहात ;
'पूरन' चित्रगुप्तवंशी कवि-संगति लहि हरखात ।

पूर्णजी का वंश-वृक्ष इस प्रकार है—
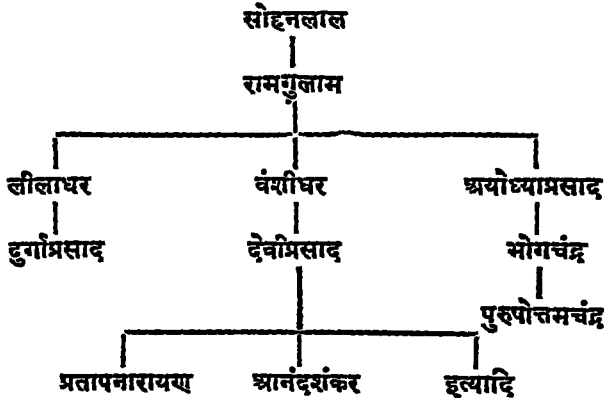
राय रामगुलामजी क़ानूनगो परम संयमी थे। राय अयोध्याप्रसादजी क्रमशः इंस्पेक्टर पुलिस के पद तक पहुँचे और उनके पुत्र भोगचंद्र डिपुटीकलेक्टर थे, परंतु वह युवावस्था ही में परम धाम को सिधार गए। उनके सुपुत्र राय पुरुषोत्तमचंद्र कानपुर में एक प्रसिद्ध पुरुष हैं।

राय दुर्गाप्रसादजी बालाघाट (मध्य-प्रदेश) में वकील हैं।

राय वंशीधरजी, जैसा हम कह चुके हैं, जबलपुर में वकील थे। अतएव यदि परिस्थिति का प्रभाव किसी मनुष्य के जीवन पर पड़ता है, तो पूर्णजी के संबंध में वह सर्वथा उनके पक्ष में थी। एक शिक्षित परिवार में जन्म ग्रहण करना सबके भाग्य में नहीं होता। मनुष्य के जीवन को समझना ऐसी विकट समस्या है कि कोई भी यह नहीं कह सकता कि किसी शिक्षित सच्चरित्र परिवार की संतान भी शिक्षित एवं सच्चरित्र होगी। अस्तु—

अभी यह नवजात होनहार बालक ४ वर्षों का भी न हो पाया था कि राय वंशीधरजी को कराल काल ने आ घेरा। पितृहीन बालक देवीप्रसाद के लालन-पालन का भार उनके चचा राय लीलाधरजी पर पड़ा। उन्होंने ही उन्हें उच्च शिक्षा प्राप्त कराई।

अध्ययन

बहुत लोगों की प्रतिभा का विकास कुछ समय पाकर होता है; उनकी ईश्वर-प्रदत्त शक्तियों की स्फूर्ति कुछ काल के अनंतर होती है। उनकी प्रतिभा-सूर्य की ज्योति निर्धनतादि आवरणों से आच्छादित होने के कारण, अथवा उनकी शक्तियों की कली अनखिली होने के कारण, कुछ काल तक उनमें और साधारण मार्गगामी मोहन, सोहन में कुछ अंतर नहीं दृष्टिगोचर होता है। परंतु कुछ महापुरुषों की प्रखर प्रतिभा बाल्य-काल ही में अपनी विचित्रता के लक्षण प्रकट करती है। साधारण वार्तालाप में अथवा कौतूहल में बालक की बुद्धि का परिचय किसी भी चतुर पुरुष को मिल सकता है।

देवीप्रसाद की बुद्धि एवं विद्याभिरुचि उस छोटी अवस्था में भी असाधारण थी। उन्हें प्रथम ही से कविता और धार्मिक ग्रंथों के पढ़ने की विशेष रुचि थी। विद्यार्थिजीवन ही में उन्हें काव्य-

रचना का चस्का पड़ गया था और वह संगीत, हारमोनियम, सितार, तबला तथा अन्य बाजों में निपुण हो गए थे। नाटक में भाग लेने का भी उन्हें बड़ा शौक़ था। इन कामों के अतिरिक्त पठन-पाठन में भी वह यथेष्ट समय व्यतीत करते थे। देशहित-कार्यों में उनका समय बहुत लगता था। जब हम उनकी परिपक्वावस्था के जीवन का वर्णन करेंगे, तो यह पूर्णरूपेण ज्ञात हो जायगा कि बाल्यावस्था में ही उनके भविष्य जीवन के सब लक्षण विद्यमान थे। उन्हीं का उत्तरोत्तर विकास होता गया।

अपने क्लास में देवीप्रसाद का स्थान सर्वश्रेष्ठ रहता था। सन् १८८१ में उन्होंने मिडिल की परीक्षा पास की। अनंतर सन् १८८४ में कलकत्ता-युनिवर्सिटी की मैट्रीक्युलेशन-परीक्षा में उनका स्थान प्रथम रहा। उस समय कलकत्ता के विश्वविद्यालय में पंजाब से लेकर हैदराबाद (निज़ाम) और आसाम के सुदूर पूर्व स्कूलों के विद्यार्थी भी परीक्षा देते थे। उन सबोंमें प्रथम रहना मामूली बात नहीं है। एफ़० ए० की परीक्षा में भी उन्होंने सर्वोत्तम स्थान प्राप्त किया। सन् १८८८ में उसी विश्वविद्यालय की बी० ए०-परीक्षा में भी आपने बहुत उत्तम स्थान प्राप्त किया। बी० ए० के उपरांत सब लोगों की सम्मति हुई कि वह पैतृक व्यवसाय वकालत करें। निदान कलकत्ता-युनिवर्सिटी से उन्होंने बी० एल्०-परीक्षा पास की और तीसरा स्थान प्राप्त किया। यह परीक्षा पास करने के कुछ समय उपरांत राय देवीप्रसादजी ने कानपुर में वकालत करना प्रारंभ किया, और बहुत शीघ्र वहाँ के वकीलों में सर्वोच्च पद प्राप्त किया। विशेषकर दीवानी में आपकी योग्यता बहुत बढ़ी-चढ़ी थी।

सार्वजनिक सेवा

जहाँ तक बन सका, राय साहब ने सार्वजनिक कार्यों में भाग लिया। यदि स्वर्गीय पं० पृथ्वीनाथजी वकील कानपुर के सार्वजनिक

जीवन के स्थापक थे, तो उसको उन्नति-पथ पर चलाने का श्रेय राय देवीप्रसाद ही को प्राप्त है, और पं० पृथ्वीनाथ के मरणोपरांत यदि राय साहब न होते, तो कानपुर का घोर दुर्भाग्य होता।

देखिए सन् १९०६ में वह किन शब्दों से लोगों में नवीन जीवन का संचार करते हैं—

"है वीरों का काम देश की सेवा करना;
है वीरों का काम क़दम को आगे धरना।
देशोन्नति का काम नहीं दस-बारह दिन का;
यह है उनका काम मक़्सद है यह जिनका।
करके प्रण अच्छे काम का मुँह को मोड़ेंगे नहीं;
हम कामयाब जब तक न हों, कोशिश छोड़ेंगे नहीं।

और देखिए उस समय की दशा का कैसा चित्र खींचते हैं—

भरतखंड का हाल ज़रा देखो; है कैसा;
आलस का जंजाल ज़रा देखो है कैसा।
ख़ुदग़र्ज़ी का नशा, खोलकर आँखें देखो;
ज़रा फ़ूट की दशा, खोलकर आँखें देखो।
है शेख़ी दौलत की कहीं; बल का कहीं गुमान है;
है ख़ानदान का मद कहीं, कहीं नाम का ध्यान है।

ख़ैर, राय साहब ने कानपुर के सार्वजनिक जीवन को सम्हाला। आप बहुत दिनों तक कानपुर-म्युनिसिपल बोर्ड के सभासद् तथा कानपुर-प्यूपिल्स एसोसिएशन के सभापति रहे। उनके मरणोपरांत अंतिम संस्था के कार्यक्रम का कुछ पता नहीं चला। कानपुर की धार्मिक अवस्था की दुर्दशा देखकर उन्होंने पहले सनातनधर्मप्रवर्धिनी सभा का प्रबंध अपने हाथ में लिया और फिर उसके स्थान में श्रीब्रह्मावर्त-सनातनधर्म-महामंडल की स्थापना की, जो आज तक उनके पश्चात् श्रीबाबू विक्रमाजीत-

सिंह की अध्यक्षता में उत्तरोत्तर उन्नति प्राप्त कर रहा है। सनातन-धर्म-कॉलेज भी स्थापित हो गया है।

'पूर्ण'जी बहुत अच्छे वक्ता थे। हमारा तो ख़याल है कि कानपुर के नवीन सार्वजनिक जीवन में उनके समान कोई वक्ता नहीं हुआ, और न अभी तक उनका ख़ाली किया हुआ स्थान कोई प्राप्त कर सका है।

दक्षिण-आफ्रिका में भारतवासियों पर अत्याचार का प्रतिरोध करने के लिये कानपुर में, लाटूश-रोड पर, जो सभा हुई थी, उसमें आप-की 'स्पीच' बड़ी करुणाजनक थी। श्रोताओं के नेत्रों से अश्रु-धारा बह निकली थी। आपने बड़े आवेश से कुछ इस प्रकार कहा—"यदि दक्षिण-आफ्रिका के गोरों को भारतवर्ष को प्रतिवर्ष कोयला भेजने का गर्व है और उसी के बल वे हमारे ऊपर अत्याचार कर रहे हैं, तो हमारा भारत-सरकार से कहना है कि हमें ऐसा घृणित कोयला दरकार नहीं, अपने कोयले से वही गोरे अपना मुँह काला कर लें।"

कानपुर में जब स्व० मान० गोखले महोदय का अँगरेज़ी में व्याख्यान हुआ था, तो राय साहब ने बड़े उत्तम रूप से उनकी लंबी 'स्पीच' का पूरा आशय हिंदी में सुनाया था।

एक समय की बात है कि सनातनधर्म-सभा के जलसे के प्रथम दिवस कोई उपदेशक न पधार सके, तब 'पूर्ण'जी ही ने लगभग ३ घंटे में एक बड़ा मनोहर व्याख्यान दे डाला, और खूबी यह थी कि श्रोतागण थके नहीं।

कानपुर में जब युक्त-प्रांतीय राजनैतिक-सम्मेलन हुआ था, तो उसमें आप अभ्यर्थना-समिति के सभापति थे। उस समय भी आप-की 'स्पीच' उत्तम थी।

कानपुर में जब श्रीमान् मालवीयजी हिंदू-विश्वविद्यालय के डेपुटेशन के साथ चंदे के लिये आए थे, तो आपने एक उत्तम स्वागत-

कविता पढ़ी थी, जो अन्यत्र संग्रह में प्रकाशित है। आपने ५ सहस्र रुपए दान भी दिए थे।

१९१९ में गोरखपुर के युक्त-प्रांतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के आप सभापति थे। उस समय की आपकी वक्तृता परमोत्तम थी।

धार्मिक और सामाजिक विचार

पूर्णजी कट्टर सनातनधर्मी थे। यद्यपि सनातनधर्म के उत्सवों में वह कभी-कभी विपक्षियों को बेभाव की सुनाते थे, जो शायद इतने प्रतिभाशील पुरुष के लिये सर्वथा अयोग्य था, क्योंकि साधारण कीच-कचौदन में फँसना और उछल-कूद मचाना कोई बड़ा श्लाघ्य कार्य नहीं है, तथापि, जैसा 'प्रताप' ने उनकी मृत्यु के अनंतर लिखा था, उनके इस व्यर्थ विवाद में भी उनकी विचित्र प्रतिभा का परिचय मिलता था। स्वामी दयानंद सरस्वती और आर्य-समाज को वह कुछ संकुचित और अनुदार दृष्टि से देखते थे।

आर्यसमाजी भाइयों से क्षमा माँगने के अनंतर हम उदाहरण के लिये 'पूर्ण'जी के "सत्यधर्म के खोजनेवालों को चेतावनी"-नामक एक 'पैंफ़लेट' से कुछ उद्धरण यहाँ देते हैं—

"भाई भोले-भाले तुम्हें, बहकावैं, भूले भुलावैं और को।
ऋषि मुनियों की बात न मानैं, वेदों का सिद्धांत न जानैं।
मनमानी, बरजोरी, प्यारे कटाक्ष चलावैं ॥ भाई० ॥
नश्तरबाजी बात बनादी, नूतन मत की करी मनादी।
सत्य बिगाड़ें, अर्थ चिथाड़, बारंबार छपावैं ॥ भाई० ॥
की न क़दर भगवद्वचनों की, श्राद्ध कही जीते पुरुषों की।
हलुआ आप, जौ तिल बाप, क्या ही 'डिनर' ठहरावैं ॥ भाई० ॥
धातु-शिला को अशुच बताया, स्याही-कागज पर मन भाया।
चित्र बनाय, प्रेम बढ़ाय, कमरे में लटकावैं ॥ भाई० ॥
यक तो था अभाव विद्या का, उस पर भी कलिकाल।

सिर पर हुआ सवार गुरूडम, बुद्धि हुई पामाल।
बिना खोज ही धर्म-कर्म पर फेर दिया हरताल॥ मार्ई मोले०॥

परंतु यह भी स्मरण रहे कि 'पूर्ण'जी के विपक्षी भी उनकी बड़ी ख़बर लेते थे और कभी-कभी उन्हें साफ़-साफ़ शब्दों में गाली तक देते थे। इन पंक्तियों के लेखक ने एक बार कानपुर रेल-बाज़ार में आर्यसमाज के प्लैटफ़ार्म से एक धर्मांध को 'पूर्ण'जी को "मूर्ख" और "बगुला-भगत" कहते सुना है। यदि धार्मिक कट्टरपन के साथ प्रतिभा का समावेश हो, तो कोई आश्चर्य नहीं यदि विपक्षी के सर्प-बाण का उत्तर गरुड़-बाण से दिया जाय। कुछ भी हो, यद्यपि आर्यसमाज और उसके प्रवर्तक की ओर राय साहब की नीति अनुदार थी, तथापि निस्संदेह वह वास्तव में सच्ची धार्मिकता के पक्ष में थे। यदि हृदय में विशुद्ध धार्मिकता और प्रेम का वास नहीं है, तो केवल ऊपरी आडंबरों और संस्कारों से कोई लाभ नहीं। घर छोड़कर ही यदि भक्ति उत्पन्न होती है, तो व्याघ्र, भालु आदि हिंस्र और वन्य जंतुओं को हरि-भक्ति की मूर्ति क्यों न कहा जाय? हृदय का प्रेम और बात है, बाह्य विधान तो केवल गौण पदार्थ हैं। यही विचार नीचे की पंक्तियों में व्यक्त हैं।

(१)

त्यागे बसती के लाभ ह्वैहै कहा मेरे मीत,
पागे मन जौपै अजौं विषय विधानन में;
ह्वैके बनवासी लखौ सिंहन न हिंसा त्यागी
साधुता बिराजी नहीं रीछन के आनन में;
काम-मद-वासना मतंगन की दूनी रही,
ऊनी रही मीनन की वासना पुरानन में;
कानन के काचे अजौं मोहि परैं तानन में,
कीरति कुरंगन कमाई कौन कानन में।

(२)

'पूरन' सप्रेम जो न लेत सुख राम-नाम,
टीका अभिराम है निकाम वाहू आनन में;
उर में नहीं जो हरि-मूरति बिराजी मंजु,
कौन महिमा है कंठमालन के दानन में;
आसन को नेम बिन बासना नसाए मिथ्या
बिनु भक्ति-ज्ञान होत कहा वृथा कानन में;
चाहिए सु नीति धर्म कर्म के बिधानन में,
रहिए सुजानन में चाहे घोर कानन में।

धार्मिक सहिष्णुता के पक्ष में भी आपने पूरा ज़ोर दिया है। वास्तव में सब धर्म एक ही ईश्वर की आराधना करते हैं। अंतर केवल भाषा का है।

बंदे हो सब एक के, नहीं बहस दरकार;
है सब क़ौमों का वही, ख़ालिक औ' करतार।
ख़ालिक औ' करतार, वही मालिक परमेश्वर;
है ज़बान का भेद, नहीं मानी में अंतर।
हो उसके बरअक्स करो मत पर्चे गंदे;
कहकर "राम", "रहीम", मेल रक्खो सब बंदे।

ठीक यही विचार महात्मा कबीरदास के हैं। सनातनधर्मी होते हुए 'पूर्ण'जी थियोसोफ़िकल सोसाइटी के भी सदस्य थे; और अपने नाम के बाद F. T. S. भी अन्य उपाधियों के साथ बड़े गर्व से लिखते थे। उस समय की पुरानी प्रथावाली थियोसोफ़िकल सोसाइटी की दशा कुछ और थी। उसकी नीति अधिक उदार, व्यापक और सार्वभौमिक थी। परंतु नई प्रथा की थियोसोफ़िकल सोसाइटी की गति शायद कुछ अनुदार और संकीर्ण हो गई है। अब उसमें कूटनीति, 'गुरुडम' और कट्टरपन का समावेश हो गया है। अस्तु।

श्रीमती एनी बीसेंट की 'पूर्ण'जी बड़ी प्रतिष्ठा करते थे। यहाँ तक कि एक वार सनातनधर्म-सभा के उत्सव में आपने श्रीमतीजी को आमंत्रित किया था। इस पर कानपुर की पंडित-मंडली 'पूर्ण'जी से कुछ अप्रसन्न हो गई थी।

'पूर्ण'जी की रचना में कहीं-कहीं मिसेज़ बीसेंट के विचारों की झलक देख पड़ती है। उदाहरणार्थ स्वदेशी कुंडल की यह कुंडलिया लीजिए:—

परमेश्वर की भक्ति है मुख्य मनुज का धर्म ;
राजभक्ति भी चाहिए सच्ची सहित सुकर्म।
सच्ची सहित सुकर्म देश की भक्ति चाहिए।* इत्यादि।

इसमें "परमेश्वर की भक्ति", "राजभक्ति", और "देश-भक्ति के क्रम में मिसेज़ बीसेंट के " for God, crown and country "वाले सिद्धांत की छाप लगी हुई प्रतीत होती है। आजकल बहुत कम लोग इससे सहमत होंगे।

'पूर्ण'जी का वेदांत-विषयक ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था। गीता, पंचदशी, और भगवान् शंकर के ग्रंथों का अनुशीलन उनके नित्य-कर्म का प्रधान अंग था। भगवान् शंकराचार्य के प्रसिद्ध वेदांत-ग्रंथ "तत्त्वबोध" और "मृत्युंजय" का आपने हिंदी में छंदोबद्ध अनुवाद भी किया है। और भी अनेक रचनाएँ उनके वेदांत-ज्ञान की परिचायक हैं। संस्कृत में अच्छी योग्यता होने के कारण आपको धार्मिक ग्रंथों का अच्छा ज्ञान था।

---

* "वसंतवियोग"-नामक काव्य के अंत में भी इसी प्रकार का भाव है।

"श्रीजगदीश्वर की भक्ति चाहिए पूरी ;
निज अवनीश्वर की भक्ति चाहिए पूरी।
इनहीं दोनों के साथ उचित है प्यारो ;
उद्यान-भूमि की भक्ति चित्त में धारो।"

"धर्मकुसुमाकर"-नामक धार्मिक पत्र को भी आपने अंत समय तक केवल अपने सहारे निकाला।

'पूर्ण'जी के सामाजिक विचार सनातनधर्मांदोलन के साथ थे। अतएव आप विधवा-विवाह के कट्टर विरोधी थे।

'पूर्ण'जी गोरक्षा के बड़े कट्टर पक्षपाती थे। अयोध्या के बकरीद-वाले दंगे के अभियोग में आपने अपनी शक्ति-भर अभियुक्तों को अपनी वकालत से सहायता दी, और अभियोग समाप्त होने पर बड़ी दौड़-धूप के बाद प्रांतीय सरकार से अयोध्या में गोवध बंद करने की आज्ञा ले ली। उनके अद्भुत गो-प्रेम का अनुमान करने के लिये "न अनाथ ऐसी यह गाई थीं" और "कान्ह तुम्हारी गैयाँ कहाँ गईं"-नामक कविताएँ देखिए। यहाँ पर हम केवल कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करके संतोष करेंगे।

"वो तवाँगरी, वो बहादुरी, वो दिमाग़ों-चेहरे की रोशनी,
वो गऊ के धन का ही माल था;
थी जो उपनिषद् की फ़िलासफ़ी, वो प्रभाव की भरी शायरी,
उसी दूध का वो उबाल था।"

"कान्ह तुम्हारी गैयाँ कहाँ गईं;
हाय कहाँ जमुना की कूलैं, कुंजन की घमछैयाँ;
कृष्णा, कपिला, लाली, पीली, कबरी औ करछैयाँ;
× × × ×
कहाँ गए परवत माखन के, दूध की ताल-तलैयाँ;
× × × ×
गो-वध से अब हिंद-पिता की टूटि जाय करिहैयाँ।"

राजनैतिक विचार

आपके राजनैतिक विचार 'नरम-दल' के थे। यह बात उनके पुस्तकों से भी भली भाँति प्रदर्शित होती है। वह अपने विचारों को

बार-बार कई स्थानों में दुहराते हैं, जिसकी शायद उस समय आवश्यकता हो, परंतु हमारे ख़याल में आजकल के 'लिबरल' या 'नरम-दल'वाले भी इतने अधिक पिष्ट-पेषण को पसंद न करेंगे। स्वदेशी कुंडल की भूमिका में वह कहते हैं—"मेरे मत से, मेरे क्या, बड़े-बड़े नीतिवेत्ताओं के मत से, एक्स्ट्रीमिस्ट (गरम)-दल की प्रणाली से देश का भला नहीं हो सकता, किंतु उससे वृथा ही राजा और प्रजा में विरोध बढ़ता है।......सूरत की इंडियन नेशनल कांग्रेस का जलसा इन लोगों की जूतायाज़ी ने नाश कर दिया।"

परंतु यह नहीं कहा जा सकता कि आजकल के राजनैतिक वायु-मंडल में उनके क्या विचार होते। जो हो, उनके सच्चे देश-प्रेम पर कोई लांछन नहीं लगा सकता।, उनके स्वदेशी वस्तु-स्वीकार, ऐक्य, हिंदू-मुसलिम-एकता, तथा भारतीय समृद्धि, उन्नति आदि विचारों को किसी भी दलवाले बुरा नहीं कह सकते। उस समय तो कानपुर-जनता ने उनको अपना राजनैतिक नेता मान रक्खा था, और किसी अवसर पर भी उनकी निंदा राजनैतिक विचारों के कारण नहीं हुई। उनकी स्वच्छंदता और निर्भीकता के सभी क़ायल हैं। यह कहना अनुचित न होगा कि उस समय वह मालवीयजी के विचारों के थे। सन् १९०९ के "मार्ले-मिंटो-सुधारों" की प्रशंसा वह कई स्थानों में करते हैं। *

* दे० "नवीन संवत्सर का स्वागत"—

"मृगवाहन' ने मृगवाहन की कुछ सौम्यता दिखाई;
मार्ले-मिंटो-कृत रिफ़ार्म की सुखद चाँदनी छाई।
गत चुनाव में दयाभाव से किया बड़ा आश्वासन;
हो अनाथ भारत का रक्खा उसी हाथ में शासन।"

"नए सन् का स्वागत"—

"कौंसिल-संवृद्धि-सिद्धि हो पूर्ण रूप से।"

परंतु नरम-दल के अनुयायी होते हुए भी 'पूर्ण'जी अकर्मण्यता के पक्ष में कदापि नहीं थे। देखिए, इस अन्योक्ति द्वारा नेता-रूपी इंजन अपने 'अलाल' अनुयायियों की कैसी शिकायत करता है—

चल ना करत काठ दल है कतार सारी,
गिनती गिनन ही को साथी ये घनेरे हैं;
देखिकै चढ़ाई आगे पीछे को करत खींच,
जानिकै उतार वृथा ठेलत करेरे हैं।
इंजन सबल वीर धूम सों कहत बात,
एक तौ बिघन मग माहिं बहुतेरे हैं।
तापै ये अलाल बिन बूझ बिन सूझवारे,
डब्बे मुरदार—यार पीछे परे मेरे हैं।

'पूर्ण'जी के स्वदेश-प्रेम का 'स्वदेशी-कुंडल' भली भाँति द्योतक है। स्वदेशी के संबंध में उनके विचारों का विस्तृत परिचय "स्वदेशी-कुंडल" की आलोचना में दिया जायगा।"

हिंदी-मुसलिम-एकता का प्रश्न भारतवर्ष के लिये नया नहीं है। इस कठिन समस्या पर उनके विचारों की बानगी देखिए।

"मुसलमान हिंदुओ! वही है क़ौमी दुश्मन;
जुदा-जुदा जो करै फाड़कर चोली दामन।"
"बरस कई सौ पेश्तर की हक़ ने तहरीक;
दो भाई बिछुड़े हुए हो जावें नज़दीक।
हो जावें नजदीक हिंद में दोनों मिलकर;
लड़े-भिड़ें, फिर एक हुए कर मेल बराबर।
यह दोनों का साथ रज़ाए रब से समझौ;
इन दोनों को मिले हुए अब बरस कई सौ।"

वास्तव में हिंदुस्तान की राजनैतिक दशा अत्यंत शोचनीय है।

"भरतखंड का हाल ज़रा देखो है कैसा ;
आलस का जंजाल ज़रा देखो है कैसा।
ज़रा फूट की दशा, खोलकर आँखें देखो ;
खुदग़रज़ी का नशा, खोलकर आँखें देखो।
है शेख़ी दौलत की कहीं; बल का कहीं गुमान है ;
है ख़ानदान का मद कहीं, कहीं नाम का ध्यान है।"

परंतु कवि को भारत से बहुत आशा है। वह उत्कट आशा-वादी है।

"सज्जित होगी इस भाँति मोद-फुलवारी ;
श्रम करें धीरता-संग' सुजन अधिकारी।
परहित की शाखावली करेगी छाया ;
असहाय, दीन सुख पावेंगे मन-भाया।
सुख्याति-सुगंधित पवन चलेगी प्यारी ;
होंगे बहु मंगल वर विहंग रवकारी।
उद्योग, योग के होंगे सरवर, वापी ;
पीकर जल होंगे तृप्त सुशील प्रतापी।
आनंद-चंद्रिका की होगी उजियाली ;
'पूरन' प्रबोध रवि चमकेगा द्युतिशाली।
इस भाँति निवासी-वर्ग मोद पावेगा ;
तुम धैर्य करो फिर भी वसंत आवेगा।"

स्वभाव

राय साहब का स्वभाव बहुत सरल था। अभिमान तो उन्हें छू तक नहीं गया था। आपका वार्तालाप बड़ा मनोहर होता था। विद्वानों एवं कवियों की अभ्यर्थना के हेतु आपका हाथ सदा बढ़ा और द्वार खुला रहता था। कानपुर के बहुत निर्धन कवियों को आप ही के द्वार का सहारा था।

राय साहब में छोटों-बड़ों को एक में मिलाने की अद्भुत शक्ति थी। जो लोग अपने सामाजिक उच्च पदों के कारण अपने निम्न पदवालों से मिलने में संकोच करते थे, उन्हें एक दूसरे से प्रेमालिंगन कराने में वह बड़े प्रवीण थे।

रहन-सहन में आपकी सादगी अनुकरणीय थी। इतनी अच्छी वकालत होने पर भी उन्होंने कभी महाराज प्रयागनारायण के मंदिर (जिसको वैकुंठ भी कहते हैं) को छोड़कर बँगला में निवास करना पसंद नहीं किया—क्यों ? आपका कहना था—"जब मुझे जीवितावस्था ही में वैकुंठ में निवास करने का सौभाग्य प्राप्त है, तो उसे छोड़कर अन्यत्र वास करना कौन-सी बुद्धिमत्ता का काम है ?" आपको रामनामी अँगौछा ओढ़े गंगास्नान के लिये जाते हुए बहुतों ने देखा होगा। सनातनधर्म के उत्सवों के लिये स्वयं अपने हाथ से भी कुरसी, दरी आदि बिछवाने में वह मान-हानि नहीं समझते थे।

गाने-बजाने की तो आपकी इतनी रुचि थी कि चाहे जितना कार्य करना हो, इनके लिये वह अवश्य कुछ-न-कुछ समय ढूँढ़ निकालते थे। प्रत्येक रविवार को अपने मकान पर धार्मिक चर्चा से आप उपस्थित पुरुषों को तृप्त करते थे।

नाटकों का आपको बड़ा शौक़ था। प्रतिवर्ष अपने ग्राम में वह अपने व्यय से धनुष-यज्ञ कराते थे और उसमें स्वयं केवट का 'पार्ट' लेते थे। उस समय उनकी मनोहर तत्काल-रचित कविता और विनोद का अपूर्व आनंद होता था। जिस सच्चे प्रेम से वह राम-लक्ष्मण-सीता के चरणों को धोते और "प्रेम-लपेटे अटपटे बैन" से उनसे बोलते थे, वह देखते ही बनता था। धनुष-यज्ञ के साथ-साथ नारदमोह-नाटक या हरिश्चंद्र-नाटक भी वह खेलते थे। आसपास के गाँवों से बहुत-से नर-नारी उनके अभिनयों को देखने आते थे।

राय साहब को होमियोपैथिक चिकित्सा का अच्छा बोध था। ग़रीबों को वह अपने मकान पर स्वयं होमियोपैथिक ओषधियाँ बाँटते थे।

मरण

जीवन-लीला का वर्णन लिख चुकने पर अब लेखनी कलेजा थामकर यह सोचकर ठिठक रही है कि उस शोकमयी घटना को लिखना है, जिससे कोई भी जीवधारी कभी नहीं बच सका है। फ़रवरी-मास में महात्मा गोखले की मृत्यु पर शोचसूचक कविता लिखकर मानों कवि की शोकाकुलित लेखनी सर्वदा के लिये रुक गई। इसके बाद की लिखी कोई कविता हमारे देखने में नहीं आई, शायद उनकी अंतिम कविता यही थी। ईस्टर की छुट्टियों में गोरखपुर के प्रांतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन से लौटने के अनंतर राय साहब साधारण ज्वर से आक्रांत हुए। कौन कह सकता था कि यह खिला हुआ फूल अपने समय के पूर्व इतनी जल्दी कुम्हला जायगा? कौन कह सकता था कि केवल ४७ वर्ष की आयु में यह रत्न विलीन हो जायगा? कानपुर के प्रसिद्ध डॉक्टर, वैद्य और हकीम नित्य चिकित्सार्थ पूर्णजी के यहाँ आते थे। परंतु होमियोपैथिक और आयुर्वैदिक औषधों के अतिरिक्त अन्य किसी औषध का उन्होंने सेवन नहीं किया! दशा दिन-दिन क्षीण होती गई। लगभग एक मास की बीमारी के अनंतर उनकी दशा असाध्य हो गई। इस बीमारी की अवस्था में भी उन्हें संगीत का शौक़ नहीं छूटता था। आपने एक-आध गायक को नित्य कुछ देर तक गाना सुनाने के लिये नियुक्त कर लिया था। उन्होंने मरण के कुछ दिन पूर्व औषध-सेवन त्याग दिया और कहते थे कि मैं अब इन सांसारिक औषधों की अभिलाषा नहीं करता। मेरी एक-मात्र औषध ब्रह्मानंदामृत है। अपने छोटे पुत्र से शरीर-भर में चंदन-लेप कराके उस पर राम-राम

अंकित कराते थे। भगवद्भक्ति पर वार्तालाप करते थे। आपने अंत-समय अपने धर्मगुरु स्वामी आत्मानंदजी स्वयंप्रकाश सरस्वती का भी स्मरण किया। स्वामीजी बिठूर में निवास करते थे, परंतु उन दिनों हिमालय-पर्वत गए हुए थे। स्वामीजी तार पाकर अपने शिष्य को देखने दौड़े आए।

इस प्रकार लगभग ४७ वर्ष की अवस्था में ३० जून १९१५ को लगभग १२ बजे दिन के समय भगवद्भजन में लीन 'पूर्ण'जी ने अपनी मानव-लीला समाप्त कर कैलास की यात्रा कर दी।

इस विषाद-पूर्ण घटना को सुनकर नगर में सन्नाटा छा गया। बाज़ार बंद हो गया। कचहरी भी बंद हो गई। दाह-कर्म के समय नगर के अनेक प्रतिष्ठित सज्जन उपस्थित थे।

"पूर्ण"-वियोग

"पूर्ण"जी के मरण पर शोक प्रकाश करने के लिये कानपुर में दो सभाएँ हुईं—एक क्राइस्ट-चर्च-कॉलेज में ज़िला-कलेक्टर के सभापतित्व में, जिसमें अन्य सज्जनों के अतिरिक्त रेवरेंड एम्० एस्० डगलस, प्रिंसिपल क्राइस्ट-चर्च-कॉलेज, और बाबू आनंदस्वरूप वकील ने चुने हुए शब्दों में 'पूर्ण'जी के गुणों का गान किया। दूसरी सभा महाराज प्रयागनारायण के मंदिर (वैकुंठ) में बाबू विक्रमाजीत-सिंहजी के सभापतित्व में हुई। इस सभा में कानपुर की पंडित-मंडली ने भी अपना हार्दिक शोक प्रकाश किया। रसिक-समाज के कवियों ने भी अपने शोक-सूचक छंद पढ़े। उनमें से कुछ हम यहाँ देते हैं। हिंदी की प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं ने उनकी अकालमृत्यु पर हृदय से शोक मनाया—

रामरत्न सनाढ्य (रतनेश)

काहे दिवि-द्वार दिव्य कनक-कलश साजे

काहे धूप-धूम की सुगंध महा आई है;

तुनुकमिजाजी कवि लोगन को राजी करै
पूरन के बिना दूजो कौन दरसात है ;
धरम सनातन को चाहै पति दूजो मिलै
रसिक-समाज तो अनाथ ही लखात है । ४ ।

गदाधरप्रसाद ब्रह्मभट्ट (नवीन)

पूरन प्रतापी जेहि औसर तजे हैं प्रान
शोकमई भई मही कानपुर की महान ;
कीन्हों हाकिमन छुट्टी सकल अदालत की
बंद की सराफन बजाजन सबै दुकान ।
रथी साथ चले बंधुवर्ग बिलखात सबै
मित्रगन हिंदू अँगरेज औ मुसलमान ;
दाह समै नाहीं घन-गरजि फुहार डारी
मारि डिडकारी भारी रोय उठो आसमान । १ ।
नाखो चोखो सुंदर बगीचा कुसुमाकर को
बनि बनमाली निज हाथन सो धरिगो ;
आगम-निगम औ पुरानन को लैके मतो
बचन-सुधा सों सींचि हरो-भरो करिगो ।
सगरे पुराने भए जात हुते जेते गुप्त
तिन्हैं प्रगटाय चुपचाप आप टरिगो ;
झंडा-बरदार हाय धरम सनातन को
पूरन प्रतापी या जगत तें निसरिगो । २ ।
सुरक्षित रसिक-समाज को सचेत कीन्हो
प्रथम-प्रथम जब कानपुर आए हैं ;
वाटिका रसिक-पत्र मासिक निकारि नीके
ताहि छपवाय देश-देश पठवाए हैं ।
धरम सनातन को खंभ गाड़ि दीन्हो दृढ़

हुजरा पताके चारौं ओर फहराए हैं ;
पूरन प्रतापी राय देवीपरसाद पूर्ण
ब्रह्मरूप ह्वै के ब्रह्मलोक को सिधाए हैं । ३ ।

मन्नीलाल स्वर्णकार (व्रजचंद)

भारत-जननि को सुयोग वर पुत्र वीर
हिंद को हिंदी हिंदवासिन को प्यारो है ;
प्रेमी नागरी को धेनु रक्षक सुमुक्षु, विज्ञ
रसिक समाजिन के नैनन को तारो है ।
धरम सनातन को प्रवल पताका तुंग
खंभ कविताई को न दूसरो निहारो है ;
कौन-कौन गुण मैं बखानौं तासु साँई पूर्ण
तजि यह लोक सुरलोक को सिधारो है । १ ।
रचि-रचि काव्य बहु भाँतिन अनूठी कौन
व्यंग-ध्वनि-भूषण की चरचा चलाइहै ;
लिखि-लिखि लेख शुद्ध सरस गँभीरता सों
कौन देश-पत्रन में भेजि प्रगटाइहै ।
दै-दै वक्तृता को मंजु मन को हरनहारी
सकल सभा में कौन मोद बरसाइहै ;
बिना रावरे के आजु पूर्ण कानपूर माँहि
हाय नागरी को अब कौन अपनाइहै । २ ।

वास्तव में उपर्युक्त छंद कवियों के हृदयों के उद्‌गार हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं ।

हिंदी-साहित्य और कानपुर का जिला

हिंदी-साहित्य की उन्नति में कानपुर-ज़िले का भाग विशेष महत्त्व का है । स्थानीय किंवदंतियों के अनुसार बिठूर में महर्षि वाल्मीकि का आश्रम था और कानपुर के दक्षिण कालपी नगर

के पास यमुना के एक द्वीप में महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास का जन्म हुआ था। यदि इन कथाओं में कुछ सार है, तो संस्कृत-रामायण और महाभारत के रचयिताओं ने इसी मंडल को पवित्र किया है।

वर्तमान घाटमपुर-तहसील से कुछ दूर दक्षिण ओर यमुना के तट पर तिकवाँपुर(त्रिविक्रमपुर)-नामक एक ग्राम है। यह गाँव 'पूर्ण'जी की जन्मभूमि भदरस से बहुत दूर नहीं है। जितने महाकवियों ने इस ग्राम में जन्म ग्रहण किया है, उतने शायद ही किसी एक स्थान में पैदा हुए हों। अकबर के प्रसिद्ध मुसाहिब और मंत्री राजा बीरबल ने इसी ग्राम में जन्म लिया। उन्होंने 'ब्रह्मकवि' के नाम से कविता की है। इनके अनंतर रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्ररत्नों ने हिंदी-साहित्य को रत्नों से भर दिया। उनके पुत्र भूषण, मतिराम, जटाशंकर और चिंतामणि चारों भाई सुकवि हो गए हैं। भूषण और मतिराम तो हिंदी के सर्वोत्तम कवियों में हैं। मिश्रबंधुओं ने इनकी गणना हिंदी के नवरत्नों में की है। संवत् १६०० के आसपास भूषण के वंशजों में फिर विहारीलाल, रामदीन, शीतल-नामक कवि हुए। मकरंदपुर-कहिंजरी, जाजमऊ, साढ़, काकूपुर, कुँदौली आदि ग्रामों में कई कवि हो चुके हैं। कविवर पद्माकर बाँदा के रहनेवाले थे, परंतु उनके जीवन का अंतिम भाग कानपुर में गंगा-तट पर ही व्यतीत हुआ। वहीं पर उन्होंने अपनी प्रसिद्ध "गंगा-लहरी" की रचना की। जिस समय भारतेंदुजी की तूती बोल रही थी और "कवि-वचन-सुधा" का पान हिंदी-प्रेमी बड़ी भक्ति से कर रहे थे, कानपुर में पं० ललिताप्रसाद त्रिवेदी (ललित) कविता करते थे। जब कानपुर-ज़िले की हिंदी-सेवा का इतिहास लिखा जायगा, तो उसमें 'ललित'जी का स्थान बहुत ऊँचा होगा। जिस कवि से गुरु-मंत्र लेकर पं० प्रतापनारायण मिश्र, "पूर्ण"जी

और अन्य कवियों ने हिंदी को उत्तम कविताओं और सुसाहित्य से परिपूर्ण किया है, उसकी महत्ता कितनी अधिक है, यह बतलाने की विशेष आवश्यकता नहीं।

"ललित" का संक्षिप्त चरित और उनकी कविता

'पूर्ण' की कविता का परिचय देने के पूर्व यह परमावश्यक है कि उस कवि के जीवन और उसकी साहित्य-सेवा का संक्षिप्त वर्णन किया जाय, जिसके सत्संग से हमारे चरितनायक पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

ललितजी मल्लावाँ ज़िला हरदोई के निवासी कान्यकुब्ज-ब्राह्मण थे। ये कानपुर में ग़ल्ले की एक दूकान में मुनीम थे। इनको स्वर्गवासी हुए कोई २० वर्ष से अधिक हुए होंगे। इनको हिंदी-कविता का अच्छा ज्ञान था। इनकी कविता अत्यंत 'ललित' होती थी। इन्होंने "सुमति-मन-रंजन"-नामक एक नाटक लिखा है, जिसे कानपुर के प्रसिद्ध कैलास-मंदिर के मैनेजर ने प्रकाशित किया है। इस नाटक में धनुष-यज्ञ का वर्णन है। कानपुर-ज़िले में अनेक स्थानों में प्रायः उसी के आधार पर धनुष-यज्ञ-लीला होती है। ज़िले के बाहर भी हमने धनुष-यज्ञ में उनके रचित छंदों का प्रयोग सुना है। इस प्रकार उनकी रचनाओं का प्रचार उनकी उत्कृष्टता और उपादेयता का उत्तम प्रमाण है।

उपर्युक्त नाटक के अतिरिक्त "रसिक-वाटिका"-नामक पत्र में उनकी रचित समस्या-पूर्तियाँ प्रकाशित होती थीं। स्थानाभाव से हम उनमें से कुछ यहाँ पर देते हैं। उनसे उनकी कवित्व-शक्ति का थोड़ा-बहुत अनुमान किया जा सकता है। यहाँ पर विस्तृत आलोचना अप्रासंगिक होगी।

मार-लजावनहार कुमार हौ, देखिबे को दग ये ललचात हैं;
भूले सुगंध सों फूले सरोज-से आनन पै अलि हू मड़रात हैं;

नेक चले मग में पग द्वै 'ललिते' श्रम-सीकर-से सरसात हैं ;
तोरिहौं कैसे अमून लला ये प्रसून हू ते अति कोमल गात हैं । १ ।
भ्रमर कदंबन पै गान के उड़ान लागे,
होत बलहीन बिरहीन तन थर-थर ;
'ललित' हरित लहरान लागे तरुवर,
सीरी-सीरी चलन समीर लागी सर-सर ।
दामिनि के जोर चहुँ ओर ते लखान लागे,
चातक चकोर मोर सोरन के भर-भर ;
झर-झर, धर-धर धार बाँधि घूमि घन,
नभ में सघन घहरान लागे घर-घर । २ ।
घोरि गईं उनई ये घटा,-मन कोरि गईं लतिका छिति छूकै ;
घोरि गईं बिष कोयलैं सोरि कै, दौरि गईं जुगनू नहिं चूकैं ;
प्रानपियारी सिया बिन ए चलि भोरि गई हैं समीर की झूकैं ;
तोरि गईं तड़िता तन को, हिय फोरि गईं मुरवान की कूकैं । ३ ।
केहि काज गईं,करि आईं कहा,भला ऐसी कहौ कबहीं निबही ;
मुख पीरी परी, कढ़ै बात न री, अँखियाँ भरी सेद की धार बही ।
'ललिते' पट पायो चहाँ पियरो, कहि और गईं करी और चही ;
अति काँपति री,उर झाँपति का, गति तेरी हू चीर न जात कही ।४।

रसिक-समाज

'पूर्ण'जी के जीवन और उनकी कविता का 'रसिक-समाज' से इतना घनिष्ठ संबंध है कि हम एक को दूसरे से पृथक् नहीं कर सकते । 'पूर्ण' के बिना रसिक-समाज अपूर्ण, निष्प्रभ और निर्जीव प्रतीत होगा । 'पूर्ण' ही उसके प्राण, संरक्षक और पोषक थे । पूर्ण-वियोग में रसिक-समाज के कुछ कवियों की जो रचनाएँ ऊपर दी गई हैं, उनसे यह बात भली भाँति प्रकट होती है ।

"धरम सनातन को चाहे पति दूजो मिलै,
रसिक-समाज तो अनाथ ही लखात है।"

और भी

"रसिक-समाजी हैं चकोर चहुँ ओर हेरैं
कविता को पूरन कलानिधि कितै गयो।"
(रतनेश)

"मूरछित रसिक-समाज को सचेत कीन्हों
प्रथम-प्रथम जब कानपुर आए हैं।"
(नवीन)

यदि 'पूर्ण' के बिना रसिक-समाज अपूर्ण है, तो रसिक-समाज का उल्लेख किए बिना 'पूर्ण' का जीवन-चरित भी अपूर्ण प्रतीत होगा। इसी समाज में रहकर उनकी कवित्व-शक्ति का पूर्ण विकास हुआ और जो-जो ग्रंथ या रचनाएँ उन्होंने प्रकाशित कीं, वे सब रसिक-समाज ही के नाम से प्रकाशित हुईं। रसिक-समाज ही 'पूर्ण'जी का सरस्वती-मंदिर, विनोदागार और मनोरंजन का प्रधान साधन था। रसिक-समाज के अतिरिक्त सनातनधर्म-सभा से भी उनका बड़ा घना संबंध था। अतएव रसिक-समाज का कुछ संक्षिप्त वृत्तांत देना आवश्यक है। रसिक-समाज की स्थापना 'पूर्ण'जी के कानपुर आने के पूर्व ही हो चुकी थी, परंतु उसकी दशा अत्यंत क्षीण थी। 'पूर्ण'जी के योग-दान से उसमें नवीन जीवन का संचार हुआ। उस समय से लेकर 'पूर्ण'जी के मरण तक रसिक-समाज की दशा अच्छी रही। उनके वियोग के उपरांत कुछ दिनों तक लस्टम-पस्टम उसका अस्तित्व बना रहा, परंतु फिर वह छिन्न-भिन्न हो गया।

जब तक 'ललित'जी विद्यमान रहे, वह इसके सभापति और 'पूर्ण'जी उपसभापति रहे; पं० रामरत्नजी सनाढ्य (रतनेश)

प्रधान मंत्री और मुंशी कालीचरणजी (सेवक) उपमंत्री थे। रसिक-समाज के अन्य सभासदों में से श्रीयुत मन्नीलालजी स्वर्णकार (व्रजचंद), पं० गदाधरप्रसाद ब्रह्मभट्ट (नवीन) बिलग्राम-निवासी, पं० मथुराप्रसाद मिश्र (मथुरा), श्रीयुत बद्रीप्रसाद गुप्त (गुप्त) और श्रीयुत व्रजभूषणलाल गुप्त (भूषन) के नाम विशेष उल्लेख के योग्य हैं। श्रीयुत बद्रीप्रसाद गुप्त का देहांत मई सन् १६११ में हो गया था। 'नवीन' का देहांत भी १६२१ में हुआ।

रसिक-समाज के कवियों की रचनाएँ सबसे पहले उसकी मुख-पत्रिका 'रसिक-वाटिका' में छपती थीं। यह पत्रिका पहले-पहल एप्रिल १८६७ में प्रकाशित हुई। उसके बंद हो जाने पर जनवरी सन् १६०२ से 'रसिक-मित्र' का जन्म हुआ और रसिक-समाज की मृत्यु के साथ उसकी भी मृत्यु हो गई। इसको बहुत दिनों तक कानपुर-इंडियन-प्रेस के प्रोप्राइटर स्व० पं० मनोहरलाल मिश्र ने चलाया। जनवरी १६०६ से 'पूर्ण'जी के परम मित्र और वेदांती पं० सहदेवप्रसादजी पांडेय वैद्य ने 'सुधासागर'-नामक मासिक पत्र निकाला। इसमें वेदांत-विषयक वार्ता खूब होती थी। इस पत्र में भी 'रसिक-समाज' के अधिवेशनों की कारवाई छपती थी। जुलाई १६११ से 'पूर्ण'जी ने 'श्रीब्रह्मावर्त-सनातनधर्म-महा-मंडल' कानपुर की ओर से 'धर्मकुसुमाकर'-नामक मासिक पत्र निकालना प्रारंभ किया। उसमें भी 'रसिक-समाज' के कवियों की कविताएँ छपती रहीं। इसका पूरा वृत्तांत अन्यत्र दिया जायगा।

'पूर्ण'जी की साहित्य-सेवा

'पूर्ण'जी स्वाभाविक कवि थे। सजीवता, मधुरता, और मनोहा-रिता उनकी कविता की मुख्य विशेषताएँ हैं। अनुप्रासादि शब्दालंकारों के साथ-साथ उनकी कविता में अर्थालंकार की अनोखी छटा है। उन्होंने ख़राब कविता बहुत कम लिखी।

बहुत-से उत्तम-उत्तम कवियों ने कभी-कभी ऐसी भद्दी रचना की है कि यदि उनकी कविता का उत्तम अंश संयोगवश अप्राप्य हो जाय, तो उनकी गणना नीच तुकबंदी बनानेवालों में की जायगी। अँगरेज़ी के सर्वोत्तम कवियों में वर्ड्सवर्थ की बहुत-सी कविता भद्दी और निम्न श्रेणी की भी है, यद्यपि वर्ड्सवर्थ की गणना अँगरेज़ी के क्या, संसार के प्रसिद्ध कवियों में, की जा सकती है। प्रकृति-निरीक्षण में उनका सानी कोई नहीं है। इसका कारण यह हो सकता है कि सब समयों पर कवित्व-शक्ति का जोश समान भाव से नहीं होता। कभी-कभी दिल ऐसा पज़मुर्दा हो जाता है कि क़लम चलाने से भी नहीं चलती। परंतु जब सरस्वती जिह्वा पर आ विराजती हैं या लेखनी पर नाचने लगती हैं, तो एक विचित्र प्रकार से हाथ स्वतः चलने लगता है और कविता का स्रोत धारा-प्रवाह से फूट निकलता है। अस्तु—

'पूर्ण' जी ने अधिकतर ब्रजभाषा ही में कविता-रचना की है और ब्रजभाषा ही के वे विशेष पक्षपाती थे। सन् १९०४ में कवि यह भविष्य-वाद करता है कि "जब तक हिंदी में श्रीतुलसी, सूर, केशव इत्यादि कवियों की कविता का आदर है, तब तक और जब तक खड़ी बोली में, उनकी कविता के समान, सरस, सुंदर और सर्वमान्य बृहत्काव्य-कलाप प्रस्तुत होकर जगत्प्रचलित नहीं होता, तब तक पद्य-भाषा का न मान घटेगा और न खड़ी बोली पद्य में बैठने को जगह पावेगी।*" सो अभी तक न तो खड़ी बोली में ऐसा कोई 'सरस, सुंदर और सर्वमान्य, बृहत्काव्य-कलाप' ही 'जगत्प्रचलित' हुआ और न तुलसी, सूर, केशव आदि की कविता का आदर ही घटा है। परंतु यह होते हुए भी १९०६ में कवि ने 'स्वदेशीकुंडल' की रचना खड़ी बोली में की और उसके अनंतर

* दे० चंद्रकलाभानुकुमार-नाटक की भूमिका।

को खड़ी बोली की कविताओं की झड़ी लग गई। 'सन् १९१० का स्वागत', 'नवीन संवत्सर का स्वागत', 'हिंदू-विश्वविद्यालय', 'क्या हिंदी मुर्दा भाषा है ?', 'वसंत-वियोग' आदि शीर्षक प्रसिद्ध कविताएँ सन् १० के बाद ही बनी हैं। शायद कवि के विचारों में परिवर्तन हो गया होगा। संभव है, उनके विचार-परिवर्तन का वही कारण हो, जो उन्होंने "स्वदेशीकुंडल" की रचना के लिये दिया है—

"ये कुंडलियाएँ खड़ी बोली में हैं और कई जगह उर्दू के शब्द प्रयुक्त किए गए हैं। हमारा अभिप्राय शुद्ध हिंदी में कविता लिखने का नहीं था किंतु अभिप्राय यह था कि......एक उपयोगी विषय, ऐसी भाषा में, जिसे थोड़ा-बहुत हिंदू-मुसलमान दोनों समझें, बाँधा जाय" (स्वदेशीकुंडल-भूमिका-पृ० (ग))

सो कदाचित् अपनी कविताओं को अधिक 'जनसमुदाय में प्रचार' के हेतु ही उन्होंने खड़ी बोली की शरण ली हो। परंतु यह कहना अनुचित न होगा कि ब्रजभाषा ही में उन्होंने सर्वोत्तम कविताएँ की हैं।

'पूर्ण'जी अच्छे आशुकवि भी थे। लखनऊ के पंचम-हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर पढ़ी गई "क्या हिंदी मुर्दा भाषा है ?"-शीर्षक कविता को उन्होंने पंडाल में बैठे-बैठे ज़रा देर में लिखा था। महात्मा गोखले की मृत्यु पर आपने जो कविता कानपुर की शोक-सभा में पढ़ी थी, उसको, कहते हैं, आपने कचहरी से सभा-स्थान को आते हुए गाड़ी में लिखा था। अपने ग्राम की धनुष-यज्ञ में भी आप अपने 'पार्ट' में तत्क्षण-रचित कविता में बातचीत करते थे।

श्रृंगार-रस की कविता में तो वह एक प्रकार से सिद्धहस्त थे। परंतु वेदांत-विषयक शांत-रस की कविताएँ भी उनकी उत्तम हैं। हमने संग्रह में उनकी सब प्रकार की कविताओं के नमूने दिए हैं।

अब हम उनके ग्रंथों एवं मुख्य-मुख्य स्फुट कविताओं का परिचय देते हैं—

धाराधरधावन

यह मेघदूत का हिंदी-छंदोबद्ध अनुवाद है और दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग (पूर्वमेघ) जो 'हरिगीतिका' और 'नरेंद्र'-छंदों में है, जनवरी सन् १९०२ में प्रकाशित हुआ था। द्वितिय भाग (उत्तरमेघ) मई में उसी वर्ष छपा था और वह 'दंडक' और 'स्रग्धरा'-छंदों में है। अनुवाद कैसा हुआ है, इसका निर्णय हिंदी-संसार के दिग्गज-महारथी कर चुके हैं। पुस्तकों के अंत में दी हुई श्रीमान् पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी, लाला सीताराम बी० ए०, पं० श्यामविहारी मिश्र एम्० ए०, पं० शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए० और पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री की सम्मति से तो अनुवाद अति उत्तम हुआ है। अब और किनके सार्टिफ़िकेट की ज़रूरत है? अनुवाद पढ़ते समय एक स्वतंत्र काव्य के पढ़ने का आनंद प्राप्त होता है। कुछ उदाहरण लीजिए—

मेघदूत—धूम्रज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः ;
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन्गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।

धाराधरधावन—कहँ बापुरो घन धूम पावक पवन जलमय सर्वथा ?
कहँ चतुर धावन सों पठावन जोग प्रेमिन की कथा !
इतनिहु विथा-बस जाँचना, कीन्हीं जलद सों याचना।
चेतन-अचेतन भेद देत भुलाय मनमथ-यातना।

मेघदूत—आनन्दोत्थं नयनसलिलं यत्र नान्यैर्निमित्तै-
र्नान्यस्तापः कुसुमशरजादिष्टसंयोगसाध्यात् ;

नाप्यन्यस्मात्प्रणयकलहाद्विप्रयोगोपपत्ति-
विंत्तेशानां न च खलु वयोयौवनादन्यदस्ति।

भा० ध०—केवल अनदवारे अँसुवा निहारे तहाँ
दुख की निसानी कहुँ नेक न लखानी है;
ताप तहाँ देखी वस पाँचसर आँचवारी
जानी जासु औषध विलास सुखदानी है;
मान के सिवाय है वियोग को न जोग दूजो,
'पूरन' जो रीति प्रीति नीति की बखानी है;
बैस ना दिखानी ह्याँ जवानी के सिवाय दूजी
ऐसी मोदसानी अलका की राजधानी है।

चंद्रकलाभानुकुमार नाटक

यह 'पूर्ण'जी-कृत स्वतंत्र-ग्रंथ है। इस नाटक में "प्राचीन समय के व्यवहारों का प्रतिबिंब है" और "इस नाटक की कहानी कल्पित है"। प्राचीन भारतीय-नाटक-लेखन-प्रथा के अनुसार यह 'सुखांत' नाटक (Comedy) है। जब इसमें "प्राचीन समय के व्यवहारों का प्रतिबिंब है" तो फिर प्राचीन-प्रथा के अनुसार इसे 'दुःखांत' करना अच्छा न होता। हमारे प्राचीन नाटककार किसी नाटक या उपन्यास या किसी कथा को दुःख पर समाप्त करना बुरा समझते थे। उनके हृदय अत्यंत दयालु थे। वे किसी को कल्पना में भी सदा के लिये कष्ट में पड़ा रहने देना सहन नहीं कर सकते थे। किसी प्रेमी को वियोगिनी प्रेमिका से अंत में प्रेमालिंगन के सुख से वंचित रखना, किसी निराश व्यक्ति को उसकी अभीष्ट-लालसा की प्राप्ति से कोसों दूर रखना और किसी पुरुष को आपत्ति के तूफ़ानी समुद्र की विकराल लहरों में तड़फड़ाते छोड़ देना उनके कोमल चित्तों को क्लेश देता था और ऐसा करना वे पाप समझते थे। इस प्रकार उनकी

सहृदयता के कारण भारतवर्ष के प्राचीन नाटकादि में जीवन की घटनाओं का केवल एक पहलू आ पाया है, क्योंकि संसार में दोनों प्रकार की घटनाएँ हुआ करती हैं। सांसारिक अनुभव के अनुसार सर्वदा यह आवश्यक नहीं कि वियोगियों का संयोग हो ही जाय।

कवि स्वीकार करता है कि इस नाटक की भाषा कुछ दुरूह है। उर्दू के प्रसिद्ध-नाटक 'असीरे हिर्स' आदि भी सर्वथा सर्वसाधारण के समझने योग्य नहीं हैं, फिर भी इसके कारण उनकी ओर से लोगों की रुचि कुछ कम नहीं हो रही है : अतएव यदि इस क्लिष्ट-नाटक का भी सर्वसाधारण के सम्मुख अभिनय किया जाय तो 'पूर्ण'जी के मत में, यह रुचिकर अवश्य होगा। परंतु इस प्रकार अपने मन को समझा लेने पर भी 'पूर्ण'जी फिर लिखते हैं, "यदि यह नाटक सर्वसाधारण के सम्मुख खेला जाने के योग्य न होगा तो मुझे कुछ शोक न होगा, मैंने तो इसे साहित्य की दृष्टि से लिखा है।" और सचमुच बात भी ऐसी ही है। यद्यपि साहित्य की दृष्टि से यह पुस्तक कवि की प्रतिभा का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है, परंतु नाटक के विचार से इसमें बहुत कुछ बातें अस्वाभाविक एवं अनुपयोगी हैं। 'पूर्ण'जी कहते हैं—"भाग्य से इस नाटक की सब स्त्रियाँ पढ़ी हैं"। एतदर्थ वे कविता-रचना करती हैं। यहाँ तक कि माली की लड़की सुदेवी तक को कविता का परिज्ञान है। हमारी समझ में कुछ अशिक्षिता स्त्रियों के चरित्र-चित्रण से नाटक की स्वाभाविकता और सौंदर्य में वृद्धि हो सकती थी।

नाटक के प्रारंभ में उसके प्रधान-पात्र विजयनगर के राजकुमार भानुकुमार और मंत्री के पुत्र प्रतापकुमार के परस्पर वार्तालाप अत्यंत मनोहर हैं परंतु साहित्यज्ञान-हीन कर्णों को उनका आनंद नहीं मिल सकता।

इस नाटक में वर्षा-ऋतु का वर्णन अत्यंत मनोहर है। उसका

अधिक भाग संग्रह में लिया गया है। परंतु हमारी समझ में तो वर्षा-वर्णन में कवि इतना मग्न हो गया है कि उसे शायद यह स्मरण ही नहीं रहा कि नाटक में इतना बड़ा वर्णन अच्छा नहीं मालूम होता। वर्षा-ऋतु के अतिरिक्त अन्य ऋतुओं का वर्णन भी हृदय-ग्राही है।

इस नाटक के प्रधान गुण हैं काव्य, सौंदर्य और मनोविकारों का स्पष्टीकरण। क्रोध, भय, आशा, आनंद, शंका, उत्साह, एवं निरुत्साह के समयों पर मनुष्य की चित्तवृत्ति कैसी होती है, उसके विचार कहाँ तक दौड़ते हैं, इसको कवि ने बहुत उत्तमता से दर्शाया है। इस नाटक के ग्रामीण-पात्रों के वार्तालाप से नाटककार की ग्रामीण-दृश्यों की अद्भुत अभिज्ञता का पता लगता है। सुख-नंदन और भँगेड़ियों के ग्रामीण व्यवहारों को एक कोरा शहर का निवासी इस प्रकार उत्तमता से नहीं चित्रित कर सकता था।

परंतु इस नाटक में कुछ दोष भी हैं। पात्रों के चरित्रों का चित्रण संतोषप्रद नहीं हुआ है। भानुकुमार और प्रतापकुमार के चरित्रों में इसके अतिरिक्त और कोई अंतर नहीं जान पड़ता कि एक चंद्रकला का भावी पति है और दूसरा चंद्रावली का पति है। उनके चरित्र लगभग एक ही साँचे में ढले हुए हैं। उनमें कोई विशेष व्यक्तित्व नहीं पाया जाता। दोनों वीर, धर्मात्मा, काव्य-रसिक और चतुर हैं। यही बात चंद्रकला और चंद्रावली के चरित्रों में है। इस प्रकार एक ही प्रकृति के दो चरित्रों से उनकी व्यक्तिगत विशेषताओं के अध्ययन का आनंद प्राप्त नहीं हो पाता। हमारी अल्पबुद्धि में 'पूर्ण' जी चरित्र-चित्रण में सर्वथा सफल नहीं हो पाए। चरित्र-चित्रण नाटकों का एक प्रधान अंग है। यह आश्चर्य की बात है कि चंद्रकला की माता कंचनपुर की रानी को नाटककार कभी पाठकों अथवा दर्शकों के सम्मुख नहीं लाता। यह नाटक कुछ अधिक बड़ा भी

गया है। कई पूरे गर्भांक (सीन) निकाले जा सकते हैं। केवल कुछ कविता के लिये कवि ने उन्हें बढ़ा दिया है। दृष्टांत के लिये देखिए छठवें अंक का तीसरा गर्भांक। नाटककार ने भूमिका में स्वयं इस त्रुटि को स्वीकार किया है।

हमें एक और दोष यह समझ पड़ता है कि यद्यपि नाटककार कहता है कि इस नाटक में "प्राचीन समय के व्यवहारों का प्रतिबिंब है", तथापि कहीं-कहीं पर नवीन साइंस के सिद्धांत प्रकट रूप से पात्रों द्वारा कहलाए गए हैं। यह एक प्रकार की समय-विरुद्ध (Anachronism) बात है।

एक बात और है। चंद्रकला का मृग-छौने के पीछे-पीछे अनंत वन में पहुँचना कुछ असंगत सा प्रतीत होता है। यद्यपि नाटककार ने उसे समझाने का प्रयत्न किया है, परंतु हमारी समझ में तो चंद्रकला को भानुकुमार के दर्शन प्राप्त करने का कोई अन्य मार्ग होता तो अच्छा था। यह तो वही राजा प्रतापभानु के कपटमुनि के आश्रम में पहुँचने की-सी बात हुई। परंतु प्रतापभानु तो आखेट के पीछे-पीछे भटका और अकस्मात् कपटमुनि के आश्रम में पहुँच भी गया था। यहाँ तो चंद्रकला की सहेलियाँ सर्वदा उसके पास रहती थीं, फिर एक राजकन्या का केवल एक मृग-शावक के पीछे-पीछे जाकर भटक जाना और नगर में किसी को बहुत देर तक इसकी ख़बर न होना—यह सब कुछ अस्वाभाविक-सा प्रतीत होता है।

जो कुछ हो, इस नाटक की भाषा और इसमें पाई जानेवाली कविताएँ साहित्य की दृष्टि से उच्च श्रेणी की हैं। विरह-वर्णन तो अत्यंत हृदयस्पर्शी है। शृंगार-रस की छटा मनोहर है। प्रकृति-सौंदर्य का वर्णन भी उत्कृष्ट है। प्राचीन रीतियों और व्यवहारों का वर्णन बड़ा उत्तम हुआ है। ऐसे कुछ स्थानों को छोड़कर, जहाँ वर्तमान पदार्थ-विद्या की दुहाई दी गई है, और सब स्थानों

पर तो यह जान पड़ता है कि मानो हम किसी प्राचीन युग के दृश्य देख रहे हैं। एक न्यायप्रिय धर्मात्मा राजा के राज्य में हम साहित्य का मान और विद्वानों का आदर-सत्कार देखते हैं। ऐंद्रजालिक खेलों को देखकर हम धर्मयुद्ध में प्राचीन अस्त्र-शस्त्रों का चलाना देखते हैं। निर्जन वन में राक्षसों का वास भी देखने को मिलता है। कबूतरों के द्वारा समाचार भेजे जाते हैं। अंत में चंद्रकला का स्वयंवर भी होता है। ये सब प्राचीन युग के दृश्य हैं।

नाटक के प्रारंभ में चंद्रकला और चंद्रावली अपूर्व आनंद-पूर्वक विपिन की प्राकृतिक शोभा में अपना जीवन व्यतीत करती हैं। उनकी सहेलियों में कालिंदी चित्र-विद्या में परम पटु है, और मालती उत्तम कविता करने में। मालिन की लड़की सुदेवी भी उनके साथ रहने के कारण धीरे-धीरे बड़ी चतुर हो जाती है। उसमें अपने पिता सुखनंदन अथवा भाई नंदुआ के गँवारपन नाम को भी नहीं रहती। उसे भी कविता का आनंद प्राप्त करने की योग्यता हो जाती है।

नाटककार ने नाटक के पात्रों के नाम ऐसे चुने हैं, जिनसे समय-समय पर आमोद-प्रमोद का अवसर मिला है।

कवि ने इस नाटक का समर्पण इस प्रकार किया है—

"जदपि प्रवीन कवि पूरन रसिक आप
चाखे रस चोखे बहु कविता ललामा के;
तौ हूँ लखि दीनता को छमा करि हीनता को,
भाव अनुसारिए उदार गुन-ग्रामा के।
काव्य कुसुमाकर के मंजुल सुमन लीन्हें
पत्र तुलसी के अब लीजे बिन दामा के;
व्यंजन सुधा-से मनरंजन बिसारि आज
अंगीकार कीजे चारि चाउर सुदामा के।"

स्वदेशीकुंडल

हिंदी भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा है, परंतु शोक की बात है कि उसमें देश-भक्ति-संबंधी उत्तम काव्यों का प्रायः अभाव है। 'पूर्ण'-कृत "स्वदेशीकुंडल" इसी विषय की पुस्तक है। यद्यपि यह २५ पृष्ठों की छोटी-सी पुस्तक दिसंबर, सन् १६१० में "सर्वसाधारण के हृदय में 'स्वदेशी' का उत्साह उन्नत" करने के निमित्त उस वर्ष की "प्रयाग-प्रदर्शिनी के चिरस्मरणार्थ सच्चे स्वदेशी के सच्चे अनुरागियों को" अर्पण की गई थी, परंतु हिंदी-संसार अभी तक इससे बहुत कम परिचित है।

पहली कविता "स्वदेशीकुंडल" ५२ "कुंडलियों का वंडल है।" हिंदी में गिरिधर कविराय और बाबा दीनदयाल के अतिरिक्त बहुत कम लेखकों ने इस छंद में कविता की है। इसका कारण जो कुछ हो, परंतु यह कहना कदापि अनुचित न होगा कि कुंडलिया-छंद में विशेष प्रकार की मधुरता एवं रोचकता होती है। दूसरी पंक्ति के उत्तरार्द्ध को तीसरी पंक्ति में दोहराने और आदि के पद को अंत में लाने से जो श्रुति-माधुर्य की वृद्धि होती है, वह पढ़कर ही अनुभव की जा सकती है। कुछ भी हो, प्रस्तुत कुंडलियों में तो अवश्य इस बात से अधिक लालित्य आ गया है। किसी-किसी कुंडलिया में दोहे का चौथा चरण रोला के प्रथम चरण में बहुत उत्तमता से दोहराया गया है। छंद के आदि पद का अंत में लाना तो प्रायः सभी कुंडलियों में बड़ी उत्तमता से साधा गया है, और व्यर्थ पुनरुक्ति न करके कवि ने कहीं-कहीं दोनों को भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया है, जो शायद अन्य कवियों ने नहीं किया।

उदाहरण लीजिए—

पुर्ज़े किसी मशीन के, हों कहने को साठ ;
बिगड़े उनमें एक तो, हों सब बारावाठ।

हों सब बाराबाठ, बंद हो चलना कल का;
छोटा हो या बड़ा, किसी को कहो न हलका।
हैं यह देश-मशीन, लोग सब दर्जे-दर्जे;
चलें मेल के साथ, उड़ें क्यों पुर्जे-पुर्जे। १।

चांनी ऊपर चमचमी, भीतर अति अपवित्र;
करते हो व्यवहार तुम, है यह बात विचित्र।
है यह बात विचित्र, अरे निज धर्म बचाओ;
चौपायों का रुधिर, अस्थि अब अधिक न खाओ।
है यह पकी बात, बड़ों की छानी-बीनी;
करो भूल स्वीकार, करो मत नुक़ाचीनी। २।

कुछ लोग कहेंगे कि 'पूर्ण'जी की इस कविता में तो फ़ारसी की बू आती है। ठीक है; पर इसका कारण कवि के शब्दों में ही सुन लीजिए। वह कहते हैं कि "इस गाथा में उर्दू-हिंदी का मेल मानो हिंदू-मुसलमानों के मेल का नमूना है।" ये हैं राष्ट्रकवि के-से विचार।

कवि ने यह स्वीकार किया है कि "इस पुस्तक में स्वदेशी का पूरा विषय" नहीं आया; परंतु हमारी राय में जो कुछ इन २५ पृष्ठों के अंतर्गत है, वह किसी भी निर्जीव पुरुष में जान फूकने में समर्थ है। एक बार पुस्तक उठाइए, फिर विना समाप्त किए छोड़ने को जी नहीं चाहता। स्वदेशी वस्तु के प्रयोग और पारस्परिक एकता का उपदेश बड़ी रोचक, उत्तेजक एवं सरल भाषा में पढ़ने को मिलता है—

"देशी प्यारे भाइयो! हे भारत-संतान!
अपनी माता भूमि का है कुछ तुमको ध्यान?"

इन शब्दों से पुस्तक का प्रारंभ होता है। तदनंतर परमेश्वर, राजा और देश के प्रति भक्ति-भावना की आवश्यकता बतलाई गई है। इसका ज़िक्र अन्यत्र हो चुका है।

देखिए, किन ज़ोरदार शब्दों में वे हिंदू-मुसलिम और समस्त भारत की एकता की आवश्यकता बताते हैं—

"दामनगीर निफ़ाक़ है, हाय हिंद ! अफ़सोस !
बिगड़ रहा अख़्लाक़ है, वाय हिंद ! अफ़सोस !
वाय हिंद ! अफ़सोस ! ज़माना कैसा आया ;
जिसने करके सितम, भाइयों को लड़वाया।
मुसलमान-हिंदुओ ! वही है क़ौमी दुश्मन ;
जुदा-जुदा जो करै, फाड़कर चोली-दामन।"

इस प्रकार एकता का उपदेश देकर 'पूर्ण'जी भारत की प्राकृतिक संपत्ति का वर्णन करते हैं—

"खेती है इस देश में सब संपति की मूल ;
कोहनूर इस कोश में हैं कपास के फूल।"

परंतु भारत के दुर्भाग्य से विदेशी व्यापारी उसका सब धन लूटे लिए जाते हैं। कवि ने स्वदेशी वस्तु के उपयोग के लिये संकेत करते हुए क्या ही सच्ची दशा दिखाई है—

"भैंसी की जब मर गई पड़िया चतुर अहीर ;
कंबल की पड़िया दिखा लगा काढ़ने छीर।
लगा काढ़ने छीर, भैंस भेसड़ बेचारी ;
यही समझती रही, यही पुत्री है प्यारी।
नहीं स्वदेशी बंधु, बात यह ऐसी-वैसी ;
हौ मानुष तुम सही, किंतु हौ सोई भैंसी।"*

इसीलिये—

"गाढ़ा झीना जो मिलै उसकी ही पोशाक ;
कीजै अंगीकार तो रहै देश की नाक।"

---

* इस दृष्टांत से भी यह स्पष्ट है कि कवि को ग्राम्य-जीवन से असाधारण परिचय था।

परंतु हम लोगों ने तो—

"खोया सब, हाँ रही बुद्धि इतनी अलबत्ता;
देकर चाँदी खरी, मोल लेते हैं लत्ता।"

इस दशा को बतलाते हुए कवि विदेशी कल-यंत्रों की आवश्यकता बतलाता है—

"कल है बल उद्योग का, कल उन्नति की मूल;
कल की महिमा भूलना है अति भारी भूल।
है अति भारी भूल और कोरी कलकल है;
दूरदर्शिता नहीं, इसी में सारा बल है।
कल से सकल विदेश सबल, निष्कल निर्बल है;
भरतखंड! कल बिना तुझे, हा! कैसे कल है?

इस पुस्तक को पढ़ते समय हमें तो मौलाना हाली के 'मुसद्दस' की याद आए बिना नहीं रहती।

'स्वदेशी-कुंडल' के बाद "प्रदर्शिनी-स्वागत"-नामक २० छप्पय का एक काव्य है। इसकी भी भाषा हिंदी-उर्दू-मिश्रित है। इसको चौबेपुर, ज़िला कानपुर की ज़िला-प्रदर्शिनी-कमेटी के चेयरमैन राय देवीप्रसादजी ने ७-१०-१९०६ को आगत महाशयों के स्वागत में सुनाया था।

इस कविता में भारतीय समाज की दीन-हीन दशा का हृदय-स्पर्शी चित्र है—

"भरतखंड का हाल ज़रा देखो है कैसा;
आलस का जंजाल ज़रा देखो है कैसा।
ज़रा फूट की दशा खोलकर आँखें देखो;
खुदग़रज़ी का नशा, खोलकर आँखें देखो।
है शेख़ी दौलत की कहीं, बल का कहीं गुमान है;
है ख़ानदान का मद कहीं, कहीं नाम का ध्यान है।"

"फिरते हैं अशराफ़ गली में मारे-मारे ;
कहीं अहले-औसाफ़ हुए कँगले बेचारे ।
थे अमीर, पर आज बदन पर नहीं लँगोटी ;
मिडिल कर लिया पास, नहीं पर मिलती रोटी ।
जब सनअत हिर्फ़त खो गई, रोजगार गायब हुआ ;
खुद कहो तुम्हीं इंसाफ़ से, यह न होय तो होग क्या ?"

पर इसमें दोष किसको दिया जाय ?

"कुछ नहीं दोष सरकार का, बुरी नहीं तक़दीर है ;
ऐ यार ! फ़क़त तदबीर की यह सारी तक़सीर है ।"

तो भारत को पुनः समृद्ध करने का क्या उपाय है ?

"अब कल की पद्धति छोड़कर देखो दुनिया आज की ;
सब जगह काम देतीं नहीं बातें बाबाराज की ।"

हम लोगों का सिद्धांत यह होना चाहिए—

"करके प्रण अच्छे काम का, मुँह को मोड़ेंगे नहीं ;
हम कामयाब जब तक न हों, कोशिश छोड़ेंगे नहीं ।"

तदनंतर "स्वदेशी बारामासी", "लक्ष्मी दीजै लोक में मान दीजै"-वाला "चंद्रकलाभानुकुमार-नाटक" का 'भरत-वाक्य' और "भूप-सतक" परिशिष्ट की भाँति जोड़ दिए गए हैं। ये 'संग्रह' में अप्रकाशित हैं।

राम-रावण-विरोध

यह रामचंद्रजी के जीवन पर एक छोटा-सा चंपू है। अन्य कवियों की भी कुछ कविताएँ बीच-बीच में जोड़ दी गई हैं। यह लेख सं० १९६३ में 'भारतमित्र' के 'पूजा'वाले अंक के लिये लिखा गया था, और ऑक्टोबर सन् १९०९ में स्वतंत्र पुस्तक-रूप में छपा। जब पुस्तक छप रही थी, राय साहब की माता का स्वर्गवास हो गया, अतएव पुस्तक के अंत में पूज्या माता की पुण्य-स्मृति के

निमित्त १२ छोटे-बड़े 'पत्र' और जोड़ दिए गए। उनमें भक्ति, और मातृ-प्रेम की अनुपम छटा है। एक 'पत्र' हम यहाँ अविकल उद्धृत करते हैं—

मातारास,

भगवान् अंशुमाली के उदय के पूर्व इंद्र-देवता ने किंचित् ही वर्षा से केवल अंतरिक्ष ही को निर्मल नहीं कर दिया था किंतु नगर से श्मशान का मार्ग भी सिंचित कर दिया था। उसी शुद्ध मार्ग से सनातनधर्मावलंबी विशुद्धाचरणवाले सज्जनों ने उसी तुम्हारी प्यारी राम-ध्वनि के साथ तुम्हारा शव गंगातट (भैरव-घाट) पहुँचाया, वहाँ से दो धाराओं के मध्य में अनूठी भूमि पर चिता लगाया गया। ऊँचे हिमालय के शिखर पर स्थित जिस हिमराशि में केवल निर्धूलि और सूक्ष्म वायु को प्रवेश कर सूर्य की सुनहरी किरणों का तेज व्याप्त हो गया है, उसी का द्रव रजताचल के संसर्ग-समय चाँदी के परमाणुओं को भी धारण करता हुआ सुरसरी के नाम से गंगोत्तरी से सागर-पर्यंत भूमि को अद्वितीय तीर्थ बना रहा है। उसी जगत्पावनी गंगा के आकाश में आकाश तथा शेष तत्त्वों में शेष तत्त्व मिल जाने से, यमुनामाता का शरीर गंगामाता के शरीर में लय हो गया। फिर शास्त्र की मर्यादा के अनुसार १० दिन का कर्म भगवत-दास-घाट पर दो धाराओं के मध्य में एक छोटे-से रेणुमय द्वीप में हुआ, एकादशाह-कर्म तीर पर और अश्वत्थ और वट की छाया में हुआ, और बारहवें दिन "सपिंडन" भी उसी घाट पर। माता! यमराज का पाश राम-भक्तों के लिये नहीं है, तथापि शास्त्राज्ञा-पालन तथा इस शरीर से तुम्हारे नाम पर कुछ परिश्रम लेना ही इस समय मेरा कर्तव्य है। मेरी प्रार्थनाएँ और मेरी पिंडोदक-क्रियाएँ अवश्य तुमको अथवा उस परमात्मा को, जिसमें तुम्हारा लय हुआ है, पहुँच रही हैं। महिमावती माता! इस छोटी-सी सेवा को स्वीकार करो और

मेरी इस सत्य-हृदय की प्रार्थना को भी स्वीकार करो कि मनसा-वाचा-कर्मणा जो कुछ तुम्हारा दोष मैंने किया हो, वह क्षमा करो। मुझे निश्चय है कि तुमने अवश्य क्षमा किया; क्योंकि एक तो जीते-जी तुम मुझसे प्रसन्न थीं, दूसरे 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति '।"

राजदर्शन

यह हिंदी-अँगरेज़ी-मिश्रित एक पुस्तक है, जो १९११ के दिल्ली-दरबार के उपलक्ष्य में प्रकाशित हुई थी। इसमें दिल्ली-दरबार का वर्णन अत्यंत रोचक है। संग्रह में वह दिया हुआ है।

धर्मकुसुमाकर

"रसिक-वाटिका" और "रसिक-मित्र" का ज़िक्र ऊपर हो चुका है और "धर्मकुसुमाकर" का भी संक्षेप से उल्लेख हो चुका है। "पूर्ण"जी ने कानपुर में "श्रीब्रह्मावर्त-सनातनधर्म-महामंडल" की स्थापना की थी। उसी की ओर से यह मासिक पत्र प्रकाशित होता था। इसमें धर्म-संबंधी उच्च कोटि के लेख और कविताएँ छपती थीं। नवरस की सामग्री भी इसमें ख़ूब रहती थी। "धर्मकुसुमाकर" बहुधा कई मास तक गोता खाकर निकलता था, जिसका प्रधान कारण "पूर्ण"जी के ऊपर अनेक कार्यों का भार था। संपादक को काफ़ी अवकाश होना चाहिए। परंतु कानपुर में दीवानी के सबसे प्रसिद्ध वकील, सनातनधर्म-सभा के सभापति, कर्ता, धर्ता और विधाता, कानपुर-म्युनिसिपल-बोर्ड के वाइस चेयरमैन, कानपुर-हिंदू-सभा के सभापति, कानपुर के राजनीतिक नेता, गोरक्षा के प्रतिपालक और घोर पक्षपाती और 'रसिक-समाज' के प्राणाधार के भाल में विधाता ने अवकाश-जैसी अन्य लोगों के लिये सुलभ वस्तु नहीं लिखी थी। इसी अवकाश की कमी के कारण "पूर्ण"जी के कई विचार और हौसले पूरे न हो पाए। उनकी प्रतिभा का पूर्ण विकास भी इसी कारण न हो पाया। अस्तु, 'धर्मकुसुमाकर' अपने ढंग का उत्तम

पत्र था। 'पूर्ण'जी ने अपने जीवन-भर इसको किसी प्रकार चलाया, परंतु उनके शरीर-त्याग के साथ इसकी भी मृत्यु हो गई।

"धर्मकुसुमाकर" का उद्देश्य उसके आवरण-पत्र पर इस प्रकार छपा रहता था—

"आकर है नीति को, प्रभाकर है प्रतिभा को,
रसिक मलिंदन को मंजु पदमाकर है;
चाकर समान देश-देशन में जाय-जाय
धर्म उपदेशन में 'पूरन' गुनाकर है;
आकर की आपदा-हरन को बलाकर है,
रस को जलाकर, विचार-रतनाकर है;
शांति को सुधाकर है, ज्ञान को दिवाकर है,
धर्मकुसुमाकर ये धर्मकुसुमाकर है।

अन्य ग्रंथ और कविताएँ

'पूर्ण'जी ने भगवान् शंकराचार्य-कृत प्रसिद्ध वेदांत-ग्रंथ "तत्त्व-बोध" और "मृत्युंजय" का भी छंदोबद्ध भाषानुवाद किया है। इनमें से पहले का अनुवाद "तत्त्वतरंगिणी" नाम से हुआ है। इनके अतिरिक्त संस्कृत के प्रसिद्ध काव्य "रंभा-शुक-संवाद" का भाषांतर भी अच्छा है। मूल-संस्कृत में जो छंद हैं, प्रायः उन्हीं का प्रयोग हिंदी-अनुवाद में भी किया गया है।

"वसंत-वियोग"-नामक सुंदर काव्य खड़ी बोली में है। यह सन् १९१० में "सरस्वती" में छप चुका है। तदनंतर सन् १९१२ में "धर्मकुसुमाकर" में स्वतंत्र पुस्तक-रूप से प्रकाशित हुआ। इस काव्य में "कहानी के रूप में प्रकृति-सौंदर्य की सजावट के साथ...... देवनिष्ठा और कर्मयोग का उपदेश है।......शब्द और अर्थ दोनों का अद्भुत चमत्कार है।" इस काव्य का तात्पर्य यह है कि भारत-रूपी उद्यान में किसी समय अखंड और निरंतर वसंत का वास

था। इसकी अयोध्या, मथुरा, चित्रकूट आदि क्यारियाँ हरी-भरी और दिव्य पुष्पों से संपन्न थीं। इसकी गंगा-यमुनादि नालियाँ हिमालय के सुंदर निर्झरों से निकलकर समस्त उद्यान को सींचकर समृद्ध बनाए रखती थीं।

"फूले-फले द्रुम-पुंज ; मृदु मंजु वल्ली कुंज।
अलि-वृंद की गुंजार ; सुंदर विहंग पुकार।
मारुत सुगंधित मंद ; प्रिय भानु चंद अमंद ;
गायन रसायन संग ; रंजन प्रमोद-प्रसंग।
माली समस्त प्रसन्न ; संसार सुख-संपन्न।"

परंतु वसंत के वियोग के अनंतर इसकी दशा और ही हो गई।

था जहाँ हंस-विलास ; हाँ हुआ गृद्ध-निवास।
था जहाँ कोकिल-गान ; हाँ अंध खग भयदान।
था जहाँ पुष्प-प्रबंध ; छाई वहाँ दुर्गंध।
थे जहाँ तरुवर-पुंज ; शुभ ललित लतिका कुंज,
हाँ जमे रूखे रूख ; पौधे गए मृदु सूख।
था जहाँ बारामास ; सुंदर वसंत-विलास।
दुर्दैव का हाँ योग ; लाया वसंत-वियोग।

परंतु कवि उग्र आशावादी है, जैसा कि ऊपर किसी और प्रसंग में कहा जा चुका है।

'आनंद-चंद्रिका की होगी उजियाली ;
पूरन-प्रबोध-रवि चमकेगा द्युतिशाली।
इस भाँति निवासी-वर्ग मोद पावेगा ;
तुम धैर्य करो फिर भी वसंत आवेगा।"

इस काव्य में "पूर्ण"जी ने प्रकृति-वर्णन अच्छा किया है। देश-भक्ति की इसमें अद्भुत छटा है। कविता भी मधुर है और हमारी राय में खड़ी बोली में यह उनका सर्वोत्तम काव्य है।

अन्य स्फुट कविताओं में "अन्योक्ति-विलास", "हा गोखले !", "हिंदू-विश्वविद्यालय", "नवीन संवत्सर का स्वागत", "सरस्वती", "वामन", "कादंबरी" और ऋतु-संबंधी कविताएँ विशेष उल्लेख के योग्य हैं। लखनऊ के पंचम-हिंदी-साहित्य-सम्मेलन में जो स्पीच उन्होंने दी थी, वह अन्यत्र अविकल-रूप से दी गई है। उसको लोगों ने बहुत पसंद किया था और उसकी सामयिक पत्रों में बड़ी प्रशंसा हुई थी। कहते हैं, 'पूर्ण'जी ने उसको सभा-मंडप ही में तत्क्षण रचा था।

कविता के विषय में 'पूर्ण'जी के विचार

आजकल हिंदी-जगत् में कविता के संबंध में अनेक विषयों पर वादाविवाद हो रहा है। मासिक पत्रों और साहित्य-सम्मेलनों में प्रतिवर्ष इस विषय की चर्चा होती है। साहित्य-सम्मेलन के सभा-पति अपनी वक्तृताओं में भी हिंदी-साहित्य की कतिपय गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न करते हैं। कविता क्या है ?, कविता के लक्षण क्या हैं ?, सत्काव्य और भद्दी कविता में क्या भेद है ?, कविता में शब्दावली और शब्दालंकार का क्या स्थान है ?, कविता की भाषा कौन-सी होनी चाहिए ?, ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में से हिंदी-कविता के लिये कौन अधिक उपयुक्त है ?, कविता तुकांत हो या अंत्यानुप्रास-हीन ?, क्या हिंदी लिखने में शुद्ध संस्कृत और ठेठ हिंदी के शब्दों के अतिरिक्त और किसी अन्य भाषा के शब्दों का प्रयोग करना चाहिए या नहीं ? इत्यादि प्रश्नों पर प्रतिवर्ष कुछ-न-कुछ कहा जाता है, परंतु अभी तक किसी प्रतिष्ठित और सर्वमान्य संस्था की ओर से इन पर कुछ निर्णय नहीं हुआ। अतएव यहाँ पर इन प्रश्नों पर 'पूर्ण'जी के विचारों का प्रकाशित करना प्रसंग-विरुद्ध न होगा।

सितंबर १९०६ की 'सरस्वती' में 'पूर्ण'-लिखित "सत्कविता पर

बातचीत"-शीर्षक एक लेख है। उसमें सुकवि और रसिक के बीच जो बातचीत हुई है, उसका कुछ अंश हम यहाँ देंगे। इसके अतिरिक्त "चंद्रकलाभानुकुमार-नाटक"[१] की भूमिका में भी कवि ने अपना मत संक्षेप में प्रकाशित किया है। मई १९१२ के "धर्मकुसुमाकर" में भी "स्मरणालंकार और उपासना"-शीर्षक मनोहर लेख के अंतर्गत भी इस विषय पर कुछ कहा गया है।

कविता की परख

किसी कविता को अच्छी या भद्दी कहनेवाले अधिकांश में अपनी रुचि के सहारे चलते हैं। रुचि में भेद होना स्वाभाविक है। तभी तो—

"केचिद्वदन्त्यमृतमस्ति सुरालयेषु
केचिद्वदन्ति वनिताधरपल्लवेषु ;
ब्रूमो वयं सकलशास्त्रविचारदक्षा
जम्बीरनीरपरिपूरितमत्स्यखण्डे।"

अर्थात्—

कोऊ सुधा सुरन के घर में बतावैं,
कोऊ ललाम ललनाधर में बतावैं ;
सच्छास्त्र छानि हम तासु पता बताहीं,
जंबीर-नीरमय मीनन-खंड माहीं।

'पूर्ण'

"तो फिर उत्तम कविता कौन?", "जिसे उत्तम रसिक पसंद करें।" परंतु "उत्तम रसिक" किसे कहते हैं? यह प्रश्न तो रह ही गया। ख़ैर—"क्या कोई कविता भद्दी भी होती है?", "हो सकती है। जो लोग सहृदयता और कवित्व-परिज्ञान में कोरे हैं, वे कविता को साफ़-सुथरी, चिकनी-चुपड़ी, भद्दी, खुरखुरी, नरम, सख़्त, जो चाहें कह सकते हैं; क्योंकि कवि-समय-सिद्ध कविता के गुण-दोष-सूचक विशेषणों को वे जानते ही नहीं।"

अच्छा तो "कविता की भाषा कौन-सी होनी चाहिए?", "उड़िया, तैलंगी, गुजराती, मारवाड़ी, पैशाची, नैशाचरी, खड़ी, पड़ी, बैठी, कोई भी हो। परंतु जो भाषा हो, अपनी प्रथा के अनुसार स्वच्छ हो।" (सरस्वती)

कविता की भाषा

यद्यपि 'पूर्ण'जी ने अधिकतर ब्रजभाषा को ही अपनाया है, परंतु ब्रजभाषा के "एक्स्ट्रीमिस्ट" पक्षपातियों की भाँति यह कदापि कहने को तैयार नहीं हैं कि जो कुछ माधुर्य, लालित्य और रोचकता ब्रजभाषा में है, वह खड़ी बोली में कभी हो ही नहीं सकती। यह बात दूसरी है कि अभी तक खड़ी बोली में पद्य-रचना के विचार से इतनी परिपक्वता नहीं आ पाई है, परंतु यह कहना कि वह कभी उस दशा को पहुँच ही न सकेगी, भाषा-तत्त्व और कविता के मर्म से अनभिज्ञता प्रकट करना है।

"हिंदी-पद्य में प्राचीन-से-प्राचीन और आधुनिक-से-आधुनिक जितने उच्च श्रेणी के कवि हुए हैं, सबोंने प्राकृत भाषाओं और (उनमें सबसे अधिक ब्रजभाषा) का प्रयोग किया है। यही कारण है कि ये भाषाएँ पद्य की भाषा मान ली गई हैं। यद्यपि वे भाषाएँ, खड़ी बोली से थोड़ा-बहुत अंतर रखती हैं, तथापि उन भारतवासियों के लिये जो हिंदी बोलनेवाले प्रांतों में रहते हैं, वे ही भाषाएँ मातृभाषावत् सरल और सुंदर हैं और बड़े-बड़े कवियों के द्वारा व्यवहृत होते-होते उनमें पद्य-प्रयुक्त होने की विशेष योग्यता आ गई है। वह योग्यता खड़ी बोली में तब आएगी जब वह भी पद्य-रचना के लिये समर्थ कवियों के द्वारा व्यवहार की खराद पर चढ़ाई जायगी।"......"मेरा अभिप्राय कदापि नहीं है कि खड़ी बोली में कोई कविता न करे वा यह कि खड़ी बोली में उत्तम कविता हो नहीं सकती। जब अँगरेज़ी, फ़ारसी इत्यादि संसार-भर

की भाषाओं में कवि की शक्ति के अनुसार उत्तम कविता हो सकती है, तो खड़ी हिंदी में भी हो सकती है। किंतु अभिप्राय केवल इतना है कि यदि साहित्य-सेवियों का "रैडिकल" दल पद्य-भाषा को पद-च्युत करने का साहस न करेगा, तो उसकी मातृभाषा पर बड़ी कृपा होगी।" (चं० भा०-नाटक की भूमिका)

इसी प्रश्न के साथ इस प्रश्न का भी घनिष्ठ संबंध है—"क्या गद्य और पद्य की भाषा एक होनी चाहिए?" इस पर अँगरेज़ी के प्रसिद्ध कवि वर्ड्सवर्थ ने गत शताब्दी में बड़ा आंदोलन उठाया था। उनका मत था कि गद्य और पद्य दोनों की भाषा एक होनी चाहिए। उन्होंने स्वयं गद्य की सरल भाषा में अनेक कविताएँ लिखी हैं। परंतु वह स्वयं सर्वदा इस नियम का पालन न कर पाए। इस प्रश्न पर 'पूर्ण' का मत भी सुनिए—

"यदि खड़ी बोली के पक्ष-समर्थक यह आशा करते हैं कि खड़ी बोली में छंद रचने से एक दिन वे लोग गद्य और पद्य की हिंदी एक कर देंगे, तो उनकी भूल है। जब कोई भाषा कवियों के पाले पड़ती है, तब उसमें वे ऐसा परिवर्तन कर ही लेते हैं, जिससे वह लचीली होकर छंद में सुगमता से प्रयुक्त हो सके; और उस परिवर्तन का क्रम यहाँ तक चलता है कि एक दिन दीर्घ काल के व्यवहार से वह परिवर्तित भाषा पद्य की भाषा हो जाती है। मैं पूछता हूँ कि वह कौन-सी भाषा है, जिसका व्यवहार गद्य और पद्य दोनों में एक ही ढंग पर होता है? मिल्टन का गद्य मिल्टन ही के पद्य से मिला देखिए, हज़रत सादी की गुलिस्ताँ उन्हीं की बोस्ताँ से मिला देखिए, सरूर का फ़साना अजायबवाला गद्य उन्हीं के शेरों से मिला देखिए, यहाँ तक कि आजकल ही की उर्दू के गद्य और पद्य आपस में मिला देखिए, और कहिए कि दोनों में भाषा का रंग-ढंग भिन्न प्रकार का है या नहीं?..................

इतना मैं स्वीकार करता हूँ कि अन्य भाषाओं के देखते हिंदी में गद्य और पद्य की भाषा में अधिक अंतर है; परंतु वह अंतर ऐसा नहीं है कि इस विषय में किसी नवीन प्रणाली के चलाने की अपेक्षा हो।" (चं० भा०-ना०)

खड़ी बोली के 'गरम-दल'वाले पक्षपाती कहते हैं कि ब्रजभाषा में कविता करना मृत भाषा में कविता करना है। जैसे कोई अँगरेज़ी का कवि आजकल चासर या शेक्सपियर की भाषा में कविता करे, वैसे ही आजकल हिंदी के कवि का ब्रजभाषा में कविता रचना है। इसके उत्तर में 'पूर्ण'जी कहते हैं—

"हिंदी-पद्य की भाषा यदि चासर और स्पेंसर की अँगरेज़ी की भाँति क्षीणायु वा अप्रचलित भाषा होती, तो कदाचित् पद्य के लिये नवीन भाषा की आवश्यकता होती। परंतु पद्यवाली भाषा तो लोगों की विशेषकर मातृभाषा है। उसका तिरस्कार कैसा?", ब्रजभाषा को मुर्दा ज़बान कहनेवाले हिंदी-प्रांत-निवासी नहीं जान पड़ते; आफ़्रिक़ा-वासी के मुख से ऐसी बात शोभा दे सकती थी।

तुक

तुक के संबंध में भी आजकल हिंदी-संसार में बड़ी खलबली मची है; विशेषकर कविवर पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय के प्रसिद्ध अंत्यानुप्रास-हीन महाकाव्य "प्रियप्रवास" के प्रकाशित होने के बाद इस प्रश्न ने बड़ा ज़ोर बाँधा है। किसी-किसी ने तो उसे "बेतुका" कहकर उस पर ख़ूब छींटे डाले हैं। केवल तुक न होने से "प्रियप्रवास"-से उत्कृष्ट काव्य को 'भद्दा' कहने का भी दुस्साहस लोगों ने किया है। इस विषय पर भी 'पूर्ण'जी का मत अत्यंत उपादेय और निष्पक्ष है।

"तुक के विषय में मुझे इतना ही कहना है कि जैसे संगीत में सुरावट का बाधक ताल है, वैसे ही काव्य में तुक का नियम भी

एक बाधा है। तो क्या बेतुकी हाँकी जाय ? जी नहीं ! जिन छंदों में तुक अपरित्याज्य है, उनमें तुक का न लाना अवश्य बेतुकापन होगा। परंतु बहुत-से ऐसे छंद हैं, जो धाराप्रवाह कविता करने के लिये उपयोगी हैं, और जिनमें तुक न लाने से काव्य-सौंदर्य में हानि न होगी, जैसे "रोला-छंद"। गणात्मक छंदों में भी तुक की आवश्यकता कम प्रतीत होती है। यदि तुक को अनावश्यक माननेवाले बेतुके कहे जायँ, तो तुक को अपरित्याज्य माननेवाले तुकिए क्यों न कहे जायँ ? तुक पद्य का अंग नहीं है। इसके प्रमाण में भाषाओं की माता संस्कृत ही को देख लीजिए।"

(चं० भा०-ना० भू०)

अलंकार

...अर्थालंकार के संबंध में विशेष मत-भेद न होगा, केवल शब्दालंकार के विषय में अधिक विवाद है। कोई-कोई कवि अर्थ की तनिक भी परवा न करके केवल शब्दाडंबर ही को कविता मान बैठते हैं। हिंदी के बहुत-से कवियों की रचनाओं में यह बात पाई जाती है। यदि अनुप्रास और विहंगम शब्दावली का घटाटोप निकाल दीजिए, तो वास्तविक भाव या तत्त्व बहुत कम शेप रह जाता है। इस पर भी 'पूर्ण'जी का मत मान्य है—

"जैसे आभूषण से शरीर का सौंदर्य अधिक होता है, वैसे ही 'अलंकार' से कविता सुंदर होती है।......कभी-कभी किसी को यह कहते सुना है कि शब्द-रचना में समय खोना व्यर्थ है। अर्थ की सुंदरता से ही कविता सुंदर होती है। ऐसा कहना इतने ही अंश में ठीक है कि कवि को शब्दों की सुंदरता के पीछे अर्थ को नहीं बिगाड़ना चाहिए, और न पदस्थापना क्लिष्ट करनी चाहिए। यदि इन अवगुणों के साथ शब्दालंकार आवे, तो वह किसी काम का नहीं।। रहा समय का व्यय, यह कवि की

'फ़ुर्सत' पर निर्भर है। तथापि शब्दों की खोज में हैरान होना किसी को भी पसंद न होगा। समर्थ कवि अपने मतलब के शब्द इस तरह उपस्थित कर लेता है, जैसे बड़े देश का राजा अपनी फ़ौज के लिये अभीष्ट डीलडौल के सिपाही सुगमता से चुन लेता है।

"हम शब्दालंकार के पक्षपाती नहीं हैं, परंतु सुगमता से आनेवाले अलंकार-संयुक्त शब्द का तिरस्कार करना भी हमको अभीष्ट नहीं। संसार में गुण और रूप, दोनों की महिमा है। अर्थ कविता का गुण है तो शब्द रूप का। गुणवती वस्तु का स्वरूप सुंदर ही होना चाहिए। परमात्मा की प्रकृति भी रूप की सुंदरता ही की ओर झुकती है। आकाश नीला बनाया तो उसमें बूटे सफ़ेद सितारों के बनाए।...... जंगल हरे बनाए तो उनमें फूल लाल, पीले, बैंजनी इत्यादि लगाए......। झील-सरोवर में पानी की शोभा के लिये अनेक रंगों के कमल खिलाए, परंतु पानी के रंग के नहीं, और उन कमलों पर भौंरे उड़ाए तो काले रंग के।......"

(धर्मकुसुमाकर, मई १९१२)

हिंदी में अन्य भाषाओं के शब्द

इस विषय पर अब प्रायः मतैक्य है। अन्य भाषा के उपयोगी और आवश्यक शब्दों को ग्रहण कर लेने से हिंदी का लाभ ही होगा। इस पर पूर्णजी कहते हैं—

"मेरा यह मत कदापि नहीं है कि अन्य भाषा का शब्द हिंदी में आने ही न पावे"; क्योंकि हिंदी के बड़े-बड़े आचार्यों और महाकवियों तक ने फ़ारसी के अनेक शब्दों का प्रयोग किया है। "और बहुत-से अँगरेज़ी वा फ़ारसी के शब्द तो ऐसे हैं (जैसे 'वकील', 'रेल', 'मिसिल', 'इंजन') कि उनके पर्याय हिंदी में गढ़ना भाषा को चटनी का चबेना बनाना है।"

अंत में कविता के संबंध में 'पूर्ण'-रचित एक छंद हम यहाँ देते हैं—

कविता-कामिनी

जावक जमक सों चरन चारु रंजित के
सुबरन अंगराग सोभा रची प्यारी है;
भावन वलित गुन कलित सजीली ताहि
दायक अनंद पहिराई छंद सारी है।
रूप है सरस, सुखमा है और अंगन की,
'पूरन' बिलोक लोक होत बलिहारी है;
पूरे कवि सोई जिन रूरे अलंकारन सों
कविता-सरूपी वर वनिता सँवारी है।

पूर्णजी का प्रकृति-वर्णन

हिंदी-कवियों की बहुधा यह शिकायत की जाती है कि वे शृंगार-रस में रँगे हुए नायक-नायिका के नखशिख-वर्णन में काग़ज़ काले करते हैं, परंतु सीधे-सीधे प्रकृति-वर्णन की ओर कभी नहीं झुकते। अधिक-से-अधिक यदि वे प्रकृति-वर्णन में हाथ डालते हैं तो कवि-क्रमागत कतिपय उपमाओं का ही प्रयोग करते हैं, जैसे कमल और भौंरे का संबंध, चकवा और चकई का प्रेम, हंस की चाल इत्यादि।

यह बात वास्तव में बहुत अंशों में ठीक भी है, यद्यपि कुछ भक्त कवियों ने कृष्ण-चरित का गान करते समय मथुरा-वृंदावन आदि के कालिंदी-तटवर्ती मनोरम कुंजों के वर्णन में बहुत कुछ प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण में सिद्धहस्तता का परिचय दिया है। अस्तु।

परंतु उपर्युक्त सिद्धांत पूर्णजी पर लागू नहीं होता। वह थे तो व्रजभाषा के कवि, परंतु प्राचीन कवियों की भाँति सदैव पुरानी लीक पर चलना नहीं स्वीकार करते थे। जहाँ वह रसिक-समाज में कवित्त तथा सवैयों में कविता करते थे, वहाँ छप्पय, रोला तथा अन्यान्य नवीन छंदों का भी प्रयोग करते थे, जिनका प्रचार

पुराने कवियों में कम था। इसी प्रकार प्रकृति-वर्णन में भी आपने पर्याप्त परिमाण में कविता की है, जो पुराने कवियों की भाँति कोरा शृंगार का उद्दीपन ही नहीं है, प्रत्युत उसमें वर्षा-वर्णन, शरद्-वर्णन, वसंत-वर्णन आदि अनेकानेक प्रकृति के स्वरूपों का समावेश है। अब देखना यह है कि पूर्णजी प्रकृति-वर्णन में किस भाव को उन्नत रखते थे और उसमें वह कहाँ तक सफल हुए हैं।

स्थूल रीति से पूर्णजी की प्रकृति-संबंधी कविता दो भागों में विभक्त की जा सकती है। एक में तो वह एक असाधारण रसज्ञ पुरुष की भाँति प्रकृति के दृश्यों का निरीक्षण करके उनको लालित्य तथा माधुर्य-पूर्ण शब्दों में छंदोबद्ध कर देते थे।

उदाहरणार्थ वर्षा-वर्णन की दो पंक्तियाँ लीजिए—

"लहलही लहरान लागीं सुमन बेली मृदुल ;
हरित कुसुमित लगे झूमन बिरिछ मंजुल बिपुल।"

इन पंक्तियों में केवल शीतल, मंद वायु के झकोरों से दोलाय-मान लताओं का वर्णन है; परंतु वह ऐसे शब्दों में किया गया है, जिनसे सामने चित्र-सा खिंच जाता है। पहली पंक्ति में 'लकार' तथा अल्पप्राण अक्षरों के कारण श्रुति-माधुर्य और मृदुलता की अनुपम छटा तो है ही, साथ-ही-साथ पढ़ने से यह भी मालूम होता है, मानो सचमुच लताएँ लहरा रही हैं।

दूसरे प्रकार की प्रकृति-वर्णनात्मक कविता में वह दृष्टिगत दृश्य की छोटी-से-छोटी घटना को लेकर उसे रूपकों तथा उपमाओं का ऐसा मनोहारी जामा पहनाते हैं कि उसमें एक अद्भुत छटा आ जाती है। वर्षा-वर्णन में बूँदों की उपमा देते हुए आप कहते हैं—

"कीधौं मारतंड की प्रचंडता-समन हेतु
देवी धरनी ने बान सीतल पँवारे हैं ;

कीधौं निज संपति को चोर-सविता को जानि
करत बरुन ओर वाही के इसारे हैं।"

इन दोनों प्रकार की प्रकृति-विषयक कविताओं में दो बातें उल्लेख्य हैं। एक तो उनकी कविता से यह जान पड़ता है कि प्रकृति-निरीक्षण के लिये उनकी दृष्टि बड़ी पैनी थी और प्रतिदिन होनेवाली साधारण प्राकृतिक घटनाओं की सूक्ष्मातिसूक्ष्म बातों पर वह अपना विचार-प्रतिबिंब डाले बिना नहीं रहते थे। कई स्थलों पर, स्वयं वेदांती होने के कारण, उन्होंने प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में वेदांत की झलक डाली है।

ग्रीष्म-प्रभात-वर्णन करते हुए वह कहते हैं—

"उवत भानु के भयो सकल निसि तिमिर-विनासा ;
ज्यों नसात मोहांध होत जब ज्ञान-प्रकासा ।"

तथा—

"कलरव रुचिर सुनात करत जो गान विहंगा ;
वहति समीर सुवास ताल जल उठति तरंगा।
करि-करि मंत्र-विधान साधु ग्रीपम सुख पावत ;
रेचक प्रानायाम करत, हिय उमँग बढ़ावत।"

दूसरी विशेषता पूर्णजी के प्रकृति के वर्णनों में यह मिलती है कि उनमें रंगों तथा फूलों के ऐसे अनेक वर्णन हैं, जिनसे कवि की तद्विषयक विशेषज्ञता टपकती है। उनकी 'अमलतास' तथा 'वसंत-वियोग'-शीर्षक कविताओं में तथा यत्र-तत्र स्फुट कविताओं में फूलों की विशेष छटा है।

ऊपर हम कह चुके हैं कि पूर्णजी की प्रकृति-विषयक कविता दो श्रेणियों में विभक्त हो सकती है। उन दो श्रेणियों के भी दो उपभाग हो सकते हैं। एक तो वह कविता, जिसमें उन्होंने पुराने ढंग से प्रकृति-वर्णन किया है, और दूसरी वह, जिसमें उन्होंने

कालिदास आदि की भाँति स्वतंत्र रीति से प्रकृति में मानव-भावों का आरोपण किया है। इन दोनों प्रकार की कविताओं के उदाहरण उद्धृत करके हम इस विषय को समाप्त करेंगे—

(१)

"जल-भरी भारी कारी बादरी बिराजै व्योम
गरजत मंद मंत्र मंगल उचारे हैं;
छहराति दामिनि सो भाजन घुमावन में
दमकत भूषन अमंद दुतिवारे हैं।
परत फुहार, जल पावन झरत सोई
पेखि कवि 'पूरन' विचार उर धारे हैं;
प्यारी सुकुमारी की बलाँय बरकावन को
देखो देवनारी आज आरती उतारे हैं।"

(२)

"झूमि-झूमि, लोनी-लोनी लतिका लवंगन की
भेंटती तरुन सों पवन मिस पाय-पाय;
कामिनी-सी दामिनी लगाए निज अंक तैसे
साँवरे बलाहक रहे हैं नभ छाय-छाय।
घनस्याम प्यारी वृथा कीन्हों मान पावस में
सुनु तौ पपीहा की रटन उर लाय-लाय;
पीतम-मिलन-अभिलाषी-वनिता-सी लखौ
सरिता सिधारी ओर सागर के धाय-धाय।"

(३)

"औरै भाँति आज नीर जमुना किलोलति है
औरै भाँति डोलत समीर सुखदाई है;
औरै भाँति भयो है कदंबन भ्रमर-भार
भुरवान-भुरवान औरै धुनि छाई है;

स्याम के जनम दिन भीर गोप-गोपिन की
औरै भाँति नंद-भौन जस-भूरि धाई है ;
औरै भाँति 'पूरन' रसाल गान छाजत है
औरै साज संग आज वाजत बधाई है।"

(४)

चातक समूह बैठे बोलन को बाए मुख,
नाचन को मोर ठाढ़े पाँव ही उठाए हैं ;
पूरनजी पावस को आगम सुखद जानि,
आनँद सों बेलिन के लिये लहराए हैं।
द्रोही द्रुम जाति केरे ! अरक जवास एरे !
तेरे जारिबे के अब धौस नियराए हैं;
हीतल महीतल को सीतल करनहारे,
देखु कैसे प्यारे घन कारे घेरि आए हैं।

(५)

सरद निसा में व्योम लखिकै मयंक बिन,
पूरन हिए में इमि कारन बिचारे हैं;
बिरह जराई अबलान को दहत चंद्र,
तातें आज तापै विधि कोपे दयावारे हैं।
निसिपति पातकी को तम की चटान बीच,
पटकि पछारे अंग निपट बिदारे हैं;
ताते भयो चूर-चूर उचटे अनंत कन,
छिटके सघन सो गगन मध्य तारे हैं।

(६)

पावक जुड़ानी बिषधरन गँवाई रिस,
चंडकर सकल प्रचंडता बिहाई है;

चोर व्यभिचारी निसि भ्रमन विहाय बैंठ,
सिंह वृक बृंद बैठ्यो गुहन लुकाई है;
सींत बस जाके दिन दीन ह्वैकै सिमिटत,
पाला मिसि कीरति अपार जासु छाई है;
'पूरन' बिलोकौ जग सातुकी बनावन को,
सांतिमई सीतमई सिसिर सुहाई है।

(७)

चंपक, निवारी, दोना, मोगरा, चमेली, बेला
गेंदा गुलदावदी गुलाब सोमसाली है;
केतकी, कनेर, गुलसब्बो, गुलनार लाला,
हिना जसवंत कुंज केवड़ा की वाली है;
'पूरन' बिबिध चारु सुंदर प्रसूनन की,
छटा छिति मंडल में छै रही निराली है;
पूजन को मानौं बनमाली के चरन कंज,
साजत बसंत माली फूलन की डाली है।

उपसंहार में यह कहना प्रसंग के विरुद्ध न होगा कि पूर्णजी एक सहृदय जीव थे, और साथ-ही-साथ एक असाधारण कवि भी। बस, इतना ही कहने से पता लग सकता है कि वह प्रकृति-सौंदर्य के इतने उपासक थे, जितना कि एक सांसारिक धंधों में लगे हुए गृहस्थ के लिये संभव है ; क्योंकि प्रकृति में तल्लीन होना और उसकी लीलाओं पर तत्त्वान्वेषी की भाँति मनन करके किसी फ़िलासफ़ी की धूम मचाना तो किसी वर्ड्सवर्थ ही का काम है। अस्तु, पूर्णजी पूर्ण सौंदर्य-प्रेमी थे और आत्मानंद के लिये सब कहीं से सामान ला-लाकर कविता-देवी के मंदिर में चढ़ाते थे। उनकी कविता में किसी फ़िलासफ़ी की खोज करना व्यर्थ है।

पूर्णजी और हिंदी-संसार

पूर्णजी की कविता का संक्षिप्त परिचय हम दे चुके। उससे पाठकों को उनकी कवित्व-शक्ति का थोड़ा-बहुत अनुमान हो गया होगा। पूरा परिचय प्राप्त करने और हिंदी के वर्तमान युग में उनका वास्तविक स्थान निश्चित करने के लिये हम सहृदय पाठकों से एक बार इस 'संग्रह' के पढ़ने का अनुरोध करेंगे।

परंतु प्रश्न यह है कि हिंदी-संसार ने उनके प्रति क्या किया? "हिंदी-कोविद-रत्नमाला" के विज्ञ लेखक ने उनका चरित्र अपनी "माला" में नहीं दिया। "मिश्रबंधु-विनोद" के विद्वान् लेखकों ने उनकी गणना 'तोष' की श्रेणी में की है। मिश्रबंधुओं ने अपने विचित्र तराज़ू में तौल-तौलकर सब कवियों को भिन्न-भिन्न श्रेणियों में बिठाया है। किसी को 'रिज़र्व' क्लास का टिकट दे दिया है, और किसी को दर्जा १, २, ३, ४, ५ आदि में रख दिया है। इस प्रकार "तोष की श्रेणी" होने के कारण पूर्णजी को दर्जा चार का सर्टीफ़िकट मिला है। इसका अर्थ विज्ञ मिश्रबंधु ही जानें।

उपसंहार

कुछ हो, वर्तमानकालीन हिंदी के कवियों में पूर्णजी का स्थान अवश्य उच्च है। उनकी रचनाओं में समकालीन समाज और जीवन का जैसा जीता-जागता चित्र और जैसी अनुपम झलक है, वैसी शायद ही और किसी वर्तमान हिंदी-कवि की रचना में हो। बहुत-से कवि अपनी बाह्य परिस्थिति की ओर से आँख बंद करके कविता करते हैं। इसका कारण या तो यह हो सकता है कि जिस युग अथवा समाज में वे रहते हैं, उसकी ओर से वे असाधारण रूप से उदासीन हो जाते हैं, और या अपनी आँखों से काम लेना उन्होंने नहीं सीखा।

विषय-व्यापकता के विचार से भी पूर्णजी वर्तमान काल के अनेक कवियों से बढ़े हुए हैं। उनकी-सी विषय-व्यापकता बहुत कम कवियों में है। उनकी कविता मधुर, सानुप्रास और प्रसाद-गुण-पूर्ण है। इस प्रकार विषय-व्यापकता, लालित्य, प्रसाद-गुण और भाव-गांभीर्य आदि उनकी कविता की प्रधान विशेषताएँ हैं। उनकी रचना में उनकी प्रतिभा की छाप लगी हुई है। हिंदी के वर्तमान कवियों में उनके समान सुशिक्षित, बहुज्ञ और प्रतिभा-संपन्न बहुत कम निकलेंगे। यद्यपि अल्पायु हो जाने से उनकी प्रतिभा पूर्ण रूप से प्रस्फुटित न हो पाई, तथापि इतने समय में भी उन्होंने जो कुछ किया, वह उनके नाम को कृतज्ञताशील भावी संतान के हृदय में अजर-अमर बनाए रखने के लिये पर्याप्त है।

विषय-सूची

पूर्ण-संग्रह

" Poetry is like shot silk with many glancing colours, and every reader must find his own interpretation according to his ability and according to his sympathy with the poet. "—Tennyson.

" We want the poetry of life. "—Shelley.

" There are certain faces for certain painters as well as certain subjects for certain poets. "—Steele.

"जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं ;
सो स्रम बादि बाल-कवि करहीं ।
कीरति भनित भूति भल सोई ;
सुरसरि-सम सबकर हित होई ।"

—तुलसीदास

१—ईश्वर-प्रार्थना

(१)

हे करुना-जलधि करतार ;
है यही विनती हमारी नाथ बारंबार ।
यह समय अति पोच आयो सोच छायो भार ;
देहु तातें पुरुष उत्तम गुनन के आधार ।
देस-प्रेमी, सत्य-नेमी, धीर, वीर, उदार ;
तेजसी, बुध, साहसी, वर, जसी, विद्यागार ।

धर्मरत, सुभकर्मकारी, सील-पारावार ;
दूर जिनसों उच्च पद के वासना-विस्तार।
लोभ-छोभ-विहीन, पुलकित करहिं लम स्वीकार ;
सुमति-राँचे, सदा साँचे, प्रन-निवाहनहार।
लोक-प्रिय, निस्पृह, सुहृद-सम समुझिं सब संसार ;
करहिं निज-पर-काज में जो तुल्य ही व्यवहार।
निडर, निर्मल हृदय, विद्या-बुद्धि के आगार ;
करहिं जो सब भाँति राजा-प्रजा के उपकार।
देहु 'पूरन' पुरुप ऐसे देस-सेवाकार ;
होहि जिनसों बेगि भारत-भूमि को उद्धार*।

(२)

लक्ष्मी दीजे लोक में मान दीजे; विद्या दीजे सभ्य संतान दीजे।
हे हे स्वामी प्रार्थना कान कीजे; कीजे कीजे देस-कल्यान कीजे।
सुमति सुखद दीजे, फूट को लोग त्यागैं ;
कुमति-हरन कीजे, द्वेप के भाव भागैं।
तजि कुसमय निद्रा, चित्त सों चेति जागैं ;
विपम कुपथ-त्यागैं, नीति के पंथ लागैं। हे हे स्वामी०
तंद्रा त्यागैं लहि कुसलता, होहिं व्यापार-नेमी ;
सीखैं नीकी नव-नव कला, होहिं उद्योग-प्रेमी।
पूरे रूरे नियम विधि सों, स्वस्थता के निवाहैं ;
उत्कंठा सों दिवस-निसिहू, देस की वृद्धि चाहैं। हे हे स्वामी०
पावैं पूरी प्रतिष्ठा कविवर जग के, शुद्ध साहित्य ज्ञानी;
होवैं आसीन ऊँचे, सुजन विदित जे देस-सेवाभिमानी।
पीड़ा-दुर्भिक्ष सारी, जुग-जुग कबहूँ प्रांत कोऊ न पावै ;
दीर्घायू लोग होवैं, तिन ढिग कबहूँ रोग कोऊ न आवै। हे हे स्वामी०

* 'सरस्वती' से

सत्संग, संत-सुर-पूजन, धेनु-प्रेम,
श्रीराम-कृष्ण- चरितामृत- पान-नेम।
सौजन्य-भाव, गुरु-सेवन आदि प्यारे,
संपूर्ण शील, शुभ पावहिं देश वारे। हे हे स्वामी०
अन्याय को अंक कहूँ रहै ना,
दुर्नीति की संक कहूँ रहै ना।
होवै सदा मोद विनोदकारी,
राजा-प्रजा में अनुराग भारी। हे हे स्वामी०
समस्त वर्णाश्रम धर्म मानैं,
सदाहि कर्तव्य प्रधान जानैं।
जसी तपस्वी बुध वीर होवैं।
बली प्रतापी रणधीर होवैं। हे हे स्वामी०
लक्ष्मी दीजै लोक में मान दीजै,
विद्या दीजै सभ्य संतान दीजै।
हे हे स्वामी प्रार्थना कान कीजै,
कीजै कीजै देश-कल्यान कीजै*।

(२)

पारिजात-शाखा की सुलेखनी उदार लैकै,
लिखैं ब्रह्मरानी जो समस्त गुन आगर है;
'पूरन' अकाश को बनावै पत्र सीमातीत,
मसीकै त्रिलोक अंबुराशि जो उजागर है।

---

* यह प्रार्थना 'पूर्ण'-रचित "चंद्रकला-भानुकुमार-नाटक" के अंत का भरत-वाक्य है। कवि को यह प्रार्थना बहुत प्रिय थी। धार्मिक उत्सवों में सर्वदा पूर्णजी स्वयं भी अन्य लोगों के साथ इसका 'कोरस'-गान करते थे।

करैं अस तीनौ काल शेष-गनराज संग,
जिनको प्रसिद्ध सब जग में प्रजागर हैं ;
पूरो कै सकै न यश रूरो रामनागर को,
भला कहूँ गागर में भरो जात सागर है* ।

(४)

कुंद इंदु हिम-धार धवल द्युति सुंदर बानी ;
शुभ्र वसन वर लसन अभय वर कर सुखदानी ।
सित सरोज आसीन हंस शुभ वाहनवारी ;
बीना-पुस्तक-पानि कुमति-मल मेटनहारी ।
विधि-हरि-हरादि सुर-वृंद-भर-वंदित जो श्रीभगवती;
'पूरन' विधि रच्छा करे बरदा मातु सरस्वती† ।

(५)

धैयाँ-धैयाँ चलत किलकि ब्रजजन के डेरे ;
हँसत मनोहर मंद मधुर लहि मोद घनेरे ।
बोलत 'मा' 'पा' बैन बिसारैं सुधि-बुधि मन की ;
गोपिन-तारिन संग मंजु-धुनि सुनि कंकन की ।

---

* यह कवित्त प्रसिद्ध शिवमहिम्नस्तोत्र के निम्न-श्लोक के आधार पर है—
"असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे,
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ;
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं,
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ।"

† यह छप्पय इस प्रसिद्ध श्लोक का अनुवाद है—
"या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता,
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना;
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता ,
सा मां पातु सरस्वती भगवती निश्शेषजाड्यापहा ।"

यों विलसत जो 'पूरन' सदा ईश कंद आनंद को ;
बंदहुँ सो इंदीवर-वदन श्यामल नंदन-नंद को* ।

(६)

(राग येमन—ताल ठेका)

तिहारे को बरनै गुन-जाल ;
जासु अकथ महिमा वर दीसत दस दिसि तीनहुँ काल ।
अगनित रचे चंद्र ग्रह-तारे, निराधार जे नभ-बिच न्यारे ;
है विधि अद्भुत शक्ति सहारे करत प्रमानी चाल ।
कौन बसत पुनि तिन लोकन में, कौन प्रकार कौन रूपन में ;
तिल-तिल अखिल चरित-चिंतन में थकति बुद्धि ततकाल ।
तोहि अनादि अनंत विचारत, ध्यान अपार गगन को धारत ;
तुव जस को अनुमात्र उचारत मति उरझति भ्रम-जाल ।
चींटी, मीन, विहंग, नर, हाथी, जीव असित जग अगनित जाती ;
सिरजि पालि मारत केहि भाँती धन्य अखिल-रखवाल ।
कानन शैल विशाल बनावै, कुसुमित हरित छटा सरसावै ;
प्रति तरुवर प्रभुता दरसावै पान फूल जड़ डाल ।
सूक्ष्म वस्तु तो लखी न जावै, सोऊ रुचि अति रूचिर बनावै ;
रंग विचित्र लखे बनि आवै धन्य सुकला विशाल ।
मात-उदर में पिंड बनावत, दै आकार जीव जनमावत ;
ज्याय पाल पुनि मार नसावत जानो जात न हाल ।
प्रानी जात कहाँ तनु त्यागी, पिता सुतादि रोवत जेहि लागी ;
झेलत दीन अजान अभागी महादुःख-जंजाल ।

---

* यह इस श्लोक का अनुवाद है—

"दोर्भ्यां दोर्भ्यां व्रजन्तं व्रजसदनजनाह्वानतः प्रोल्लसन्तं ,
मंद मंद हसन्तं मधुमधुरवचो मेति मेति ब्रुवन्तम् ;
गोपालीपाणितालीतरलितवदनभ्रान्तमुग्धान्तरालं ,
वन्दे तन्देवमिन्दीवरविमलदलश्यामलं नन्दबालम् ।

प्राननाथ! 'पूरन'! अविनाशी! क्षमाशील सुंदर सुखराशी;
श्रीसच्चिदानंद अविनाशी जय-जय विश्वभुवाल।

(७)

(राग विहाग)

तुम्हारे अद्भुत चरित मुरारि;
कबहूँ देत विपुल सुख जग में, कबहुँ देत दुख भारि।
कहुँ रचि देत मरुस्थल रूखो, कहुँ 'पूरन' जलरास;
कहुँ ऊसर, कहुँ कुंज, विपिन कहुँ, कहुँ तम, कहूँ प्रकास।

(८)

विपद्विदारण स्तोत्र*

(१)

कैधौं रूप धरिकै वराह बीर बंकट को,
घटके सँघारि दैत्य अवनी-उधारन में;
जन प्रह्लाद को धौं राखन को खंभ फारि,
ह्वैकै नरसिंह लागे राकस के फारन में।
कैधौं देव दानव के सागर मथत नाथ,
कच्छप ह्वै सोई सुधि मंदर सँभारन में;
पतित-उधारन! हा करुना-जलधि नाथ,
बार क्यों लगाई मेरी बिपति बिदारन में।

(२)

बारन की आरत गुहार सुनि दीनबंधु,
धाय चित दीन्हों ताहि ग्राह तें उबारन में;
दुखी जानि भारई को ध्यान को रमायो किधौं,
अंडन बचाइबे को घंटा तोरि डारन में।

---

*यह स्तोत्र कवि को अत्यंत प्रिय था। इसीलिये यह यहाँ संपूर्ण दिया जाता है। इसकी हजारों प्रतियाँ छपाकर कवि ने मुफ़्त बाँटी थीं।

कैधौं सुनि द्रोपदी की टेर करुना की भरी,
राखन को लाज लागे अंबर सँवारन में ;
पतित-उधारन ! हा करुना-जलधि नाथ,
बार क्यों लगाई मेरी बिपति बिदारन में ।

(३)

कैधौं अटके हो सबरी के बेर चाखन में,
कैधौं भक्त नरसी की हुंडी के सकारन में ;
जूटे हौ अजामिल के गनिके उधारन में,
कैधौं मुनि गौतम की अंगना को तारन में ।
कैधौं राम करत हतन खर-दूखन को,
लागे कुंभकर्न कैधौं रावनै सँघारन में ;
पतित-उधारन ! हा करुना-जलधि नाथ,
बार क्यों लगाई मेरी बिपति बिदारन में ।

(४)

कैधौं राम करत मुनीस मख राखिबे में,
मोहे कै जनकजू की बाटिका निहारन में ;
भूप-पन राखन को सीता-सोक नासन को,
मन कै लग्यो है सिव-चाप भंजि डारन में ।
मति उरझी धौं सुरझावन में कंकन के,
मिथिला-नवेलिन सों बारता सँवारन में ;
पतित-उधारन हा ! करुना-जलधि नाथ,
बार क्यों लगाई मेरी बिपति बिदारन में ।

(५)

हरखत कैधौं नाथ सुनिकै निषाद-वाद,
कैधौं चित दीन्हों है सुकंठ-भीति हारन में ;
कैधौं गति देत हौ जटायु को अनूप स्वामी,
लागे किधौं सेना भूरि सागर उतारन में ।

दरसन देत मात सीता को मुदित कैधौं,
लागे हौ विभीसनै तिलकराज सारन में ;
पतित-उधारन ! हा करुना-जलधि नाथ,
वार क्यों लगाई मेरी विपत्ति विदारन में ।

(६)

'पूरन' प्रतापी ध्रुव बाल की तपस्या पर,
रीझि बरदान बैन लागे हौ उचारन में :
कैधौं महादानी बलि भूप को छलन-काज,
अटकि रहे हौ बपु बामन को धारन में।
कैधौं चेत देन हेत मोहित कमंडली को,
लागे बाल-बच्छन की मंडली सँवारन में ;
पतित-उधारन ! हा करुना-जलधि नाथ,
वार क्यों लगाई मेरी विपति विदारन में ।

(७)

पूतना को तारत कै फारत बकासुर को,
कैधौं नाथ लागे हौ अघासुर सँघारन में ;
दावानल पीवत हौ कैधौं व्रज राखिबे को,
जूटे छिन याही आँगुरी पै गिरि धारन में ।
नाथत हौ काली को पछारत हौ केसी किधौं,
कंस मार लागे भूमि-भार के उतारन में ;
पतित-उधारन ! हा करुना-जलधि नाथ,
वार क्यों लगाई मेरी विपति विदारन में ।

(८)

रमत सुछंद कै अनंदकंद कुंजन में,
विहरत कैधौं कान्ह ! कालिंदी-कछारन में ;
कैधौं गोद जसुमति मात के करत मोद,
धेनु कै चरावत कै खेलत गुवारन में ;

मोहत कै बाँसुरी बजाय ब्रजनारिन को,
मोहे आपु ही धौं तरुनीन के बिहारन में ;
पतित-उधारन ! हा करुना-जलधि नाथ,
बार क्यों लगाई मेरी बिपति बिदारन में ।

(९)

गोपिन को माखन चुराय नवनीत कैधौं,
चीर हरि बैठे दुरि तुंग द्रुम-डारन में ;
ब्रज तें पधारन में सोच उर छायो किधौं,
लागे कान्ह कूबरि के अंगहि सुधारन में ।
ज्ञान को सँदेसो समझाय रहे ऊधव को,
लागे किधौं मथुरा ते द्वारिकै सिधारन में ;
पतित-उधारन ! हा करुना-जलधि नाथ,
बार क्यों लगाई मेरी बिपति बिदारन में ।

(१०)

रुकमिनिजू के काज याही छिन लागे नाथ,
सिसुपाल-सेना को असेष चेत-हारन में ;
कैधौं अनिरुद्ध-काज ठानि बिकराल जुद्ध,
सुरति लगाई जदु-सैन को सँवारन में ।
भूपति-कुमारी जानि पीड़ित हजारन धौं,
चित को लगायो भौम-राकस को मारन में ;
पतित-उधारन ! हा करुना-जलधि नाथ,
बार क्यों लगाई मेरी बिपति बिदारन में ।

(११)

आय घेर्यो छीन दीन दुखिया सुदामा तासु,
चाँवर चबाय लागे मित्रता सँचारन में ;
करत सहित कुल सेवा तासु कैधौं लगे,
ताके भाल दारिद की लिपि को बिगारन में ।

संपति धनेस की भरत भौन ताके किधौं,
लागे राज-बाज-धेनु-बसुधा सँवारन में ;
पतित-उधारन ! हा करुना-जलधि नाथ,
वार क्यों लगाई मेरी बिपति बिदारन में।

(१२)

बिहरत काहू पटरानी के सदन कैधौं,
लहत बिनोद काहू पुत्र के दुलारन में ;
कैधौं बिसराय मोहिं न्याय निरवेरत हौ,
बैठे द्वारिका के उग्र राज-दरबारन में।
लागे धर्मनीति की सुरीति अनुसारन में,
कैधौं राजशासन के कारज सँभारन में ;
पतित-उधारन ! हा करुना-जलधि नाथ,
वार क्यों लगाई मेरी बिपति बिदारन में।

(१३)

हाँकत महारथ हौ पारथ को कैधौं नाथ,
आज महाभारत की भीरन अपारन में ;
कैधौं उपदेसत हौ ज्ञान जन अर्जुन को,
जानिकै अरुचि ताकी बैरी-बंधु मारन में।
कैधौं दरसावत किरीटी को बिराटरूप,
महिमा-सदन निज बदन उघारन में ;
पतित-उधारन ! हा करुना-जलधि नाथ,
वार क्यों लगाई मेरी बिपति बिदारन में।

(१४)

आप ही अपर देव अमर अदेव सेव,
हारे, बेद सेप जाके भेव के बिचारन में ;
जोगी मुनि जच्छ नाग किन्नर मनुज पावैं,
अमित अनंद लाभ जाको ध्यान धारन में।

जुगन-जुगन की बखानी बिरदावली हौ,
करत न देरी हरि दीन-दुख टारन में ;
पतित-उधारन ! हा करुना-जलधि नाथ,
बार क्यों लगाई मेरी बिपति बिदारन में ।

(१५)

पातकी कलंकी अपकारी अबकारी क्रूर,
अधम प्रधान जौन सहस हजारन में ;
नीचन में नीच जाति-पाँतिहू ते छूटे जौन,
झूठे हू न राते रावरे को ध्यान धारन में ।
तिनहू को आप अपनायो ह्वै दयाल रीझे,
एक बार आरत ह्वै सरन पुकारन में ;
पतित-उधारन ! हा करुना-जलधि नाथ,
बार क्यों लगाई मेरी बिपति बिदारन में ।

(१६)

जोपै मोहिं अधम बिचार्‍यो तिनहू ते नाथ,
कीजे तऊ देरी ना सुबान अनुसारन में ;
तुम सो न कोऊ जग सबल समर्थ स्वामी,
मो-सम न पापी कोऊ पापिन अपारन में ।
चूकिए न औसर ये बिरद-परिच्छा होति,
रावरी प्रवीनता धौं कैसी दया धारन में ;
पतित-उधारन ! हा करुना-जलधि नाथ,
बार क्यों लगाई मेरी बिपति बिदारन में ।

(१७)

कैधौं बान त्यागी दुखियान-दुख टारन की,
ताके नहिं लाभ दीन ह्वैके सोर पारन में ;
काहू धौं छली ने काज सार्‍यो दंभ रोदन सों,
जाते पतियाहु नाहीं रोयकै पुकारन में ।

कैधौं कलु जुग को प्रभाव प्रगटावत हो,
करत बिलंब ताते दया हिए धारन में ;
पतित-उधारन ! हा करुना-जलधि नाथ,
बार क्यों लगाई मेरी बिपति बिदारन में।

(१८)

ऊखल बँधे तौ भए बिदित दमोदर हौ,
बिदित गोपाल जो चराई धेनु हारन में ;
गोपिनै सनाथ कै कहाए जग गोपीनाथ,
भए गिरिधारी गिरि भारी नख धारन में।
छोटे-बड़े कारज सबै ही जस देनहारे,
कीजे ना अरुचि हा-हा दीन-काज सारन में ;
पतित-उधारन ! हा करुना-जलधि नाथ,
बार क्यों लगाई मेरी बिपति बिदारन में।

(१९)

पदवी सुरप पाई रावरे को जाचक ह्वै,
आप ही भरो है धन धनद-अगारन में ;
आप ही भए हो कमला की सुखमा के हेतु,
रावरी ही दच्छता है अस्विनी-कुमारन में।
सबल समर्थ सरदार सब लायक को,
कौन कठिनाई दीन-दास-दुख टारन में ;
पतित-उधारन ! हा करुना-जलधि नाथ,
बार क्यों लगाई मेरी बिपति बिदारन में।

(२०)

रावरे सुजस गाए तीन बिध पाप नसैं,
दूर होत तीनौ ताप नाम मुख धारन में ;
छूट जात तीनो रिन रावरो धरत ध्यान,
तीनौ देव राचे गुन रावरे उचारन में।

तीन लोक तीनौ काल आपै रखवाल नाथ,
दीजे कान हा-हा मेरे आरत पुकारन में ;
पतित-उधारन ! हा करुना-जलधि नाथ,
वार क्यों लगाई मेरी बिपति विदारन में ।

(२१)

मेरो पुरुसारथ तो ह्व रह्यो अकारथ सो,
छाँड़ि परमारथ को स्वारथ सँवारन में ;
चिंता भूरि तापै छीन सिथिल सरीर कीन्हों,
चित है अधीर दुनिया के सोच भारन में ।
'पूरन' पुरुस मेरे आपै पुरुसारथ हौ,
मेरी करतूति—सारी जानिए पुकारन में ;
पतित-उधारन ! हा करुना-जलधि नाथ,
वार क्यों लगाई मेरी बिपति विदारन में ।

(२२)

रावरी ही महिमा लखात बन-बागन में,
नगर तड़ाग सिंधु सरिता पहारन में ;
सुंदर अनंदकंद 'पूरन' अनूप भूप,
नाथन में नाथ रखवारे रखवारन में ।
भक्त भयहारी असुरारी अघहारी हरे,
द्रवहु मुरारी हा-हा आरत पुकारन में ;
पतित-उधारन ! हा करुना-जलधि नाथ,
वार क्यों लगाई मेरी बिपति विदारन में ।

(२३)

बाजन बजावत मचावत है धूम गाय,
किन्नर गंधर्व रावरे के दरबारन में ;
विबुध-समूह तापै बिबिध बिधानन सों,
लेत रावरे को ध्यान सुजस उचारन में ।

हाय जदुरायजू भई है कहनूत सोई,
　　तूती की पुकार कौन सुनत नगारन में ;
पतित-उधारन ! हा करुना-जलधि नाथ,
　　वार क्यों लगाई मेरी विपति विदारन में ।

(२४)

अखिल भुवाल जनपाल सुरनायक हौ,
　　सुखद दयाल सिरमौर सरदारन में ;
पावक समीर नीर भूतल अकास माहिं,
　　भानु में छपाकर में वृंद-वृंद तारन में ।
जगत चराचर में रावरी जगत ज्योति,
　　'पूरन' मुनीस-वृंद-मानस अगारन में ;
पतित-उधारन ! हा करुना-जलधि नाथ,
　　वार क्यों लगाई मेरी विपति विदारन में ।

(२५)

धन दीजै विपुल अतुल जस-मान दीजै,
　　संगति प्रदान कीजै संतन उदारन में ;
संतति सुसील दीजै संपति असेस दीजै,
　　सुरुचि बिसेप दीजै नीति अनुसारन में ।
देह-सुख गेह-सुख निज पद नेह दीजै,
　　रीझिए दयाल दीन विनती उचारन में ;
पतित-उधारन ! हा करुना-जलधि नाथ,
　　वार क्यों लगाई मेरी विपति विदारन में* ।

---

* समर्पण—दीनबंधो ! इस स्तोत्र में कोई काव्य के अंग नहीं निवाहते बने, भला आर्तजन की गद्गद वाणी में कविता कैसी ! यदि इसमें गुण है तो केवल यही कि इसके द्वारा एक गुण-हीन जन का आशय

सरस्वती†

(१)

कुंद घनसार चंद्र हू तें अंग सोभावंत,
भूखन अमंद त्यों विदूखत हैं दामिनी;
कंज-मुखी कंज-नैनी बीना कर-कंज धारे,
सोहै कंज-आसन सुरी हैं अनुगामिनी।
भाव रस छंदन की कविता निबंधन की,
'पूरन' प्रसिद्ध सिद्ध सिद्धन की स्वामिनी;
जै-जै मात बानी बिस्वरानी वरदानी देवी,
आनँद-प्रदानी कमलासन की भामिनी।

(२)

चारुता नवल कुंद-वृंद-सी धवल सोहै,
कीरति अपार हिम-धार-सी सुहाई है;
सोहै सेत सारी सुचि मोतिन किनारीवारी,
आसन सरोज सेत सोभा सरसाई है।
'पूरन' प्रवीन कर भासै वरबीन वेद,
सेत-मनि-माल सुमराल सुवराई है;
बानी को प्रकासवंत ध्यान के निरंतर यों,
वंदत अनंत सुर-संत समुदाई है।

किंचित् व्यक्त हो गया, इसलिये हे निर्गुण गुणसिंधु स्वामिन्! इस स्तुति को स्वीकार कीजिए और शरणागत दीनजनों की विपत्ति को दूर कीजिए।

आपका
'पूर्ण'

† 'कविता-कलाप' से

(३)

अली राजहंसन की वारौं हंसवाहन पै,
चारुता पै चाँदनी की आभा चारु वारी है ;
सेत कंज-आसन पै कैरव सु पुंज वारे,
नैनन पै खंजन की वारी छवि सारी है।
मंजुल पगनवारी छटा अरविंदन की,
वीना पै मलिंदन की वारी गुंज प्यारी है ;
मुख पै अमंद चंद 'पूरन' की वारी प्रभा,
सारदीय सोभा सारदा पै वारि डारी है।

(४)

कुंद-कुल चाँदनी मैं 'पूरन' कुमोदिनी मैं,
सेत वारि जात पारिजात की निकाई मैं ;
गंगा की लहर मैं छहर माँहि छीराधि की,
चंद तापहर मैं सुधा की सुघराई मैं।
चित्त की विमलता मैं, कला मैं, कुसलता मैं,
सत्य की धवलता मैं, काव्य की लुनाई मैं ;
भासमान बानी ज्ञान-ध्यान के समागम मैं,
गूढ़ निगमागम पुरान-समुदाई मैं।

(५)

मंजुल बरनवारी कंज से चरनवारी,
सुखमा छरनवारी चंद्रमा की, रति की ;
दुर्मति दरनहारी जड़ता हरनहारी,
स्रद्धा की करनहारी माता मंजु मति की।
'पूरन' सरनवारी ग्यानी आदरनवारी,
सेवा स्वीकरनवारी जोगी, सिद्ध, जति की ;
अंतसकरन भारी आनँद भरनवारी,
वेद को धरनहारी प्यारी प्रजापति की।

(६)

हरि-जस-पावस में कहरै सिखी-सी तु ही,
बेद-कुसुमाकर में कूजती पिकी-सी है ;
तू ही सुखदानी रस-धर्म की कहानी माहिं,
कर्म-बीथिका में बानी दीपिका-सी दीसी है।
नीति-छीर-धारा में उदारा नवनीत तू ही,
मेधा-मेघमाला में बसति दामिनी-सी है ;
ज्ञातन की प्रतिभा सुमति कबिनाथन की,
गायन की सिद्धि तेरे हाथन बिकी-सी है।

(७)

सनक, सनंदन, जनक, व्यास-नंदन से,
रहत उदासे सदा सुखमा सराहन के ;
ब्रह्मा अबिनासी बिष्णु रहे अभिलासी बने,
भारती की महिमा-समुद्र अवगाहन के।
'पूरन' प्रकास हीं की मूरति-सी भासमान,
नेमी है दिनेस से चरन चारु चाहन के।
मोदप्रद सुखद बिसद जोई "हंसपद"
लेवै पदकंज सो बहाने हंस बाहन के।

(८)

सब्द के बिकास-रूपी भासमान कानन में,
जाहे बिन सक्ति तेरी हले नाहिं पत्ता है ;
'पूरन' अपार सक्ति व्यापी है उदार तेरी,
चौदहूँ भुवन बीच जेती बुद्धिमत्ता है।
जोग में, मनन में, सुमति में, प्रवीनता में,
ध्यान में, बिचार में, बिबेक में महत्ता है ;
जगत चराचर को बीज है प्रणव मंत्र,
बीज ताहू मंत्र को सरस्वती की सत्ता है।

(९)

'पूरन' समूह सुर-संतन प्रतापिन को,
तेरे पद-पंकज के प्रेम में पगो करें ;
पाय भरपूर ग्यान, त्याग भय भाग भरो,
भारती भवंती भक्त भव तें भगो करें।
लगन लगाय नीके अपने स्वरूप माहिं,
दिन-दिन माया तें विरागी बिलगो करें ;
री ही कृपा सो जग जागरूक प्रतिभा की,
जगमग जोति उर जोगी के जगो करें।

(१०)

बाहन अनूप है विवेक को स्वरूप ऐसो,
सुखद बिसद जो जगत बर बानो है ;
सेवक अनूप हैं रमेस-सुर-भूप ऐसे,
बंदना को मुदित विधान जिन ठानो है।
ग्यान की अनूप राजधानी है प्रकास रूप,
जामें बसिबे को मुनि-वृंद ललचानो है ;
दान में लुटाए होत 'पूरन' अधिक ऐसो,
विद्या को अनूप बिस्वरानी को खजानो है।

लक्ष्मी*

(१)

"पद्मा", "रमा", पद्म-मुखी, ललामा,
पद्मासना, पद्मवनाभिरामा ;
पद्मेक्षणी, पद्मपदी, उदारा,
देवी, "जयंती", जय विष्णु-दारा।

---

* "कविता-कलाप" से।

(२)

"श्री" हेमवर्णा, "हरिणी", सुलीला,
दारिद्र-बाधा-हरिणी सुशीला ;
आनंद-रूपा, प्रकृति-स्वरूपा,
सो वंदनीया जननी अनूपा ।

(३)

मनोहरा, पद्मधरा, प्रसन्ना,
सुखाकरा, साधु-सुर-प्रपन्ना ;
हिरण्यरम्या, नद-राज-कन्या,
सुराग्रगण्या :-- वर-रूप धन्या ।

(४)

मातंग-हिंकार विनोदिनी : है,
तुरंग-पूर्णा, रथ-मोदिनी है ;
सुनागरी, सागर-वासिनी है,
गुनागरी, विष्णु-विलासिनी है ।

(५)

मुक्ता-लता-सी, सुमणि-प्रभा-सी,
विद्या-छटा-सी, सुमना सुधा-सी ;
"सूर्या", "क्षमा", कांचनवल्लिका-सी,
"चंद्रा", शुभा, मंजुल मल्लिका-सी ।

(६)

सत्य-प्रभा, सत्त्व-प्रकाशिका-सी,
प्रभातकालीन प्रदीपिका-सी ;
सत्पूर्ण-चंद्रोज्ज्वल-चंद्रिका-सी,
अलोल-विद्युत्-द्युति-मालिका-सी ।

(७)

संपत्करी सर्व-व्यथा-हरी है,
तेजःकरी भूरि यशःकरी है;
लोकेश्वरी-देवगणेश्वरी है,
यज्ञेश्वरी, प्राणधनेश्वरी है।

(८)

देवेंद्र के लोक प्रभास तेरो,
यक्षेंद्र के ओक विभास तेरो;
साकेत-कैलास-निवास तेरो,
श्रीविष्णु के पास विलास तेरो।

(९)

अज्ञान को तू रवि-मालिका है,
संकट को काल-करालिका है;
कृपा-समुद्रा जन-पालिका है,
अनूप माता जल-बालिका है।

(१०)

विद्यावती है, गरिमावती है,
प्रज्ञावती है, महिमावती है;
तू शंकरी है अरु भारती है,
प्रभावती है, प्रतिभावती है।

(११)

व्यापार-वीथी विच तू उजेरी,
संसार-खेती विच तू हरेरी;
उद्योग-उद्यान-वसंत तू है,
दिगंत में सार अनंत तू है।

(१२)

वसंत में पुष्प-ललाम तू है,
वर्षा-विहारी घनश्याम तू है;
हेमंत में चारु तुषार तू है,
संसार-सत्ता अरु सार तू है।

(१३)

तू मंगला मंगलकारिणी है,
सद्भक्त के धाम विहारिणी है;
माता सदा पूर्ण-पिता-समेता,
कीजे हमारे चित में निकेता।

(१४)

तू अंब मो पै अनुकूल जो है,
संसार में, तौ, प्रतिकूल को है?
आदित्य-वर्णी वर विश्वरानी,
मैं तोहिं बंदौं मन-काय-बानी।

(१५)

श्रीवासवी की जय माधवी की,
सुमालिनी की वनमालिनी की;
सुरोत्तमा की सु-मनोरमा की,
त्रिलोक-मा की अखिलोपमा की।

२—प्रकृति-सौंदर्य-वर्णन

वसंत-वर्णन

(१)

वाटिका-विपिन लागे छावन रँगीली छटा,
छितिसे सिसिर को कसाला भयो न्यारो है;
कूजन किलोल सों लगे हैं कुल पंछिन के,
'पूरन' समीरन सुगंध को पसारो है।
लागत वसंत नव संत मन जागो मैन,
दैन दुख लागो बिरहीन वरियारो है;
सुमन-निकुंजन में, कंजन के पुंजन में,
गुंजत मलिंदन को वृंद मतवारो है।*

(२)

भयो ना विकास है सुवास को सुपास नहीं,
असन प्रकास भानु जो पै विस्तारो है;
रज नाहीं, रंग नाहीं, मधु को प्रसंग नाहीं,
होत ना तरल लै तरंग को सहारो है।
तापैं भौंर रीझो, मन खीझो जात देखे दसा,
'पूरन' ये कैसो हाय नेम अनुसारो है;

---

* इस अंतिम पंक्ति को पढ़ने से भौंरों की गुंजार का शब्द सुन पड़ता है।

दे० इसी प्रकार "लहलही लहरान लागीं लुमन-बेली मृदुल।" 'पूर्ण'।
(वर्षा-वर्णन)

इसमें लकार के कारण लताओं के लहराने का भाव व्यक्त होता है।

फूल कंज वृंद मकरंद को विहाय अर-
बिंद की कली में जो मलिंद मतवारो है *।

(३)

कुंजन में सघन तमालन के पुंजन में,
करत प्रवेस ना दिनेस उजियारो है ;
प्यारी सुकुमारी स्यामा साज सजे ठाढ़ी तहाँ,
नीलमनि मालन को जाल छविवारो है।
छिटिके बदन चंद कुंतल अनंद स्याम,
स्याम-रंग पागी नाम स्यामा तासु प्यारी है ;
'पूरन' सुअंगन पै सौरभ प्रसंग पाय,
झूमै स्याम भौंरन को भौंर मतवारो है।

(४)

कूजनि विहंगनि की घंटिका बजै सो मंजु,
ओस-कन सोई मद झरत निहारो है ;
'पूरन' प्रसूनन की सुरँग अँबारी सजी,
भृंगन की भीर सो सरीर बरियारो है।
बैठो ऋतुराज तापै जग की करत सैर,
सौरभ अतंक जग माहिं विस्तारो है ;
धावत महावत अनंग के इसारे बीर,
सुरभि समीर ये मतंग मतवारो है।

(५)

तू ही है द्रुमन-वृंद सुमन अनंद तू ही,
रंगन की सोभ तू ही भृंगन की भीर है ;

---

* "नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास यहि काल ;
अली कली ही सों लग्यो, आगे कौन हवाल।"—बिहारी

रुचिर बिहंग तू ही कूजनि अभंग तू ही,
ऋतु रस रंग तू ही रसिक अमीर है।
जगत बसंतवारी सुखमा अनंत तू ही,
तू ही निसिकंत तू ही दंपति अधीर है;
'पूरन' अनंद तू ही सुचिर सुगंध तू ही,
सीतल सुमंद तू ही सुखद समीर है।

(६)

चंदन वलित चारु देखियत सुंड-दंड,
भृंगन की जौन रज रंजित पतीर है;
सोहत स्रवत डालैं पल्लव बिसाल जौन,
मंजुल सुगंधित स्रवत मद नीर है।
सेत कुंद पंत एकदंत की अनंत सोभा,
मंजरी मुकुट अंग फूलन की भीर है;
'पूरन' निकुंज रूपी कुंजरबदन जू को,
बंदत वसंत लीन्हें बिजन समीर है।

(७)

अंचल उड़ावै झपकावै री दृगंचल को,
चंचल महान छिन धरत न धीर है;
केसर बिखारै, रसग्राही देस देसन के,
धूरि सों वलित करि डारै नयो चीर है।
अंगन लगत नेकु संग न तजत आली,
सुमन खिलावत थकावत समीर है;
आली साँवरे की लँगराई नहीं मेरी वीर,
लागी या समीर हू को अज को समीर है।

(८)

तू ही है सुमन, तू ही रंग है प्रसूनन में,
सुखमा असीम तू ही तू ही हरियाली है;

तू ही नीर नाली घट कुंड तरु-मूल तू ही,
तू ही फल बाली तू ही पात तू ही डाली है।
जगत की बाटिका को सार सब भाँति तू ही,
तू ही ब्रह्म 'पूरन' करत रखवाली है;
भृंगनपतीर तू ही, भीर है विहंगन की,
सौरभ समीर तू ही स्वामी तु ही माली है।

(९)

चंपकलता को मेल कीन्हों है तमाल संग,
मानौ कोऊ बाला बर पायौ बनमाली है;
'पूरन' सुरंग स्वच्छ फूलन की क्यारी रची,
मानौ मनि-चौकन की सुखमा निराली है।
द्रुमन बसाए हैं विहंग बर बैन वारे,
मानौ गान मंगल की विदित प्रनाली है;
दंपति बिवाह को उछाह होत देखे जाहि,
आली यहि बाग को प्रबीन कोउ माली है।

(१०)

चंपक, निवारी, दौना, मोगरा, चमेली, बेला,
गेंदा, गुलदावदी गुलाब सोभ साली है;
केतकी, कनेर, गुलसब्बो, गुलनार, लाला,
हिना जसवंत कुंज केवड़ा की बाली है।
'पूरन' विविध चारु सुंदर प्रसूनन की,
छटा छितिमंडल में छै रही निराली है:
पूजन कौ मानौ बनमाली के चरनकंज,
साजत बसंत-माली फूलन की डाली है।

(११)

कूकि-कूकि कोकिला करेजो करै टूक-टूक,
पाछे परी कारी दईमारी काकपाली है;

काम के कृसानु को बढ़ावत समीर तापै,
जारत पलास कचनारन की लाली है।
आय निरदई यें लगावत जरे पै लौन,
'पूरन'जू यामें काहू सौत की कुचाली है;
लायौ बनमाली बिन साजि कै बसंत डाली,
आली यो किते को बलमारो बैर साली है।

(१२)

किंसुक, अनार, गुलनार, सहकार, कुंद,
चंप, कचनार, जलचंत छबिवंत की;
सीतल, सुगंध, मंद, दायक अमंद पौन,
कंज बन भृंग वृंद चंद्रिका दिगंत की।
कोकिल, कलापी, कीर, चातक-कलापन की,
मधुर अलापन की मंगल अनंत की;
ईस भगवंतजू की महिमा कथनहारी,
महिमा मैं लसै भूरि सुखमा बसंत की।

(१३)

पलास जपा गुलनार अनार रँगे कचनारन सों बन बाग,
सरोजन गुंजन भृंगन पुंज सुहात समीर विहंगन राग;
गहै किन मानिनि बावरी सीख, लखै किन बाम धरा को सोहाग,
सुरंग छटा मिस जा हित कंत बसंत को छाय रह्यो अनुराग।

(१४)

पीतम को पीरो पट फूली सरसों की छटा,
चूनरी प्रिया की छबि किंसुक अनंत की;
बाहु दृगबदन सरोज बन ओज छाजै,
केस कालिमा है अलि-पुंज छबिवंत की।
पिकी-गान बंसी-तान वासित बयारी स्वास,
दंपति प्रभा है उजियारी निसिकंत की;

'पूरन' बिलोकौ अनुराग बस पावस मैं,
करती जुगल सेवा सुखमा बसंत की।

(१५)

कीट जे मधुप तैसे मेरे कचजाल माखे,
छबि कहो मुख की कलंकी निसिकंत की;
बानी काकपाली-सी, पलास बिनबास नासा,
पंकज बखानी सोमनैन छबिवंत की।
'पूरन' मनाय मोहिं आली ना दुखाओ मन,
रमनी करै यौं अनमनी बात कंत की;
करि अपमान मेरी सुखमा अनूपम को,
पिय ने दई क्यों भूलि उपमा बसंत की।

(१६)

बासित बयारी उतै, स्वासा की सुगंध इतै,
इत मुख-सोभा उत प्रभा निसिकंत की;
उत अरबिंदन पै छटा ज्यों मलिंदन की,
इन कर नैन केस कालिमा अनंत की।
कोकिल-कलाप उत, मधुर अलाप इत,
टेसू उतै सारी, इतै सूही छबिवंत की;
'पूरन' बिलोकौ चलि कैसी कुंज कानन मैं,
होड़-सी लगी है लाल बाला की बसंत की।

(१७)

पीत रंग सारी जीन फूली सरसों की थली,
अलक-छटा है पाँति अलिन अनंत की;
झूमर रसाल बौर अंगराग है पराग,
पौन रस बात है सहेली हासवंत की।
कोकिल-कलाप की अलाप गान मंगल है,
कंजन बिकास तेज आभा रति-कंत की।

ताय मन चेत छिन मानिनि विलोकें छवि,
अवनि वनी है वनी वनिता वसंत की।

(१८)

लाल वन बागन की भूरि छवि छान लागी,
खिलन लागी भौर टेसू छविवंत की;
अरविंद-पुंजन पै गुंजन मलिंद लागे,
दिलसन लागी रैन आभा निसिकंत की।
वजन लगी है कुंज वंसी मंजु साँवरे की,
मोहन लागी हैं भौर गोपिन अनंत की;
खोय कै सुरति एक बैठी गृह मान ठानि,
बावरी अजौं ना तोहिं खबरि वसंत की।

(१९)

सुमन रँगीले चटकीले छिति छहरत,
सघन लतान की ललित सोभ न्यारी है;
गुंजत मलिंद-पुंज मंजु कुंज कानन में,
सीतल सुगंध मंद डोलत बयारी है।
गावत सरस वोल गोल बहु पंछिन के,
'पूरन' विलोकि छवि उपमा विचारी है:
ईस भगवंत की विरद वर गायन को,
संत श्रीवसंत गान-मंडली सँवारी है।

ग्रीष्म

(१)

सेस फुनकार की बतावत है झार कोऊ,
कोऊ कला भाखत है प्रलय कृसानु की:
रुद्र-रस-व्यंजन कोऊ, शंकर को तीजो नैन,
उघरो बतावै कोऊ ताप अघवान की।

ग्रीसम की भीसम तपन देखि 'पूरन'जू,
मन में बिचारि यह बात अनुमान की;
आवा-सी अवनि है, पजावा-सी पवन,
लेत दावा सों लिखाए शजदावा धूप भान की।

(२)

भए हू सुरक्षित सो नसत अवश्य जापै,
होति प्रतिकूल है नजारे भगवान की;
रच्छा बिनु कीन्हें हू सुछंद ठहरात जापै,
दयादृष्टि होति हरि करुनानिधान की।
सूखत तड़ागन के तीर तरु बागन के,
करिए सिंचाई बरु उत्तम बिधान की;
'पूरन' भनत पै पहार वारे पादप को,
आतप सुखावत ना ग्रीसम के भान की *।

(३)

धावत धुँधात, घनी छावत गगन धूरि,
प्रबल बवंडा ठौर-ठौर भूमि भासे हैं;
तावत प्रचंड मारतंड महिमंडल को,
जरत जमीन जल-जीव जाल तासे हैं।
डारिए पखान हू पै पानी तो छनक जात,
'पूरन' बिलोक गति भाव यों प्रकासे हैं;
ग्रीसम समै में को चलावै जीवधारिन की,
जामें जड़ पाहन हू व्याकुल पियासे हैं।

---

* दे० "तुलसी बिरवा बाग के, सींचे ते कुम्हिलायँ;
रामभरोसे जो रहैं, पर्वत पर हरियायं।"
—तुलसी

(४)

भ्रम कों भयानक प्रबल भ्रमवात घेरे,
कुमति की धूरि के घनेरे जल भासे हैं ?
काम की जलाक जोर, मोह की उमस मोर,
क्रोध के भरक जामे लोभ के जवासे हैं।
आतप त्रैताप को तपावै दुःखदाई हाय,
नाथ ! हम हारे मृगतृसना तृसासे हैं :
'पूरन' उधारौ घनस्याम सुख-सिंधु स्वामी,
जारे भव ग्रीसम के टेरत पियासे हैं।

(५)

स्रद्धा के भरे हैं ताल, सरिता मुमुच्छुता की,
प्रभु-जस-गान बोल मोरन प्रकासे हैं ;
लतिका उपासना की, पवन अयासना सों,
झूमती हरित नेम पादप यों खासे हैं।
'पूरन' अनंद जल बरसत भूरि पूरि,
हरि अभिराम ध्यान स्याम घन भासे हैं ;
ऐसे सुठि पावस में प्राणी जे विमुख होत,
तेई भव ग्रीसम में तपत पियासे हैं।

(६)

तोरत तरुन तरु भोरत अरण्य भार,
हरित वितान वर बागन उजारो है ;
उड़त डँडूर, धूरि भूरि सो उड़ावत है,
नीर सर बापी सरिता को सोखि डारो है।
प्रबल झकोर जोर सोर घोर मारुत को,
सीकर प्रवाह मत स्रवत निहारो है :
'पूरन' प्रकोप ताप आतप जवाकन की,
ग्रीसम प्रचंड ये गयंद मतवारो है।

(७)

तोरे देत तुंग तरु झार बन झोरे देत,
फोरे देत कान धुनि आँधिन महान की ;
ताए देत थल को, जलासय जराए देत,
जग हहराए देत लूक बे प्रमान की ।
घूमि अमवात, भूत दूत-से चहूँघा भूमि,
फेरत दोहाई-सी निदाघ दुखदान की ;
ग्रीसम की अंधाधुंध भीसम कही ना जात,
धूरि झाँकि कीन्हीं मंद आभा चंद भान की ।

(८)

दावा के अहारी ! अघासुर के प्रहारी,
जिन झेली बिस-झार काली-फनन महान की ;
ग्रीसम सुखद चाँदनी में ब्रजचंद सोई,
काहे जू तपत सुधि त्यागे खान-पान की ।
ललिता कहत हँसि बैन बर बिंग वारे,
'पूरन' बिलोकि गति आतुर सुजान की ;
प्यारे तन लागी धूप जेठो वृषभान कीधौं,
कोपी रावरे पै आजु बेटी वृषभान की ।

ग्रीष्म-प्रभात

(१)

कलरव रुचिर सुनात करत जो गान बिहंगा ;
बहति समीर सुबास ताल-जल उठति तरंगा ।
(मानौ) करि-करि मंत्र-विधान साधु "ग्रीषम" सुख पावत ;
रेचक प्राणायाम करत हिय उमँग बढ़ावत ।
(अथवा) सुनि रण-सोर "प्रकास" सुभटवर सहित उमंगा ;
धायो अरि "तम" दमन बीररस झलकत अंगा ।

(अथवा) बिछुरत प्रीतम "सीत" वाम "वसुमति" दुख गायो ;
धीरज रह्यो पराय करुनरस मन लहरायो *।
उवत भानु के भयो सकल निसि-तिमिर बिनासा
ज्यों नसात मोहांध होत जब ज्ञान प्रकासा ;
उवत भानु पियरात प्रात तारे अकास यों ;
तेजमान जन अछत होत लघुवृंद मंद ज्यों।
बिकसे सरस सरोज असनयर तरुन सुगंधित ;
गुंजत मधुकर-वृंद मधुर मकरंद दिए चित।
ज्यों आराधत संत चरन भगवंत धनी के ;
आनँद लहत अनंत त्यागि सब सोच दुनी के।
(अथवा) ज्यों कामी जन निरखि नारि सुंदर मन वौरैं ;
ह्वै मनोज बस मंद पतित जीवन सुख हारैं †।

(२)

वारिज वन विकसित विमल नीर ;
लहरात ललित लहि-लहि समीर।
नव तरुन मनोहर अरुन रंग ;
सरसी सुगंध मारुत प्रसंग।
जुरि मधुप-वृंद करि-करि उमंग ;
मकरंद हेतु कुमिरत अधीर।

---

* "उपमेय—विहंगों का कलरव, समीर का बहना, सरोवर में तरंगों का उठना ; यथासंख्य की रीति से उपमाएँ—१. मंत्रोच्चार, रेचक प्राणायाम में ग्रीष्म-योगी की स्वासा, हृदय की उमंग (आनंद से वा प्राणायाम के कारण)। २. रण का शब्द, प्रकाश-योद्धा का धावा, वीररस का झलकना। ३. विरह-दुःख-निवेदन, धीरज का भागना, करुणरस के मन का (करुणा से) वा करुणरस का वियोगार्त मन में लहराना।" (पूर्ण)

† "भ्रमर संपुटित कमल में फँसकर कष्ट भोगता है।" (पूर्ण)

'पूरन' राजत नव भानुराज ;
लखि खिलीं सरोजन की समाज।
मनु वसन मित्र के दरस आज ;
लहि सहस दृगन पुलकित शरीर *।

वर्षा-वर्णन

(१)

चातक-समूह बैठे बोलन को वाए मुख,
नाचन को मोर ठाढ़े पाँव ही उठाए हैं ;
'पूरनजी' पावस को आगम सुखद जानि,
आनँद सों बेलिन के हिए लहराए हैं।
द्रोही द्रुम जाति केरे! अरक जवास एरे!
तेरे जरिबे के अब घोस नियराए हैं ;
छीतल महीतल को सीतल करनहारे,
देखु कैसे प्यारे घन-कारे घेरि आए हैं।

(२)

गाजैं मेघ कारे मोर कूकैं मतवारे, रटैं
पपी-वृंद न्यारे, जोर मारुत जनावती ;
इंद्र-चाप भ्राजै, बक-अवली बिराजै छटा
दामिनि की छाजै भूमि हरित सुहावती।
'पूरन' सिंगार साजि सुंदरी-समाज आज,
झूलती मनोहर मराल मंजु गावती ;
चंद बिनु पावस में जानि के सुधा की हानि,
मानो चंद्रमंडली पियूष बरसावती।

---

* "उपमेय पक्ष में वसन से जल, मित्र से सूर्य, सहसदृग से कमलगण, और पुलक से कमललतावली समझना चाहिए।" (पूर्ण)

(३)

झूमि-झूमि लोनी-लोनी लतिका लवंगन की,
भेंटतीं तरुन सों पवन मिस पाय-पाय ;
कामिनी-सी दामिनी लगाए निज अंक तसे,
साँवरे बलाहक रहे हैं नभ छाय-छाय ।
घनस्याम प्यारी वृथा कीन्हौं मान पावस में,
सुन तौ पपीहा की रटन उर लाय-लाय :
पीतम मिलन अभिलाषी वनिता-सी लखौ,
सरिता सिधारी ओर सागर के धाय-धाय ।

(४)

अवली बकन की विमल दरसाए देत,
चहूँ ओर छाए देत घटा घनी काली है ;
इंद्र को धनुस सतरंगी दरसाए देत,
धरा पर देत सरसाए हरियाली है ।
पावस सुहायो निज आगम जनाए देत,
धोच के बहाए देत ग्रीसम बिहाली है :
मोरन के सोरन सों कानन रमाए देत,
झंझा की झकोरन झुमाए देत डाली है ।

(५)

भाँति-भाँति फूलन पै भूलन भ्रमर लागे,
कालिंदी के कूलन पै कुंजन अपारन में ;
इंद्र की वधूटिन के वृंद दरसान लागे,
मोर सरसान लागे मोरन पुकारन में ।
दामिनि-छटा सों, घटा गाजन अछोर लागी,
राजनि हिलोर लागी सरिता की धारन में ;
फूले वन फूले मन आनंद भरन लागे,
झूले लागे परन कदंबन की डारन में ।

(६)

चपला चमकदार भूसन लसत भूरि,
जुगनू मनिन-जाल सोहै पोर-पोर है;
कालिमा तिमिर की सँवारी स्याम सारी स्वच्छ,
अंगराग नीरद की सुखमा अथोर है।
'पूरन' पुरुस पै प्रकृति बाम पावस में,
मिलन चली है मैन मारुत को जोर है;
मोरन पुकार किंकिनी की धुनि मंजु होत,
भनकार झिल्लिन की झाँझन को सोर है।

(७)

आई बरसात की रसीली सुखदाई ऋतु,
छिति पै चहूँधा सरसात सुघराई है;
साजे वर बसन अभूसन सकल अंग,
भूलत हिंडोरे तरुनीन समुदाई है।
पैंग के भरत बिछुवान की मधुर धुनि,
सुनि सुनि 'पूरन' यों उपमा सुनाई है;
हंसन की अवली भुलाय कै पुरानी चाल,
आज ऋतु पावस को दै रही बधाई है।

(८)

सागर हैं कुंड जारी नारियाँ नदीगन हैं,
क्यारियाँ सघन बन सुखमा निराली है;
बिहरैं अमित जंतु, बिबिध प्रतच्छ तैसे,
'पूरन' सुगंध हरि-कीरति प्रनाली है।
जग है बगीचा श्रीरमावर हैं स्वामी तासु,
ऋतु दास गन की रहत रखवाली है;
चतुर सुरेस चेरो करत सिंचाई रहै,
देव चतुरानन प्रधान ताको माली है।

(९)

कीधौं मारतंड की प्रचंडता समन हेतु,
देवी धरनी ने दान सीतल पँवारे हैं ;
कीधौं निज संपति को चोर सविता को जान,
करत वरुन ओर वाही के इसारे हैं।
कीधौं सियरायवे को 'पूरन' समीरन को,
प्रकृति कपूर-कन सघन उछारे हैं ;
कीधौं घोर ग्रीसम में तापित महीतल पै,
छीतल जुड़ावन को सीतल फुहारे हैं।

(१०)

धानी आसमानी सुलेमानी मुलतानी,
मूँगी सँदली सिंदूरी सुख सौसनी सुहाए हैं ;
फंजई कनेरी भूरे चंपई अँगारी रूरे,
पिस्तई मँजीठी सुरमई घेरि आए हैं।
मासो नीलकंठी गुलाबासी सुवासी तूसी,
कुसुमी कपासी रंग 'पूरन' दिखाए हैं ;
नारंजी पियाजी पोखराजी गुलनारी घने,
केसरी गुलाबी सुवापंखी मेघ छाए हैं।

(११)

पावस की रेलगाड़ी

मेघ बहुरंगी चारु अवली किराचिन की,
कौंधा रूप इंजन की आगी उठै घर-घर ;
सीठी कैर सीटी-धुनि कूक पिक मोरन की,
तार "गरगट्ट" शब्द दादुर की टर-टर।
नीलगिरि-विंध्याचल-चौकिन करत पार,
खेप भरि लाईं जो झरत नीर झर-झर ;

धावती रँगीली रेलगाड़ी भूप पावस की,
होत व्योम-मारग में सोर घोर घर-घर।

(१२)

चाँदनी चमेली चारु सावनी रसालन में,
बकुल लवंगन कदंबन सगन में;
'पूरन' सरस ऋतु पावस के आवत ही,
भई है बहाली हरियाली बाग बन में।
पादप वे रूखे जौलों आतप से झूरे रहे,
उन्नति निहारी भारी रावरे तनन में;
अरक जवास! आप जग तें उदास ऐसे,
झुरसत कैसे बरसात के दिनन में।

(१३)

वर्षा का आगमन

(१)

सुखद सीतल सुचि सुगंधित पवन लागी वहन,
सलिल बरसन लगो वसुधा लही सुखमा लहन;
लहलही लहरान लागीं सुमन-बेली मृदुल,
हरित कुसुमित लगे झूमन विरिछ मंजुल विपुल।

(२)

हरित मनि के रंग लागी भूमि मन को हरन,
लसत इंद्रवधून अवली छटा मानिक वरन;
बिमल बगुलन पाँति मनहु बिसाल मुक्तावली,
चंद्रहास समान चमकत चंचला त्यों भली।

(३)

नील नीरद सुभग सुरधनु वलित सोभा-धाम,
ललित मनु बनमाल धारे लसत श्रीघनस्याम;

कूप कुंड गँभीर सरवर नीर लाग्यो भरन,
नदी नद उफनान लागे लगे झरने झरन।
(४)
रटन लागे त्रिविध दादुर रुचत चातक-वचन,
कूक छावत मुदित कानन लगे केकी नचन;
मेघ गरजत मनहु पावस-भूप को दल सबल,
विजय-दुंदुभि हनत जग में छीन ग्रीसम अमल।
(१४)
पालक पावस
मार्तंड तेज जल-सागर को तपावै,
ताके समीर परमाणु उड़ाय धावै;
पावै प्रसंग जहँ शीतल मेघ छावै,
या भाँति ईश सब देश-कृषी सिंचावै।
नाना प्रकार उपजैं फल धान्य होवै,
कासार कूप नद में जल भूरि सोहै;
सो धन्य-धन्य हरि पालनशील स्वामी,
जो देत 'पूर्ण' विधि पुत्रन अन्न-पानी।
(१५)
बरसात में व्यायाम का आनंद
लँगोटे कसैं जाँघिए त्यों चढ़ावैं,
अखाड़े खड़े इष्टदेवैं मनावैं;
करैं बैठकैं नेम सों दंड पेलैं,
घुमाव बनेठी गदा वार झेलैं।
करैं बाहु को युद्ध पूरे खिलारी,
पछारैं गिरैं होत आनंद भारी;
लगे 'पूर्ण' व्यायाम में मल्ल सोहैं,
मनौ देह में स्वास्थ्य को बीज बोवैं।

(१६)

वर्षा और किसान

खेत बनाय किसान यों, करत मेह अवसेर,
आसक सज्जा बाम ज्यों, रहति कंत मग हेर।

(१७)

वर्षा और लड़के

जो पाठशाला कहुँ छोड़ पावैं,
साँझैं भजैं बालक शोर धावैं;
भौंरे नचावैं, चकरी घुमावैं,
नारे पनारे हठ कै अँमावैं।

(१८)

आनंदमयी बरसात

अवसर वर नीको, 'पूर्ण' है मोद जीको,
बजहिं मृदु मृदंगा बीन सारंग चंगा;
सरस मधुर बानी राग लालित्य-सानी,
चतुर जन सुनावैं मेघ मल्लार गावैं।
मन ऋतु बरषा की, ह्वै रही देव-गंगा,
उठत रुचिर तामें तान ही की तरंगा;
सुरपुर सम ताके साज वा भूमि धारे,
मधुर सुर बिलोके तासु पीयूष धारे।

(१९)

हिंडोला

रूप मदमाती नव सुंदरी हिंडोरे बैठि,
मधुर मनोहर मलार मंजु गावहीं;
पग सों धरा पै मारि ठोकर बढ़ावैं पैंग,
ऊँचे ह्वै गगन ओर सांईं समुहावहीं।

अहिन को भूतल सुरन को अकास बास,
जानि कवि 'पूरन' विचार ठहरावहीं ;
टेरि-टेरि नागिने औ देवन की अँगनान,
गर्वित नवेली चारु चरन दिखावहीं ।

(२०)

अभागी चातक

आए स्वाती घन पवन, लीन्हें जात उड़ाय ;
दीन अभागी चातकहिं, तृषा रही कलपाय ।

(२१)

बीरबहूटी

देवलोक तें अधिक सुख, पावस महि जिय जान ;
इंद्रवधू तातें सदा, छिति विहरति हैं आन ।

(२२)

सारंग

सारँग करि, सारंग रव, सुखद स्याम सारंग ;
विहरत वर सारंग मिलि, सरसत बरसा-रंग ।

(२३)

आशावादी चकोर

चितवत चंदा ओर, कारे घन बाधा करत ;
राखत प्रान चकोर, निर्मल ऋतु की आस सों ।

(२४)

पावस-प्रेम-प्रसंग

दसन चारु प्रभा चपला लसै, असित अंजन स्याम घटा रसै ।
वचन मंजु सुधा बरसो करै, हरितता मन की सरसो करै ।
चटक चूनरि है सुमनावली, कच समूह छटा भ्रमरावली ।
मुकतमाल बकावलि सोहनी, रुचिर गान मयूरन की ध्वनी ।

चलत बाजत भूपन-वृंद जो, जलद गाजत हैं धुनि मंद सो।
बिरह वर्णन चातक बानियाँ, पिकन की धुनि नेह कहानियाँ।
सरस मोह बिथा तम रैन को, पवन जोर महाबल मैन को।
रहिं उमंडि नदी अभिलास की, उठि रहीं लहरें बहु आस की।
मिलन दंपति को सुखदान जो, समय संधि सुफूलन साँझ को।
हृदय 'पूरन' भूरि उमंग है, सकल पावस-प्रेम-प्रसंग है।

(२५)

वर्षा की शोभा

(पूर्वी ताल धम्माल)

(टेक)—आई सखी बरखा सुखदाई छवि छाई चहुँ ओर रे—
(अंतरा)—सघन घटा कारी घिरि आई लाग रही झरि जोर रे;
निस अँधियारी चमकत चपला होत महाधुनि घोर रे।
करत सोर दादुर बन कूकैं, मेघ गरज सुनि मोर रे;
मधुर मलार अलापैं कामिनि 'पूरन' बैठि हिंडोर रे।

(२६)

वर्षा में वसंत

सूहे टेसू खिले हैं सुच सघन जोहूं चूनरी लाल सोहै;
बानी है कोकिला की प्रिय बदन-प्रभा चंद्रिका चारु मोहै।
सोही कंजावली है कर दृग मुख की, केस भृंगावली है;
देखौ वर्षा समै में ऋतुपति सुखमा अंगनै सेवती है।

(२७)

वर्षा-कामिनी

नवलान की प्यारी अलाप सोई, धुनि केकी कलाप सुनावत हैं :
अबला चपला, सजि जीगन हैं, कच-पुंज निसा तम छावत हैं।
बरखा के विनोद विहार घने हिय 'पूरन' मोद बढ़ावत हैं;
रस मेघ, महासुखमा नभ तें सुख की बुँदियाँ बरसावत हैं।

(२८)

कौंधा लपकने के कारण

(१)

पावस को पाय कै रसीली सुखदाई ऋतु,
भूलि दुख सगरे सँजोगं सुख पावत हैं ;
अंक में लगाय चंचला को घन भागसाली,
'पूरन' छिनै ही घन आनँद मनावत हैं।
हल के हृदयवारे कारे मुख लीन्हें वृथा,
हठ कै वियोगिन की विथा को बढ़ावत हैं ;
वार-वार छनदा दिखाय गोहराय मोहिं,
धुरवा घमंडी हाय जियरा जरावत हैं।

(२)

जल भरी भारी कारी बादरी विराजै व्योम,
गरजन मंद मंत्र मंगल उचारे हैं ;
छहराति दामिनि सो भाजन घुमावन में,
दमकत भूपन अमंद दुतिवारे हैं।
परत फुहार जल पावन भरत सोही,
पेखि कवि 'पूरन' विचार उर धारे हैं ;
प्यारी सुकुमारी की बलाय बरकावन को,
देखौ देवनारी आज आरती उतारे हैं।

(३)

आदर-हित देवांगना, 'पूरन' प्रेम-प्रचार ;
वार-वार लखि तिय-छटा, छन प्रकास रहिवार।

(४)

जगमगाति ज्योतिष्मती, 'पूरन' वामा रत्न ;
समता हित चमकत तड़ित, मिथ्या होत प्रयत्न

(५)

प्रिय सुकुमार कुमारि हित, भयमय तिमिर विचार ;
प्रेम-विवश देवांगना, करहिं जगत उजियार।

(६)

झाँकी बर झाँकत करत, बाधा जलधर छाय ;
जारि रहीं सुर-सुंदरी, दरसन विन दुख पाय।

(७)

तिय तन लखि मोहित तड़ित, गति अद्भुत लखि जात ;
लखति दुरति चकचौंध पुनि, लपकि-लपकि दुरि जात।

(८)

सुनि-सुनि नवला रूप गुन, करि दरसन अभिलास।
सुर-दारा छित जोवहीं, करि-करि गगन प्रकास।

(९)

तिय बिलास मोहिं लखन लखि, निज दूरता निरास ;
सजल जलद जल-जल उठत, छन छन होत प्रकास।

(१०)

करत मेघ तप मोह-बस, तिय समीपता काज ;
धूनी ज्वाला दिपति सोइ, पूरन छिन प्रति आज।

शरद्-वर्णन

शरद्-तपोवन

(१)

चाल पै मरालगन कर पै मृनाल कंज,
भृंगजाल बारन पै मन को भुलायो है ;
नैनन पै खंज-वृंद रीझो चंद आनन पै,
तप को विधान सब ही के मन भायो है।

एक पग ठाढ़े कोऊ बूड़त भ्रमत कोऊ,
भसम रमावै कोऊ फेरा देत धायो * है;
राधे हरि प्यारी तेरे रूप के उपासकन,
जग को सरद में तपोवन बनायो है।

(२)

विचरन खंज लागे, जलधर वृंद भागे,
वदन अनंद लागे, सोभा अधिकाई है;
विकसन कंज लागे, हुलसन भृंग लागे,
विलसन हंस लागे मंजुता सुहाई है।
मारग चलन लागीं, सरिता थिरन लागीं,
तीतुली नचन लागीं, सरद अवाई है;
चंद को चकोरन की मंडली तकन लागी,
लागी भूमि-मंडल पै लसन जुन्हाई है।

(३)

अरक जवास ऐसे विकसे कुमुद कंज,
सेत वन व्योम धूरि धुंध ऐसी छै रही;
हीतल दहनहारी सीतल पवन आली,
जेठ की जलाक-सी तपन तन दै रही।
चाँदनी अखंड लागै आतप प्रचंड ऐसी,
किरन सुधाकर की हालाहल वै रही;
बिन ब्रजचंद मुखकंद मोहिं 'पूरन' जू,
भीषम सरद वैर ग्रीषम-सी ह्वै रही।

* मराल, कंज, भृंग, खंज, चंद्र ये शरद की शोभा के मुख्य अंग एक पग से खड़े होना, जलमग्न होना, देश भ्रमण करना, भस्म धारण करना और परिक्रमा करना ये तप की क्रियाएँ हैं, कवित्त में अपन्हुति, यथासंख्य और परिकरालंकार है। (पूर्ण)

(४)

शरद्-ऋतु के निर्मल आकाश में तारागण

(१)

सरद-निसा में व्योम लखि के मयंक बिन,
पूरन हिए में ढूभि कारन विचारे हैं;
बिरह जराईं अबलान को दहत चंद्र,
तातें आज तापै विधि कोपे दयावारे हैं।
निसिपति पातकी को तम की चटान बीच,
पटकि पछारि अंग निपट बिदारे हैं;
तातें भयो चूर-चूर उछटे अनंत कन,
छिटिके सघन सो गगन मध्य तारे हैं।*

(२)

सोहैं सरोज सित सुंदर सिंधु माए,
नीलारविंद बन धौं--हिम-बिंदु छाए।
हीरे विशालवर नीलम शैल आहिं,
बूटे किधौं प्रकृति वाम सुचीर माहिं।
आवै किधौं तमहि जीतन रैन राज,
मैदान माहिं दल तासु रह्यो बिराज।
कीधौं बिरंचि लिखि कै महिमार्थ सार,
श्रीब्रह्म को बिरदयंत्र रच्यो अपार।
कै सेवती सुमन नंदन-बाग वारे,
जो सूँघि-सूँघि मग में भ्रमरीन डारे;

* अयमयोगिवधूवधपातकैर्भ्रमिमवाप्य दिवः खलु पात्यते;
शितिनिशादृषदि स्फुटमुत्पतत् कणगणाधिकतारकिताम्बरः।
—श्रीहर्ष

माया-तिया कि पिय 'पूरन' ब्रह्म काजै।
पर्यंक पै पुहुप पुंज अपार माजै
कै रैनचंद सुत वृंद अनंत प्यारे,
आनंद धाम विहरैं छबिवंत वारे।
पूंजं कि भक्त वर अंबर श्रीहरी को,
साजे सदिव्य बहु दीपक आरती को।

(५)

शरद्-महेश

सेत रंगवारे घन सोहत भसम अंग,
भाल वर भूषन ससी की छटा छाई है:
देव धुनिधार है अपार सोभा हंसन की,
कंजवन गौरिजू की सोहौ सुघराई है।
कासन को पुंज मंजु राजत वृषभराज,
भृंगन की अवली भुजंगन-सी भाई है:
देखु सिवभक्तन को हियो हुलसावन को,
सुखमा सरद की महेस बनि आई है।

(६)

शरद्-भामिनि

चंद्रमुखी भामिनि प्रकृति छार जामिनि मैं,
पूरन पुरुष संग मिलन सिधारी है:
सरस समीर स्वास सोहत सुवास मंद,
चाँदनी चटक चारु रूप उजियारी है।
चिहँक चकोरन की नूपुर बजत मंजु,
सेत घन-अंग अंगराग दुति प्यारी है:
तारागन वलित ललित चारु अंबर की,
सारी स्याम बूटेदार सुंदर सँवारी है।

(१)

शिशिर-वर्णन

शिशिर-इंजन

दसन कटाकट सो गति की खटाखट है,
　　अंगन को कंप वेग 'पूरन' जतायो है;
स्वास संग भाफ जो कढ़त धूमधार सोई,
　　इंधन है अन्न आग पेटी-पेट भायो है।
रैन को अराम बिसराम कलधाम को है,
　　चाक चिकनाई तनु तेल जो लगायो है;
कारज किरान्चिन लै धावत धरातल पै,
　　सिसिर सरीर देखो अंजन बनायो है।

(२)

शिशिर का शीत

तूल को प्रभाव बात सहज उड़ाए देत,
　　सरत न काम रस औषध के भोग में;
पावक प्रचंड सों दुचंद है प्रचंड पाला,
　　वृथा हैं दुसाला आला सरदी के सोग में।
पूरन व्यायाम प्राणायाम कीन्हें आठों जाम,
　　रंचक न होत कमी कंपन के रोग में;
सिसिर-समै में दोई सीत की हरत भीत,
　　ललना सँजोग माहिं छुटना वियोग में।

(३)

शांतिमय शिशिर

पावक जुड़ानी विषधरन कँचाई विस,
　　चंडकर सकल प्रचंडता विहाई है;

चोर-व्यभिचारी निसि भ्रमन बिहाय बैठे,
सिंह-वृक वृंद पर्‍यो गुहन लुकाई है।
भीतिवस जाके दिन दीन ह्वै के सिमिटत,
पाला मिसि कीरति अपार जासु छाई है :
'पूरन' बिलोको जग सातुकी बनावन को,
सांतिमई सीतमई सिसिर सुहाई है।

सुंदर फुलवारी

(१)

हाँ-हाँ देखो कैसी बनी फुलवारी। सोभा अपार छा रही। हाँ-ह देखो०। हरित मनोहर तुंग अति तरुवर अलबेली नवबेली नगरमन सघन छबिदारी। हाँ-हाँ देखो०

सुमन-सुहावन रँग मन-भावन छबि-हुलसावन सोभा पावन, कुंजन-कुंजन छावत गुंजन भँवर भौर मतवारी। हाँ-हाँ-हाँ देखो०

चातक केकी कीर कपोती, लाल चकोरी सावक मैना, चाव से डोलैं, भाव किलोलैं, भाव से बोलैं, सुंदर बैना, मुर्चीना ऐसी बाजैं, सरंगी ऐसी छाजैं, सो मधुरी अवाजैं लागैं प्यारी। हाँ-हाँ देखो०

शीतल सुगंधवारी, डोलती समीर न्यारी, मंद-मंद मोदकारी, श्रमहारी, सो द्रुमन लचाय रही, सुमन बिछाय रही, बेलिन झुलाय रही। अहा हा ! वाह वा ! देखो सोभा अहा ! कैसी प्यारी प्यारी। हाँ-हाँ देखो०

मंजु सर देखिए कंजबन की छटा हंसगन कूज कल्लोल अभिराम है। नीर निरमल महाचंद्र मनि जाल सों रल को जगमगो घाट प्रति ठाम है। ताहि में बाग को पूर्ण प्रतिबिंब वर, वरुण को मनहु छवि सिंधु आराम है। सोम के रंग सम मेरु के शृंग सम तीर नगनंदिनी को धवल धाम है। सो 'पूरन' सराहिए—कहो तो

यही चाहिए— सुनंदन विपिन गयो बलिहारी। अहा हा! वाह वा! देखो सोभा अहा! कैसी प्यारी प्यारी। हाँ-हाँ देखो०

(२)

आहा! विपिन में देखो, कैसी बहार छाई।

कचनार टेसू फूले, अलि हैं रसालन भूले, चंपा बकुल सुघराई, घटछाँह सीतल भाई।

कोमल पपीहा, मैना, बहु मोर बोलैं बैना, 'पूरन' पवन सुखदाई, मन जात है हर्षाई।

(३)

चंदमुखी चाव-भरी जैसे पिय-चाकरी में,
सूरजमुखी त्यों मुख जोयो करै भान को;
सांत रसै चाहै जिमि बासना-विहीन संत,
भौंर-वृंद लोभे त्यों प्रसून मधु-पान को।
झूमि लागि भूमि रही डार फलदार जैसे,
सीखत गुनी ना डर लेस अभिमान को;
'पूरन' मिलत धर्मनीति उपदेस जामें,
कौन भाँति भाखूँ बाग-महिमा महान को।

गंगाजी की शोभा

चामर-सी चंदन-सी चंद्रिका-सी चंद-ऐसी,
चाँदनी चमेली चारु चाँदी-सी सुघर है;
कुंद-सी, कुमुद-सी, कपूर-सी कपास-ऐसी,
कल्पतरु-कुसुम-सी कीरति-सी बर है।
'पूरन' प्रकास-ऐसी काँस-ऐसी हास-ऐसी,
सुख के-सुपास ऐसी सुखमा की घर है;
पाप को जहर-ऐसी कलि को कहर-ऐसी,
सुधा की छहर-ऐसी गंगा की लहर है।

गंगाजी की महिमा

हाँ देखो कैसी धवल जल-धारा,
गंगा सुमन मंदाकिनी धाई धूम-धाम से;
सुधा-सी देवधाम से सिधाई धरातल-धारा,
ब्रह्म कमंडल अमल हिमांचल।
आर्यधरा, कांतिकरा, जाय राजी समुद्र अपारा,
सत्य सतोगुन सुखमाधारी;
अमित चंद्र की-सी उजियारी,
देवसरी क्षेमकरी, तारि देती कलुप परिवारा।
'पूरन' संत तपस्वी सज्जन,
करि-करि दरस परस श्ररु मज्जन;
पातक खोवैं, प्रमुदित होवैं,
पावैं शांति सुख-सारा।
याही के किनारे धारे,
ईश्वर को ध्यान प्यारे;
योग के करनहारे, सेवैं घन को।
शंकर के रंग ऐसी,
सत्य के उमंग ऐसी;
गंगा की तरंग पै, झुलावैं मन को।

पंचवटी की शोभा

हरे-हरे लहलहे विपुल द्रुम वृंद-वृंद वन सोहैं,
लोनी-लतिका-कलित ललित फल बलित लेत मन मोहैं;
लाले पीरे सेत बैंजने सुमन सुहावन फूले,
गुंज गान करि चंचरीक मकरंद-पान में भूले।
केकी कीर कपोत कोकिला चातक कोक चकोरा,
मैना लवा लालमुनिया वर बहु विहंग चहुँ ओरा;

विविध रँगीले भेस छबीले अमित मधुर सुर छावैं,
नाचैं उड़ैं चुगैं छकि विहरैं सहज हियो हुलसावैं।
गोदावरी समीप विराजैं सुठ सरोज सर भावैं,
लगत पवन ममहरन सुगंधित मन प्रसन्न ह्वै जावैं;
पावन परम रम्य कानन के साज अनूप निहारे,
आनंदन बस ह्वै सुरवृंदन सत नंदन-वन वारे।

कामदेव का गर्व

सेना हमारी प्यारी, रति की सहेली प्यारी।
देखो वसंत सोभा, मन जोगियों का लोभा।
कमलावली छवि-ऐनी, -मंजरी काम की पैनी।
आभा बड़ी है तीखी, कर दे तपस्या फीकी।
सुंदर समीरन डोलैं, कोकिला भरी मद बोलैं।
वन बाग 'पूरन' सोहैं, सुर-संत के मन मोहैं।

श्रीकृष्ण-जन्म पर प्रकृति की बधाई

(१)

काम-धेनु चिंतामनि पारिजात बारिजात,
ऐसी रमानाथ की उदारता सुहाई है;
महिमा अपार कहि हारे शेष शारद से,
नेति-नेति बानी निगमागम सुहाई है।
अखिल भुवाल के बिसाल दरबार माहिं,
रहत सदैव ही जयति ध्वनि छाई है;
'पूरन' बिलोकि नित वृद्ध जस कीरति की,
गायो कैर देवता बधाई है, बधाई है।

(२)

'पूरन' रमेस घनस्याम के जनम समै,
पावस न होहि छबि उच्छव की छाई है;

गाजैं नहीं मंदघन दुंदुभि अखंड बाजैं,
बुँदियाँ न होहिं झरी फूलन की भाई है।
चातक न बोलैं धुनि सोहिले की सोहि रही,
जीगन न होहिं दीपमाला सरसाई है;
मंजुल सरस सोर मोर ना मचावैं वन,
प्रकृति पुकारत बधाई है, बधाई है।*

(३)

औरे भाँति आज नीर यमुना किलोलति है,
औरे भाँति डोलत समीर सुखदाई है।
औरे भाँति भायो है कदंबन भ्रमर-भार,
धुरवान मुरवान औरे धुनि छाई है।
स्याम के जनम-दिन भीर गोप-गोपिन की,
औरे भाँति नंद-भौन जात भूरि धाई है;
औरे भाँति 'पूरन' रसाल गान छाजत है,
औरे साज संग आज बाजत बधाई है।

---

* मानवीय संसार के साथ प्रकृति भी समयानुसार अपना शोक-हर्ष प्रकट करती है। देखो अँगरेजी कवि स्काट-कृत 'Lay of the Last Minstrel' Canto V.

"When the poet dies
Nature mour msher worshipper and celebrates his obsequies." etc.

और देखो जब रामचंद्र अवधपुरी लौट आए हैं—

"भइ सरयू अति निर्मल नीरा ; बहै सुहावन त्रिविध समीरा।"

(तुलसी)

अमलतास

(प्रचंड ग्रीष्म की दोपहरी में सरस पुष्प-गुच्छों से आच्छादित अमलतास के वृक्ष देखने पर एक उक्ति)

(१)

छबीले अमलतास तरु-जाल, तुम्हारे दरसीले अभिराम ;
रँगीले पीले सुमन-समूह, धूप काले में भी छवि-धाम।
देख कुछ रोचक नए विचार, हृदय में उदय हुए दो-चार ;
उन्हीं का है यह आविर्भाव, रसिक प्रति प्रीति-पूर्ण उपहार।

(२)

वाटिका-विपिन-नासिका-रूप _, सघन किंशुक प्रसून परिवार ;
कमल, गेंदा, गुलाब, कचनार, विमल सेमल, अनार, गुलनार।
लालिमा से जिनकी यह भूमि, बनी अनुराग-समुद्र अपार ;
उन्हें यह भीष्म ग्रीष्म की आज, किए देती है ज्वाला क्षार।

(३)

सेवती, जाही, जुही, अगस्त, चाँदनी, कुमुद, चमेली-फूल ;
मोगरा, बेला, विशद, कनैर, निवारी फुलवारी छवि मूल।
सभी की परिमल निर्मल कांति, हुई निर्मूल मलिनता संग ;
जगत के पादप सभी निदान, किए इस आतप ने बदरंग।

(४)

धन्य पर तुमको बारंबार, चिरंजीवी द्रुम सुखमागार ;
चंडकर-किरण प्रचंड अखंड, हुई तव हेतु चंद्रिका सार।
नहीं यद्यपि सिंचन—सुविधान, अकिंचन के धन हैं भगवंत ;
पीत फूलों से तेरे, मीत, बीत कर दरसै पुनः वसंत।

(५)

देख तव वैभव द्रुम-कुल-संत, विचारा उसका सुखद निदान ;
करै जो विषम काल को मंद, गया उस सामग्री पर ध्यान।

रँगा निज प्रभु ऋतुपति के संग, द्रुमों में अमलतास तू नक्र;
इसी कारण निदाघ प्रतिकूल, दहन में तेरे रहा अशक्र।

वसंत-वियोग

[अध्याय १]

(१)

संवत् क्या था, इसका कुछ भी नहीं विवेक,
देश समझ लो मृत्युलोक में कोई एक।
किसी पांथ का एक मनोहर कुसुमाकर में हुआ प्रवेश,
जिसकी छवि पर एक बार तो विवश मुग्ध होता अलकेश।

(२)

थे जो उसके वासी सज्जन मालाकार,
किया सहित सत्कार पथी का स्वागतकार।
अभ्यागत को स्वागत देना सेवा के दरसाना भाव,*
थी उन लोगों की परिपाटी था सुनीति से सदा बनाव।

(३)

लंबा-चौड़ा था अनेक योजन आराम,
अगणित कुंज थीं अंतर्गत शोभा-धाम।
उनमें ही से एक कुंज में लगा पथिक करने आराम
प्राकृत छवि से था वह आवृत आगे-पीछे, दक्षिण-वाम.

(४)

सुंदर वृक्ष तुंगवर उसमें थे छविसार,
बकुल†, अशोक, चनार, बेल, कचनार, अनार।
चंदन, चंपा, सेमल, किंशुक‡, खैर, कनैर, सरो, सहकार,+
तूत, लवंग, कदंब, आँवला, सेब, नाशपाती, खंभार।

---

* भारतवर्ष में अतिथि सत्कार की शास्त्र-विहित पद्धति है। † मौलसिरी।
‡ टेसू। + सुगंधित आम।

(५)

पीपल, पनस, उदुंबर, जंबू, वट, जंभीर,
बेर, बहेर, करंज, निंब, निंबू, अंजीर।
अगर, तगर, खजूर, ताल, कपूर, नारियल, शाल, तमाल,
पारिजात*, अर्जुन, अगस्त, आदिक समस्त तरुशस्त रसाल।

(६)

ललित लहर लेती थी तरलित उनके तीर,
लतावल्लिकावली मल्लिका, मृदु वानीर†।
विष्णुप्रिया‡ मोगरा, चाँदनी, सोमलता, देवना, गुलनार,
जाही, जूही एला+, केला, बेला, कनकबेल, सुकुमार।

(७)

गुललाला, गुलमेंहदी, शब्बो गुल अब्बास,
गेंदा, गुलदाऊदी, मेंहदी, कुंद सुबास।
तुलसी, सूरजमुखी, निवारी, गुललाला, गुलाब, जलवंत,
विचल नमित हो अमित डालियाँ करती थीं रसवंत दिगंत।

(८)

हरियाली से सुखमाशाली थी अतिकांति,
गुणसंपन्नों को भी पन्नों की थी भ्रांति।
नीले-पीले लाल-सेत सुंदर फूलों का था सामान,
नीलम पुष्पराज मणि-माणिक मुक्तों का था पूरा भान।

(९)

हिलते थे वृक्षों के पल्लव रुचिर अधीर,
लगती थी आगत शरीर में सुखद समीर।
मानो करके कर सहस्र निज, सेवा आतुर चातुर बाग,
व्यजनक्रिया से मनरंजन कर व्यंजन करता था अनुराग।

---

* हरसिंगार। † बेत। ‡ विष्णुकांता। + इलायची।

(१०)

भौंरों की थीं गुंजन-झनकारें भरपूर,
करते थे ध्वनि चातक कोकिल कीर मयूर।
बुलबुल,चक्रवाक, पारावत, मैना, मुनिया, लाल, निदान,
तंबूरे* पर मधुर स्वरों में अतिथि-मान-सूचक था गान ।

(११)

थी उपवन की पवन परिमलित, मिलित पराग।
पुष्पसार से सिंचित था उसका प्रतिभाग।
अनायास ही बन जाता था अर्घ्यदान का पूर्ण विधान,
बनता क्यों न ? सदा जब सज्जित था जल चंदन का सामान †।

(१२)

तरु-शाखाएँ फल गुच्छों का पाकर भार,
झुक-झुक भूमि छुए लेती थीं बारंबार।
मानो उस उपवन के किंकर समझ अतिथि-सेवा की नीति,
रखते थे फल-फूल सामने निज पवित्र उपहार सप्रीति।

(१३)

माली भी थे सभी जानते सेवा-नीति,
लाए डाली साज फूल-फल सादर प्रीति।
विस्मयमय तत्समय बटोही हुआ जभी जाँचे फल-फूल,
"है ऐसी ही सृष्टि यहाँ की किंवा हुई दृष्टि की भूल।

(१४)

"अमलतास के सरस सुहावन पीले फूल,
संग उन्हीं के हैं कदंब शोभा के मूल।

---

* भौंरों की गूँज का तंबूरा। † पराग (फूलों की रज) का चंदन और पुष्पसार (मकरंद, अरक) का जल।

हरसिंगार भी हैं डाली में तथा चाँदनी कुंद सरोज,
छै ऋतुओं के फूलों की है एकसाथ ही अद्भुत ओज !

(१५)

"विमल फलों में भी है पूरी वही बहार,
पके आम, खिरनी, जंबूफल, बिही, अनार।
लीमू, लीची, कटहल, बड़हल, कदली, दाख, सेव, अंगूर,
हैं प्रस्तुत फल बारामासी रुचिर रंग रस में भरपूर।"

(१६)

बोला भोला पथी "आर्यजन ! है आश्चर्य,
है आकर महिमा का वा कुसुमाकरवर्य !
विविध देश अरु विविध काल के हों जिसमें प्रस्तुत फल-फूल,
ऐसे उपवन में निवास हो परम भाग जब हों अनुकूल"।

(१७)

"सच है श्रीमन् !" बोल उठा इक मालाकार,
"है सचमुच यह महिमंडल में महिमागार।
किंतु क्षमा हो दोष, बाग यह अगणित गुणगण का है कोष;
एक-मात्र गुण जान, अभी तो हुआ आपको है परितोष"।

(१८)

बोल उठा फिर मुदित मुसाफ़िर "निस्संदेह !
वश्यकरण ये है अवश्य गुणगण का गेह।
एक तान से गायक के गुण का हो जाता है अनुमान,
एक कला से पूर्ण चंद्र का मन को हो सकता है भान।

(१९)

"पाक-स्वाद-सूचक होता है केवल ग्रास,
बिंदु-पान है क्षीर-सिंधु-रस का आतिभास।

पुष्पाकर-दिग्दर्शन ही से पाकर पवन-स्पर्शन-मात्र,
कहने का मैं हूँ अधिकारी है यह अमित-ललित-गुण-पात्र।

(२०)

"तदपि करो यदि स्वीकृत कुछ वर्णन का यास,
हो विशेष उल्लास-वलित यों ललित विलास।
इक तो कोमल सरसवाद में है फूलों की छटा अपार,
तिस पै मालाकार, अधिक हो किसे बाग-वर्णन-अधिकार?"

(२१)

बोला यों प्राचीन एक तब मालाकार,
"रहती है याँ छ ऋतुओं की सदा बहार।
दूर-दूर देशों के तरुवर सुंदर सकल सपुष्प अशेष,
है याँ, सो तुम जान चुके हो अब आगे कुछ सुनो विशेष।

(२२)

"नंदनवन का सुना नहीं है किसने नाम,
मिलता है जिसमें देवों को भी आराम।
उसके भी वासी सुखरासी, उग्र हुआ यदि उनका भाग,
आ करके इस कुसुमाकर में करते हैं नंदन-रुचि त्याग *।

(२३)

"बाँध पुण्य की पूँजी प्राणी तज संसार,
जा करते हैं देवलोक में मुदित विहार।
पुण्य छीन होते ही छिन में छिन जाता है स्वर्ग-विलास,†
मृत्युलोक में फिर आते हैं प्रबल वासनाओं के दास।

---

* भारतवर्ष वह भूमि है जिसके निवासी [यदि मंदभाग न हों] स्वर्ग का तिरस्कार कर ब्रह्मानंद के लिये उद्योग करते हैं। † क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति [भगवद्गीता अ० ९ । २०, २१]

(२४)

"यदि सुवासना हुई सात्त्विकी उनकी शुद्ध,
पूर्व सुकृति से होना है यदि उन्हें प्रबुद्ध।
इस दुर्गम उद्यान बीच वे पा जाते हैं सुगम प्रवेश,
भाते हैं स्वच्छंद जगत में पाते हैं आनंद अशेष।

(२५)

"इस उपवन के अधम वर्गवाले भी जीव,
कीट विहंग भुजंगम हैं सानंद अतीव।
'पृथ्वी''पानी''पवन''प्रभा''नभ' विदित 'क्रिया''अभिधान''बनाव'।*
इस सुदेश के मोद दान में रखते हैं कुछ अकथ प्रभाव।

(२६)

"छोटे जीव-जंतु भी इसके तजकर देह,
सुख-परिपूरित लोकों में पाते हैं गेह।
अथवा इसी बाग का जो है मालाकारों का वर-वंश,
पाकर सुख से जन्म उसी में होते हैं नरकुल-अवतंश।

(२७)

"है उत्तर में कोट शैल-सम तुंग विशाल,
विमल सघन हिमवलित ललित धवलित सब काल।
सुर, किन्नर, गंधर्व निरंतर रखते हैं उसमें निज वास,
बिना तपोबल साधारण जन ह्वाँ जाते खाते हैं त्रास†।

(२८)

"चंद्रभानु की श्वेत सुनहली प्रभा अपार,
पा वह रजतमय स्थलवाली हिम की धार।

---

* पृथ्वी, जल, वायु, तेज, आकाश, पाँच तत्त्व जिनसे प्रकृति बनी है और क्रिया, नाम, रूप, उसके तीन अंश। † हिमालय से अभिप्राय है।

अद्भुत गुण-गर्भित पानी का करती है जो प्रकट प्रवाह*,
अन्तर्बाह्य शुद्धि का उससे होता है अपना निर्वाह।

(२९)

"हे नर-दक्षिण! इसके दक्षिण, पश्चिम, पूर्व,
हैं अपार जल से परिपूरित कोश अपूर्व।
पवनदेवता गगन-पंथ से सुघन घटों में लाकर नीर,
सींचा करते हैं यह उपवन करके सदा कृपा गंभीर।

(३०)

"रखते हैं सब जीव परस्पर पूरा प्रेम,
व्यापक है संपूर्ण बाग में सच्चा क्षेम।
कोमल पौधों की क्यारी में कहीं कंटकारी की मूल,
लग जावे, तो फूल लगेंगे, कंटक नहीं लगेंगे भूल†!

(३१)

"बुलबुल आदिक की चोटी पर कर आराम,
तितुली देती है सुजोब कलगी का काम।
शुक-पारावत-शावक-जन को लाकर बहुधा शाकाहार,
स्वयं खिलाकर और खिलाकर जुर्रे दरसाते हैं प्यार।

(३२)

"कुंजर-वत्स केसरी-पग में शुंड लपेट,
करते हैं बल, करत डरते नहीं चपेट।
वृक से वानर मृग नाहर से नकुलजाति से पन्नग-जाल,
भीति-मुक्त सत्प्रीति-युक्त हो हिलमिल रहते हैं सब काल।

---

* गंगाजी से अभिप्राय है। † यहाँ से सत्त्वगुण की पराकाष्ठा दिखलाई जाती है।

(३३)

"कर देते हैं बाहर भुनगों का परिवार,
तब करते हैं कीश उदुंबर* का आहार।
पक्षी-गृह विचार तरुगण को नहीं हिलाते हैं गज-वृंद,
हंस भृंग-हिंसा के भय से खाते नहीं वंद अरविंद।

(३४)

"धेनु-वत्स जब छक जाते हैं पीकर छीर,
तब कुछ दुहते हैं गौओं को चतुर अहीर†।
लेते हैं हम, मधु-कोशों से, मधु जो गिरे आप-ही-आप,
मक्खी तक निदान इस थल की पाती नहीं कभी संताप।

(३५)

"इधर-उधर के आकर इसमें हिंसक जीव,
हो जाते हैं पवन लगे ही साधु अतीव।
बिज्जू, जुरें, बाज, तेंदुए, रीछ, भेड़िए, मगर, भुजंग,
खाते हैं सब अन्न वनस्पति मूल फूल-फल-सहित उमंग।"

(३६)

"धन्य! धन्य!" कह उठा मुसाफ़िर "है बस धन्य!"
अग्रगण्य बागों में है यह बाग अनन्य।
जहाँ सत्त्वगुण के महत्त्व से तरु-पशु-पक्षी हों स्वच्छंद,
क्यों न कहें हम, है उस थल में राजमान पूरा आनंद?

(३७)

इतनी कृपा हुई जो मुझ पर, मालाकार,
कीजे किंचित् और कथन का श्रम स्वीकार।
है जिज्ञासा, है यह किसका महिमा-सुखमामय उद्यान,
माली प्रतिभाशाली ये किन महापुरुष की हैं संतान।"

---

*गूलर। †इससे अधिक दूध दुहना उचित नहीं, आगे कलियुग की इच्छा।

[अध्याय २]

(३८)

जान पथी का भाव और शुचि कामना,
बोला माली वृद्ध "साधु यह भावना।
हुई, देख यह धन्य परम सौजन्य, प्रेरणा प्रेम की,
कथन करेंगे सभी कथा निज अभी कारिणी क्षेम की।

(३९)

"केवल माली-वंश-कथन होगा नहीं,
दिखलावेंगे बाग घूमकर सब कहीं।
माली-कुल-इतिहास, सहित उल्लास, समझने के लिये,
उपवन का प्रतिभाग, पथी वर भाग, घूमना चाहिए।"

(४०)

अद्भुत यान समाज उपस्थित हो गया,
पथी देख वह साज सुविस्मित हो गया।
कुंजर, मोर, तुरंग, आदि शुभ रंग, अनेक प्रकार के,
दिव्य कांति के बड़े नगों से जड़े सभी परदार थे।

(४१)

थे उन पर आरूढ़ मनोहर रूप के,
माली तेजनिधान सुरों के भूप-से।
यात्रा का उत्साह, सैर की चाह, चढ़ी थी ध्यान में,
प्रतिबिंबित था भाव और सब चाव वही प्रतियान में।

(४२)

पवन-यान था एक भवन-आकार का,
था जंगम-आगार सभी निस्तार का।
सात रंग से कलित, ध्वजावलिवलित, ललित अभिराम था,
"इंद्र-धनुष" था नाम वेग का धाम बड़े आराम का।

(४३)

पथी, नवागत-सदृश, बाग में और भी,
उत्सुक थे, कुछ सैर करें प्रति ठौर की।
उनका भी अधिकार सुमालाकार बाग में जान के,
लाए नवपथि पास समस्त हुलास सहित हित मान के।

(४४)

बढ़ा परस्पर प्रेम पथिक वर वृंद में,
सबके हुआ विकास हृदय-अरविंद में।
कौन कहाँ का पला, कहाँ का चला बाग में आ गया,
हो नहिं सका विवेक, लगा प्रत्येक जगद्वासी नया।

(४५)

जब प्रस्थान-मुहूर्त नियत शुभ आ गया,
विपुल शंख-रव तुमुल गगन में छा गया।
एक पथिक ने कहा, "शंख का महानाद ये क्यों किया?";
बोला यानाधीश "उत्तराधीश-अर्थ सूचन दिया।"

(४६)

"कौन उत्तराधीश? कौन-सा वेष है?
याँ से कितनी दूर? कौन वह देश है?
सूचन का क्या काम? महामति-धाम! बात कुछ है नईं,
दीजे पूरा भेद, न हो यदि खेद, ज्ञप्ति किस पथ गई?"

(४७)

"सज्जन! धीरज धरो, भेद खुल जायँगे,
बात-बात का पता आप सब पायँगे।
बाग भ्रमण के साथ, उदीची-नाथ आदि जो देवता,
उनका परिचय, आप्त, करोगे प्राप्त सहित उन्मोदता।

(४८)

"शंख-ध्वनि जो तुमुल हुई इस काल में,
छेदन के अतिरिक्त विघ्न दुर्जाल के।
सूक्ष्म-तत्त्व-आधार, तरंगाकार वेग ऐसा किया,
यात्रा विषय विचार विसूचन सार-रूप से कर दिया।"

(४९)

"ईश-ध्यान के साथ बैठिए यान में",
पाते ही आदेश पथी सब आन में।
"इंद्र-धनुष"-आसीन, हुए सुखलीन और वह मंडली,
बढ़ी छटा से मढ़ी गगन में चढ़ी, बढ़ी यानावली।

(५०)

उन्मुख मालाकार, बाग में जो रहे,
"यात्रा हो यह सफल" वचन मन से कहे।
अपने नियत सुकार्य, महाशय आर्य यहाँ* करने लगे,
सुर-विमान का मान वहाँ वे यान-वृंद हरने लगे।

(५१)

हंसों के समुदाय यानदल देख के,
उत्तर-दिशा-प्रयान चित्त से लेख के।
रोक न सके स्वभाव, सहित अति चाव, चले उड़के वहीं,
करता निज प्रिय-देश-गमन-उद्देश अधीर किसे नहीं ?

(५२)

सघन-गगन-नीलिमा अथवा काली घटा,
यान रँगीले इंद्रचाप-जंगम-छटा।
सहचर हंसावली, बलाकावली, पास ही त्यों लसी,
बरसा अद्भुत रंग, अनूठे अंग सुहाए पावसी।

* अर्थात् बाग में।

(५३)

पथ में मालाकार कथा कहते चले,
रस-पीयूष-प्रवाह भूरि बहते चले।
"है निकुंज यह 'चित्र' नाम की, मित्र, जहाँ हम थे अभी,
है 'कामद' उपनाम महासुखधाम, जानते हैं सभी *।

(५४)

"इसमें मुनि-समुदाय रहे आरंभ से,
महिमा के आधार धर्म के स्तंभ से।
आश्रम† है कुछ दूर, प्रभा भरपूर, महामुनि अत्रि ‡का,
अनुसूया+ सुकलत्र रुचे सर्वत्र चरित्र-सुचंद्रिका।

(५५)

"हैं दो धारा यहाँ परम ओजास्विनी,
'मंदाकिनी'× अमंद प्रसिद्ध 'पयस्विनी'=।
ऋषि-विद्वद्वर- भक्त- राम- अनुरक्त- हृदय-कंजावली,
उनसे सिंचित रहे, सुमोहित रहे मोद-भृंगावली।"

(५६)

"आगे है इक कुंज 'अवध' के नाम की,
भावी-जन्म-स्थली रमाधर राम की।
सानुज-सीता राम वहीं तज धाम और तज मान को,
विलसेंगे उस ठाम, अमितगुण ग्राम भक्त-सुख-दान को।"

---

* चित्रकूट और कामदगिरि से अभिप्राय है। † कामदगिरि से लगभग ८ कोस। ‡ मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः। ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा वशिष्ठश्चेति सप्त ते। [अत्रि का जन्म ब्रह्मा के नेत्र से हुआ और वह सप्तऋषियों में हैं। + अत्रि की भार्या, कर्दम मुनि की कन्या। उनके पुत्र—दत्तात्रेय, दुर्वासा, चंद्र। × ततो गिरिवरश्रेष्ठे चित्रकूटे विशाम्पते। मन्दाकिनीं समासाद्य सर्वपापप्रणाशिनीम् [महाभारत]। = इन दोनों नदियों का संगम चित्रकूट में हुआ है।

(५७)

वर्णन करते हुए इसी विधि याग को,
पहुँचे नूतन कुंज प्रसिद्ध "प्रयाग" को *।
त्रिगुण-रंग की तीन धार छवि-लीन धरातल थी, "अहो";
हुई महाध्वनि—'जयति देवधुनि जयति त्रिवेणी, जय कहो।'

(५८)

पथिकों से उस समय न ऊपर रह गया,
गगन-गमन का प्रेम बात में बह गया।
उतरा यान समाज-सहित सब साज ताक सुस्थान को,
झुके यथा खगनाथ पक्षिगण-साथ सरित-जलपान को।

(५९)

तीर्थराज का देश पवित्र सुहावना,
देखा, घूमे पथी, सहित शुचि भावना।
अक्षयवट का यजन, ईश का भजन पूर्ण विधि से किया,
हो फिर यानारूढ़, प्रयोजन-गूढ़, मार्ग अपना लिया।

[अध्याय ३]

(६०)

सर्व यात्रा-कथन में विस्तार है,
कीर्ति-कुंज-समूह की विन पार है!
इस समय इतिहास के जो ग्रंथ हैं साहित्य-प्राण,
कुंज-छवि माहात्म्य का अद्यापि देते हैं प्रमाण।

(६१)

नाम ही कुछ क्यारियों के प्रेम से,
लै कथा पूरी करेंगे क्षेम से।

---

* प्रकर्ष से जहाँ याग (यज्ञ) हो।

'अवध', 'ब्रह्मावर्त', 'किंशिख', 'गया', 'काशी' शुभप्रदा,
'ब्रज', 'विहार', 'प्रभास', 'माया' आदि पावन सर्वदा।

(६२)

पाठको ! अब आ गया वह कोट है,
शेष उत्तर देश जिसकी ओट है।
नाम इसका ही जगत् में विदित गिरि "हिमवान" * है,
चित्रकारों का हृदय-पट, चित्र इसका ध्यान है।

(६३)

रवि-प्रकाशित हिमवलित शिखरावली,
दूर से इस भाँति लगती थी भली।
चारु चाँदी के कँगूरों पै चढ़ा जल स्वर्ण का,
श्वेत में खिंचा हुआ आभासः पीले वर्ण का।

(६४)

मुग्ध यानारूढ़ हैं सौंदर्य पै,
हैं निछावर चित्त पर्वतवर्य पै †।
दीन हो कहते पथी हैं—"हाय कुछ रुक जाइए,
शीघ्रता मत कीजिए, इस यान को विलमाइए।"

(६५)

"सो सही"—ज्यों ही कहा यानेश ने,
यान उतरे त्वरित ओर नगेश के।
पर्वतस्थल के निकट वह यानदल जब आ गया,
दृष्टि में वह सृष्टि का सौंदर्य दूना छा गया।

(६६)

यानदल थोड़ी ऊँचाई पै रहा,
मंद चाल अमंद शोभा में बहा।

---

* हिमालय। † हिमालय की सुंदरता जगत्प्रसिद्ध और अवर्णनीय है।

छवि-निदर्शन-हेतु फैले पथिक जन के हस्त थे,
थे सभी मस्तक झुकाए मेत्र सबके मस्त थे।

(६७)

क्या मनोहारी हरे मैदान हैं,
स्वच्छ कोसों तक छटा की खान हैं!
फूल फूले अमित रंगों के प्रभा आगार हैं,
फ़र्श मख़मल सब्ज़ के रंगीन बूटेदार हैं!

(६८)

कहीं रिमझिम झरी झरनों की बहार,
है सुरभि* के साथ पावस का विहार!
परम शीतल पवन भी इस भाँति आती है चली,
शरद को भी प्रिय लगी मानो मनोहर ये थली।

(६९)

वृंद-वृंद उमंग संग विहंग हैं,
शब्द सरसीले छबीले रंग हैं।
कहीं कस्तूरी चमर-युत विविध चारु कुरंग हैं,
सिद्ध गायन के कहीं दरसे रसायन अंग हैं।

(७०)

देवता का भाव व्यापक है अपार,
देव-धारा! देव-द्वारा! देवदार!
देव-ऋषियों का तपस्थल! देव-माया का निवास
देव-देव-महेश-प्रिय! जय अचलदेव प्रभा-निवास!

(७१)

और भी आगे बढ़ी यानावली,
तुंग-शृंगों की हुई बाधक अली।

---

* वसंत के साथ वर्षा।

यानदल को पुनः ऊँची पवन में जाना पड़ा,
बहुत ऊँचे शिखर पाकर तदपि कतराना पड़ा।

(७२)

देखिए अब और ही कुछ रंग है,
एक केवल सत्त्व * गुण का अंग है,
जहाँ जाती दृष्टि है बस वहाँ हिम की सृष्टि है,
परम निर्मल! शुद्ध! उज्ज्वल! *शांतरस की वृष्टि है!

(७३)

धूल हो कर्पूर की भी श्वेतिमा!
पूर्णचंद्र प्रकाश में हो पीतिमा!
छीर सागर की छटा हो लोल, कर अवलोकना†।
आपही‡ सम आप है बस अचल-आभा शोभना!

(७४)

ह्याँ विहंगों की नहीं चिहकार है,
भृंग-पुंजों की नहीं गुंजार है;
गति कुरंगों की नहीं है नहीं द्रुमलतिका कहीं,
क्या तमोगुण की चलाई, है रजोगुण तक नहीं!+

(७५)

वाह, कैसा निर्जनत्व प्रभाव है!
शैल पै "कैवल्य" का बस भाव है!
सत्य की-सी तर्जनी हिम-शृंग के मिस ठौर-ठौर,
यात्रियों को दे रही थी शुद्ध शिक्षा और-और—

---

* सत्त्वगुण का रंग श्वेत है तथा शांतरस का भी। † प्रतीप।
‡ अनन्वयालंकार। + क्योंकि चलना-फिरना भी रजोगुण का कार्य है।

(७६)

मूक "एको ब्रह्म" की थी गर्जना,
उस चलाचल की कहीं थी बर्जना *।
इक जगह वह भाव "सत्यं वद" †-विसूचक स्वच्छ था :
कहीं "धर्मंचर"-सहित उपदेश "ऊर्ध्वंगच्छ" का †!

(७७)

मान के उपदेश वे मानो भले,
धर्मचारी ऊर्ध्वगामी हो, चले।
अंग-बाधा से सुरक्षित यान धाए वेग से,
पांथगण समझे नहीं उस मार्ग को उद्वेग से!

* * *

(७८)

वाह-वा! अब क्या धरा द्युतिवंत है,
हिम सही है पर नहीं हेमंत है!
मेघ हैं पर कोई भी बाधा नहीं बरसात की,
प्राप्त है पर्याप्त सेवा सुखद वासित वात की।

(७९)

अतिथि मानो योग-निद्रा से जगे,
स्नेह में इस देश नूतन के पगे।
छोड़ यानों को सिधारे हंस मानस-ताल को,
जीव हों ज्यों ब्रह्मगामी त्याग साधन-जाल को!

(८०)

यानियों की दृष्टि जो नीचे गई,
बात देखी इक अचंभे की नई।

---

* क्योंकि चलना-फिरना भी रजोगुण का कार्य है। † श्रुति "ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था" (भगवद्गीता)

पंक्तियाँ जो थीं मरालों की हवा में भासमान,
थीं मही-तल में सुप्रतिबिंबित और सारा आसमान!

(८१)

फिर अधिक ग्रीवा झुका देखी छटा,
बिंब-मिस जंगम विमानों की घटा।
चलित हों ज्यों क्षीरसागर में विशाल सुहावने;
यानदल श्रीवरुणजी के विपुल आकृति के बने।

(८२)

मुदित मालाकार बोले—सज्जनो!
भाग्यशाली- धर्मशील महज्जनो!
है तुम्हारे चित्त में इतना अचंभा किस लिये,
आ गया वह शुभ समय इच्छा रही थी जिस लिये।

(८३)

भेद वह इस देश में तुम पाओगे,
पा जिसे तुम सब सभी पा जाओगे *।
बाग का इतिहास सब हस्तामलक हो जायगा,
ज्ञान वह तुमको सुमालाकार पद पर लायगा!

(८४)

वास कर आराम में आराम से,
मुक्त रहकर क्रोध से अरु काम से।
शुद्ध मालाकार का कर्तव्य-पालन कीजियो †,
एवं मालाकारगण को मोद पूरा दीजियो।

* ज्ञान से अभिप्राय है जिस लाभ से अधिक लाभ दूसरा नहीं है। यल्लाभान्नापरो लाभो यत्सुखं परमं सुखम्; यज्ज्ञानान्नापरं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत्। † यह उपदेश नहीं दिया कि ज्ञानी होकर "कर्म" के मैदान से भाग जाना और कंदरा में बैठ रहना।

(८५)

है प्रणाली ऐसि ही इस बाग की,
रीति है अनुराग की वैराग की *।
पुण्य का संबंध लाया है तुम्हें इस बाग में,
ले समस्त प्रबंध-बंधन मस्त रहना त्याग में †।

(८६)

लौट निज-निज कुंज को जब जाइयो,
कर्म की कुंजी न ये बिसराइयो।
आयगा जब दिन तुम्हारे हेतु भी विश्राम का,
आ रहेंगे विपुल सुपथी, आसरा है राम का।

(८७)

बल्लिकाएँ बाग़ की सूखें नहीं,
कोइ द्रुम-शाखा न दुख पावे कहीं!
जीव सब ही स्तंब से गज सिंह तक निज बाग के,
प्रिय कुटुंबी के सदृश हैं, सकल भोगी भाग के।

(८८)

सलिल-धारा-क्षीणता होने न पाय ‡,
भूमि-तल की आर्द्रता खोने न पाय!
कुंज और निकुंज की वह मंजुता घटने न पाय,
सुमन-छवि द्रुम-सघन-छायामय छटा छटने न पाय!

---

* अर्थात् अनुराग की रीति वैराग के साथ, स्वार्थ से उदासीन हो सर्वत्र आत्मभाववाला अनुराग। † इस बंधन को लेकर भी उसकी वासना से बँध मत जाना किंतु "तेन त्यक्तेन भुंजीथाः" का अनुसरण करना। (देखो ईशोपनिषत् प्रथम मंत्र)। ‡ यहाँ लिपि की असमर्थता प्रतीत होती है। "य" से ह्रस्व "ए" का काम लीजिए। और भी कहीं-कहीं लिपि की त्रुटि क्षमा-योग्य है। "पूर्ण"

(८९)

रत्नमंडित बाग के मंदिर महान,
तुंग और अमंद सुखमा के निधान।
यज्ञशालाएँ, कुटीरें साधुजन निस्तार की,
पुस्तकालय सुर-गृहादिक वस्तुएँ उपकार की।

(९०)

सर्व का रक्षण परम कर्तव्य है,
नीति बारंबार ये वक्तव्य है।
खेत से उद्यान की नियमावली को जान के,
नित्य करना अनुसरण हित शुद्ध इसमें मान के।

(९१)

आप्तजन उपदेश यों देते हुए,
प्रेम से बोले—"नमः श्रीशंभवे!"
यान उतरे स्थित हुए जब उस धरा छवि-रास पै,
कहा यानाधीश ने—"ये रजत-गिरि कैलास है!"

[अध्याय ४]

(९२)

आहा सुखद प्रभात प्रभंजन *!
ताप शमन तापस-मन-रंजन!
आहा मानस-ताल सुभग का तीर अधीर-हृदय-धृतिकारी।
आहा नीर-तरंग चपल ये चित्त-चपलता हरनेहारी!

(९३)

असित मधुपगण-सहित मनोहर,
स्वर्ण-सरोज-समेत सरोवर,
देख तथा छविधर नव दिनकर कविवर को विचार है आता।
अक्ष लक्ष प्रत्यक्ष वरुण के अरुण-मित्र-दर्शन-सुखदाता!

---

* पवन।

(६४)

चंद-मंदता रवि-प्रकाश है,
ज्ञान-प्रभा से मनोनाश* है;
जल कल्लोल निरत है देखो उज्ज्वल राजहंसगण ऐसे।
परमहंस संसार-विरत हो मग्न प्रमोद-सिंधु में जैसे।

(६५)

पथिगण लै वे माली सज्जन,
आए किया ताल में मज्जन;
लगे सकल संध्या-वंदन में; तदुपरांत बूढ़ा इक माली।
वर्णन कर मानस की महिमा फिर बोला यों प्रतिभाशाली।

(६६)

"ऐरावत जलक्रीड़ाकारी,
देखो, शकुन हुआ ये भारी,
श्रीशिव-दर्शन-हेतु पुरंदर आए हैं कैलास-धाम में,
यही समय शुभ है तुम सबको सफल यत्न है इसी याम में।

(६७)

इक तो संचित पुण्य तुम्हारा
फिर उपदेश विशेष हमारा
तिस पर यह सब पावन यात्रा हुई अशेष अमंगलहारी।
दिव्य नयन पाओगे तुम सब शिव-स्वरूप-दर्शनअधिकारी।

(६८)

प्रणव-समेत, आत्म-सुखदाई
'नमः शिवाय' कहो सब भाई
चलो जहाँ गिरिजापति राजैं चंद्रार्कानललोचन स्वामी"
चले सकल शिवध्यानलीन वे मलविहीन सत्पथ-अनुगामी।

---

* ज्ञानरूपी सूर्य से मनरूपी चंद्रमा निस्तेज हो जाता है।

(९९)

शिवस्वरूप के दर्शन पाए,
दुःसंकल्प विकल्प भुलाए,
शिवमय सब संसार अभी वह था संसार-दृष्टि से देखा,
पलटी दृष्टि असार सृष्टि में सार सदा शिव को अब लेखा।

(१००)

* एक विष्णु विभु विश्व विहारी,
भव-भव विभव पराभवकारी।
गणपति महादेव अविनाशी आदि शक्ति त्रिभुवन कल्यानी,
सूर्य-प्रकाश स्वरूप प्रभाकर भूप अनूप अरूप अमानी।

(१०१)

जब इस भाँति तत्त्व पहचाना,
स्तवन विधान प्रेम से ठाना,
स्तुति का इक-इक अक्षर वर था † अक्षर का परिचय-दाता,
भावों से था प्रकट पुरातन जीव ब्रह्म का अद्भुत नाता।

(१०२)

जय सच्चिदानंद, जगदीश्वर,
पूर्ण, अखंड, अनंत, अगोचर।
जय अनादि, अविकार, अमित, अज, अलख, अपार, अपाप, अकाया,
अंतर्यामी, अनुपम स्वामी, मायाधर, भूतेश, अमाया।

(१०३)

"जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्था,
और सकल अनुमान व्यवस्था ‡।

---

* श्लेष से पंच देवैकता की सूचना, भारतवर्ष में मतभेद ही तो फूट बढ़ा रहा है। † ब्रह्म। ‡ गो-गोचर जहँ लौं मन जाई; सो सब माया जानो भाई।— (तुलसीदास)

तद्गत सत्यासत्य सभी का सत्ता से आधार तुही है,
जहाँ-जहाँ "है" का प्रयोग है* वहाँ "अस्ति" का सार तुही है।

(१०४)

'सकल जगत् तू, जगत् नहीं तू !
स्थान नहीं तू, सभी कहीं तू,
नहीं विविध आभूषण गण तू, अपरित्याज्य सब कंचन तू है,
रस है तू कदापि सर सरिता सिंधु हिमाद्रि प्रपंच न तू है †।

(१०५)

"वस्तु‡ प्रतीत यहाँ जो होती,
है उसमें भासक तव ज्योती ;
हैं जड़-चेतन सभी अचेतन तुझ चेतन बिन विश्वविभासी !
अगणित भाँति शक्तियों में बस है तू ही 'चित्' सुखरासी।

(१०६)

"तू है तत्त्व मोद वृंदों का,
तू है सागर आनंदों का ;
है रोचक तेरे ही कारण सुखद प्रपंच जगत् का सारा,
तू ही "प्रियता" रूप रमा है और नहीं कुछ 'प्यारी" "प्यारा"।

(१०७)

"पावस में प्यारी घनमाला,
इंद्र-शरासन-सहित रसाला ;

---

* सब माया का आधार "सत्" है। † ब्रह्म जगत् प्रपंच में इस तरह है जैसे आभूषणों में सोना अर्थात् नाम और रूप के अंश माया के हैं सार वस्तु ब्रह्म है। ‡ इस पद्य में "चित्" का और अगले पद्यों में 'आनंद" की व्याख्या है। "सत्" का ऊपर हो आई। इस प्रकार "सच्चिदानंद" समझाना। यही परमात्मा महादेव का स्वरूप है।

चपला-चमक मोर-चातक-ध्वनि पवन झकोर नीर का झाला,
हरियाली सरितादि सभी में तू है प्यारापना निराला !

(१०८)

"प्यारी ऋतु वसंत की शोभा,
देख कौन-सा चित्त न लोभा ?
सुमन-विकास सुवास पवन में कुंज-निवास सुशीतल छाया,
चंद्र-विलास-हास में प्यारे तू ही प्रियता-रूप समाया !

(१०९)

"शिशु की मधुर तोतली वानी,
पुत्र-वदन-चुंबन सुखदानी ;
संतति का विहार मुदकारी, पुत्र वधू आगम सुखबेला,
गृह-प्रपंच में पृथक पंच से है तू ही प्रिय अंश अकेला !

(११०)

"अंगोज्वलता, केश-कालिमा,
वचन-मधुरिमा, अधर-लालिमा,
हाव-भाव में प्रिय-स्वभाव में, छवि-प्रभाव में प्रियता तू है,
अलंकार, शृंगार, भामिनी के सजाव में प्रियता तू है !

(१११)

"स्वाद-सु-पूरित रसनारंजन,
बहु विध मधुर सलोने व्यंजन ;
रोचक गान मनोहर कविता सरस वचन में तू है प्यारा,
षट्रस नवरस में तू रस है तुझ बिन नीरस है रस सारा !

(११२)

"तापित जन को शीतल जल में,
शीत-भीत को उष्णस्थल में * ;

---

* गर्म स्थान ।

भूखे को जो अन्नाशन में श्रममोचन में श्रांत पथी को ;
सुख है वह सब तू है प्यारे निशि-दिन रचनेवाला जी को !

(११३)

"सुख जो इष्ट वस्तु आने में,
जो आनंद भोग पाने में,
धन, वैभव, जस, मान, रूप, बल, शांति, स्वर्ग, अपवर्ग, सभी में
है आनंद स्वच्छ प्रिय तू ही है जो कुछ इस सर्ग*सभी में !

(११४)

"है तरंग सागर में जैसे,
तुझमें जगत् प्रकृति से तैसे,
नहीं तरंग पृथक् सागर से, त्वन्मय जगत् प्रपंच सभी है
शुद्ध दृष्टि से एक सृष्टि में, है कहने को पंच सभी है।"†

(११५)

स्तुति पथिकों ने यों जो ठानी,
लंबी है संपूर्ण कहानी,
होकर शुद्ध प्रबुद्ध हुए तब उद्यत सब उद्यान गमन को,
कर्मयोग की कुंजी पाकर, सदा स्वस्थ रखने को मन को।

(११६)

मालाकार रहे गिरि-ऊपर,
पथिगण गया बाग की भू पर,
बागनिवासी मालीगण की शिक्षा से रखकर संबंध ;
ध्यान-सहित उद्यानप्रथा के रुचि से करने लगे प्रबंध।

---

* सृष्टि। प्रियवरो, इस आनंदता और प्रियता को दृढ़ता से पकड़ो, इसी में परमेश्वर है। † इस पद्य में उपदेशक ने "अद्वैत"-भावना का अंकुर नवीन पांथों के चित्त में जमाया।

द्वितीय भाग

[अध्याय १]

(१)

दिन के अनंतर रात,
निश के अनंतर प्रात,
यह काल की है चाल,
कह गए बुध वाचाल ।

(२)

दिन चाँदनी के चार,
फिर अंधकार-प्रसार,
फिर शुक्लपक्ष-प्रवेश,
है यह प्रकृति-निर्देश ।

(३)

है जन्म पाकर वृद्धि,
अरु शक्तियों की सिद्धि,
फिर जरा फिर अवसान,
फिर जन्म, चक्र महान !

(४)

उठके सहस्र तरंग,
हों सिंधु-जल में भंग,
पर एक क्षण हो लीन,
उठतीं सहस्र नवीन ।

(५)

अरविंद-वृंद विशाल,
मंजुल मिलिंद, मराल,

सर स्वच्छ में स्वच्छंद,
जलचरों का आनंद।

(६)

आकाश निर्मल नील,
सुठ पवन परिमलशील,
है शरद ये छवि-सार,
जब लौं पड़ा न तुषार!

(७)

नभ चंडकर उद्दंड,
उद्दाम घोर प्रचंड;
श्रम-घात-दाहक वात,
निर्जल जले जलजात।

(८)

शुभ चंद मंद मयूख,
वन मध्य रूखे रूख,
ये ग्रीष्म भीष्म-दिगंत,
पावस समय-पर्यंत।

(९)

फूले-फले द्रुमपुंज,
मृदु मंजु वल्ली-कुंज,
अलि-वृंद की गुंजार,
सुंदर विहंग-पुकार।

(१०)

मारुत सुगंधित मंद,
प्रिय भानु चंद अमंद,

गायन रसायन संग,
रंजन प्रमोद प्रसंग।

(११)

माली समस्त प्रसन्न,
संसार- सुख- संपन्न,
है अल्प ये संयोग,
होगा वसंत-वियोग *!

(१२)

वह परम महिमावान,
सुखमा-ललित उद्यान ;
बुध विबुध प्रेम सुपात्र,
संसार शोभा-मात्र।

(१३)

था जहाँ उद्यानास,
ऋतु-राज चारु विलास,
पहुँचा वहाँ भी रोग,
भारी वसंत-वियोग !

(१४)

वे आदि मालाकार,
हरि भक्त सौम्य उदार ;
उद्योग- योग- प्रलीन,
शिष्य-प्रशिष्य कुलीन !

(१५)

उद्यान सेवा-कार्य,
करते रहे सब आर्य,

* ५ से ११ तक ऋतुओं का परिवर्तन वर्णित हुआ।

इस भाँति बीते वर्ष,
जब सैकड़ों उत्कर्ष,

(१६)

विधि हो गया कुछ वाम,
माली हुए उद्दाम,
घटने लगा निष्काम,
उस वाटिका का काम,

(१७)

तब दूरदर्शी लोग,
समझे समझकर योग,
भावी इसे है रोग,
भारी वसंत-वियोग !

(१८)

आलस्य द्वेष विषाद,
अति वैमनस्य प्रमाद ;
हिंसा दुराग्रह द्रोह,
दुर्बुद्धि मत्सर मोह ;

(१९)

जड़ता अभक्ति अशांति,
भय अदयता विभ्रांति,
दुःसंग विषयासक्ति,
दुष्कर्म में अनुरक्ति,

(२०)

तृष्णा असत्य कुरीति,
कटुभाषिता दुर्नीति,

पाखंड छल अविचार,
अश्लील मिथ्याचार;

(२१)

सत्कर्म- श्रद्धाहानि,
सद्धर्म- निष्ठा- ग्लानि;
सुरसाधु-जन- अपमान,
श्रुति-विस्मरण अज्ञान;

(२२)

इत्यादि अवगुणजाल,
निंदित अशुभ विकराल;
बढ़ने लगा क्रम संग,
करने लगा सुख-भंग।

(२३)

इक हुई घटना घोर,
विख्यात चारों ओर *;
हो उग्र मालाकार,
तजि संधि का आधार;

(२४)

दो दल हुए कर फूट,
फिर किया युद्ध अटूट;
कुल मालियों का क्षीण,
होकर हुआ यों दीन।

(२५)

कुछ बचे मालाकार,
श्रीमत सुमत दो-चार;

* महाभारत।

उद्यान-हित उद्योग,
करते रहे वे लोग।

(२६)

उस बाग में पर हाय,
रक्षकों का समुदाय—
था अल्प अरु बलहीन,
अरि संग संगर-दीन;

(२७)

तिस पर परस्पर द्रोह,
दुःस्वार्थ- साधन- मोह;
था अंतरंग विकार,
बहिरंग का आधार।

(२८)

यह हुआ तत्परिणाम,
जो दूसरे आराम—
थे निकट अथवा दूर,
उन सबों में भरपूर।

(२९)

था युगों से विख्यात,
सुस्थल, सुनीर, सुवात;
यह लोक में उत्कर्ष,
उद्यान "भारतवर्ष।"

(३०)

उनके निवासी लोग,
डर ठान इसका भोग।

करने लगे इस ओर,
वहु आक्रमण अति घोर।

(३१)

कुछ किया युद्ध प्रचंड,
कुछ संधि का पाखंड।
बल से लिया कुछ काम,
छल से किया कुछ काम।

(३२)

बहु बार शत्रु निदान,
आए किया प्रस्थान;
उद्यान यह छवि-खानि,
सहता रहा अति हानि।

(३३)

इक धीर मालाकार,
विक्रमादित्य उदार।
याँ हुआ वीर ललाम,
जिसने किया निज नाम।

(३४)

करके समर विकराल,
वैरी समूल निकाल।
जब से हुआ वह अस्त,
बिगड़े सुकार्य समस्त।

(३५)

अनुमान दश-शत वर्ष,
उद्यान यह उत्कर्ष।

सहता रहा उत्पात,
अरि-श्रोघ के आघात।

(३६)

अंतिम वसंत-विभास,
रक्षक सुशील-निवास :
माली सु-कुल-सरताज,
रणधीर पृथ्वीराज।

(३७)

अति प्रबल रिपु-दल जीत,
था सकल शंकातीत :
पर एक उसका तात,
विश्वास का कर घात;

(३८)

मिल शत्रुओं के साथ,
दे बाग उनके हाथ।
ले मरा घोर कलंक,
ह्याँ मिटा सुख का अंक।

(३९)

था जहाँ हंस- विलास,
ह्वाँ हुआ गृद्ध-निवास;
था जहाँ कोकिल-गान,
ह्वाँ अंध-खग भयदान।

(४०)

थे जहाँ निर्मल कुंड,
ह्वाँ पड़े रासभ-झुंड।

:

था जहाँ पुष्प-प्रबंध,
छाई वहाँ दुर्गंध।

(४१)

थे जहाँ तरुवर पुंज,
शुभ ललित लतिका-कुंज;
ह्वाँ जमे रूखे रूख,
पौधे गए मृदु सूख।

(४२)

था जहाँ बारामास,
सुंदर वसंत-विलास;
दुर्दैव का ह्वाँ योग,
लाया वसंत वियोग।

[अध्याय २]

(१)

वह पूर्व सुभग उद्यान ध्यान में लाके;
रह जाते थे असहाय हाय खा-खाके।

(२)

किस भाँति उसे फिर उसी प्रकार सजावें;
चिंता थी इस हित शरण कौन की जावें।

(३)

थी फूली सरसों, थे शरीर जो पीले;
गोविंद-चरण उर थे अरविंद छबीले।

(४)

कोमल करुणा के वचन बोल कोकिल के;
अलि-गुंजन जो प्रभु-जस-गायन था मिल के।

(५)

थी सुध सुधार की स्वच्छ सुगंध बयारी ;
आनंद आस की चंद्र-प्रभा थी प्यारी ।

(६)

इस प्रकार मालाकार उदार प्रतापी ;
दुख में वसंत के थे वसंत से आपी *।

(७)

इक दिन उदार-दल वह पुरारि का प्यारा ;
श्रीदेवधुनी की धारा-तीर सिधारा ।

(८)

कर मज्जन प्राणायाम याम-भर जम के ;
शिव-ध्यान किया जप-जपके मंत्र निगम के ।

(९)

कर भेंट अंजुली जल-प्रसून-दल-फल की ;
की मानस-पूजा प्रभु के चरण-कमल की ।

(१०)

की विनती निर्मल हृदय दीन बानी से ;
दे अर्घ्य निमिष प्रति नेत्रों के पानी से ।

(११)

श्रीआशुतोष का जन-वात्सल्य सराहा ;
उद्यान-मध्य आगम वसंत का चाहा ।

(१२)

आकाश-बीच तब अद्भुत छटा निहारी ;
गुणवती गिरा कमला गिरिजा सो नारी ।

---

* स्वयं वसंत थे ।

(१३)

शत शीतभानु*-सा तेज उदित था प्यारा ;
नव भानु ज्योति से जगमग था जग सारा।

(१४)

अति कष्टनाशिनी अष्टभुजा थी माता ;
श्रुति वीणा असि धनु जलज, अभय वरदाता †।

(१५)

श्रीसिद्धि, क्षमानिधि सुखमा, महिमा, धी, मा ;
विधि-हरि-पंचानन-त्रिविधि शक्ति की सीमा।

(१६)

मुख-मंडल ऊपर थी प्रसन्नता छाई ;
थी मंद-हास-हासिका संत मन-भाई !

(१७)

मणि-सिंहासन-आसीन-चारु थी देवी ;
थे जिसे सँभाले हुए देवगण सेवी।

(१८)

था अरुण-श्वेत-नीलांबर तन की शोभा ;
जाता था द्युति पै हृदय त्रिगुण का लोभा ‡।

(१९)

थे अलंकार छवि-सार अलौकिक सारे ;
थी हार मंजु मंदार-सुमन के धारे।

---

* चंद्रमा। † आठ हाथों की सामग्री—वेद, वीणा (दो हाथों में) खड्ग, धनुष, कमल, अभय वर (छंद के संकोच से वाक्य पूर्ण करने को अध्याहार करना पड़ता है)। ‡ सत्त्वगुण का रंग श्वेत, रजोगुण का लाल और तमोगुण का श्याम प्रसिद्ध है।

(२०)

उठती थी जल में लहर चरण धोने को ;
चलती थी उपवन-पवन*व्यजन होने को ।

(२१)

जलधर-दल सेवाशील छत्र बनता था ;
कर-कर वितान का भाव गगन तनता था ।

(२२)

तत्पर थी मानो प्रकृति पूज्य पूजा को ;
कर लिया आरती-हेतु दिया† सविता को !

(२३)

श्रीवनमाली भगवान मुंडमाली के ;
सेवक गुणशाली माली छविवाली के ।

(२४)

दर्शन पाकर तल्लीन हो गए ऐसे :
श्रुति-अर्थ-मनन से हो विदेह जन जैसे !

(२५)

सुन पड़ी उन्हें आकाश-मध्य फिर बानी ;
मन हरे हुए ज्यों पा नीरस-वन पानी ।

(२६)

था उस बानी का श्रवण दुःख अपहारी ;
है वह आनंद अलभ्य बिना अधिकारी ।

(२७)

कवि को हाँ केवल सार कथन का बल है ;
है अलम् वही जो नहीं रसिक में बल‡ है ।

---

* पंखा । † दीपक । ‡ कसर ।

(आकाशवाणी का सारांश)

(२८)

त्रैलोक्यपालिनी शक्तिशालिनी मैं हूँ ;
संसार-रूप-उद्यान मालिनी मैं हूँ* ।

(२९)

मैं हूँ उपवन की हृदय-हरण हरियाली ;
फूलों की उज्ज्वल छटा पीतिमा लाली ।

(३०)

मैं ही हूँ पवन- सुगंध सलिल की धारा ;
मैं ही रवि शशि घन गगन दामिनी तारा ।

(३१)

मैं ही विहंग हूँ चंचरीक मैं ही हूँ ;
मैं ही विराट भी हूँ प्रतीक मैं ही हूँ† ।

(३२)

मैं ही हूँ मालाकार-चातुरी-महिमा ;
मैं ही हूँ सुखनागर गुणों की गरिमा ।

---

* संसार-रूप बाग की शोभा मैं हूँ । † विराट्=परमात्मा का विराट् स्वरूप (आकाश=शिर, चंद्र-सूर्य=दो नेत्र, दिशाएँ=कान, अंतरिक्ष=प्राण, मेरु=रीढ़, पर्वत=अस्थि, जल=रक्त, नदीगण=नसें, वृक्ष=रोम, भूमि=कुच दिग्दंति, पंक्ति=नितंब और जंघाएँ, अतल इत्यादि=नीचे का शरीर) प्रतीक=एक अंग वा देश । अथवा, विराट्=स्थूल शरीरों की समष्टि वा स्थूल संसारोपहित ब्रह्म, प्रतीक=विराट् का एक अंश (विराट् भगवान् का ध्यान इस प्रकार के रूपक द्वारा करना संसार-मात्र में ब्रह्म-बुद्धि करने में सहायक होता है, यह भाव दृढ़ हो जाता है कि समस्त जगत् एक पुरुष है "सहस्रशीर्षा०" इत्यादि भी समष्टि का वर्णन है) ।

(३३)
मैं प्रजाधीश की परमशक्ति वानी हूँ;
मैं महाविष्णुकी शक्ति रमा रानी हूँ।

(३४)
मैं उमा भवानी शिवा महेशानी हूँ;
रानी त्रिभुवन की स्वयं राजधानी हूँ।

(३५)
मैं प्रभा महाविद्या अशेप माया हूँ;
हूँ सूरज भी अरु सूरज की छाया हूँ।

(३६)
यह काल और आकाश हुए हैं मुझसे;
सब तेज प्रभाव प्रकाश हुए हैं मुझसे।

(३७)
माया ने मेरी तत्त्व सकल उपजाए;
रच दिए जगत् के साज-समाज सुहाए।

(३८)
है धर्म हमारा अंग जगत् में व्यापी;
सत्कर्म व्यष्टि जिस करता हूँ मैं आपी।

(३९)
सत्कर्मी के दो हाथ हाथ हैं मेरे;
सब अंग सुकृत के सदा साथ हैं मेरे।

(४०)
इस भाँति अंग निज जो मम अंग विचारै;
सम जान मुझे निज-मम का भाव विसारै।

(४१)
सत्कर्म करै अरु करै मुझे सो अर्पण;
है जीवन उसका कर्म-योग का दर्पण।

(४२)

शिर नेत्र कर्ण मुख रसना अँग उपयोगी ;
कर हृदय पेट पग आदि समस्त अरोगी।

(४३)

धन बल आतंक विचार शक्ति शुभ सारी ;
हैं मम यदि हों वे मम इच्छा-अनुसारी।

(४४)

जो मम-इच्छा प्रतिकूल अंग कर्मी है ;
वो ही रोगी अपजसी पापधर्मी है।

(४५)

है यही पाप अरु पुण्य भोग की कुंजी ;
विख्यात, धर्म-युत, कर्मयोग की कुंजी।

(४६)

जो यों रह मुझसे युक्त सदा तन-मन से ;
सत्कर्म करै हैं वह सुमुक्त बंधन से।

(४७)

है जगत्-हितैषी वही वही विज्ञानी ;
बस ब्रह्मभक्त है वही तपस्वी मानी।

(४८)

यों पालेंगे जब धर्म बाग के वासी :
मेरे प्रसाद से होगी दूर उदासी।

(४९)

हृदयस्थल में दै खाद भक्ति जो नौधा* ;
श्रद्धा से सींचे धर्म-मर्म का पौधा।

---

* नवधा भक्ति=श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ; अर्चनं वन्दनं सख्यं दास्यमात्मनिवेदनम्।

(५०)

संयम-खुरपी से मद के कुश खन डालें;
विस्मृति-पाला से रक्षा करके पालें।

(५१)

सज्जित होगी इस भाँति मोद-फुलवारी;
श्रम करें धीरता-संग सुजन-अधिकारी।

(५२)

पर-हित की शाखावली करेगी छाया;
असहाय दीन सुख पावेंगे मनभाया।

(५३)

सुख्याति-सुगंधित पवन चलेगी प्यारी;
होंगे बहु मंगल वर विहंग रवकारी*।

(५४)

उद्योग-योग के होंगे सरवर-वापी;
पीकर जल होंगे तृप्त सुशील-प्रतापी।

(५५)

आनंद-चंद्रिका की होगी उजियाली;
'पूरन' प्रबोध रवि चमकेगा द्युतिशाली।

(५६)

इस भाँति निवासीवर्ग मोद पावेगा;
तुम धैर्य धरो फिर भी वसंत आवेगा।

(५७)

हाँ, इतना है उपदेश विशेष हमारा;
जिससे होवे कल्यान अशेष तुम्हारा।

---

* शोर करनेवाले।

(५८)

जब विक्रम विंशतितम शताब्दि आवेगी ;
तब पश्चिम से यह भूमि शक्ति पावेगी।

(५९)

इस उपवन के हित-हेतु पश्चिमी शासन ;
ह्याँ होगा सम्यक् समझ रखो अनुशासन।

(६०)

उसकी रक्षा में सब कक्षा के वासी ;
कर-करके उन्नति होवेंगे सुखरासी।

(६१)

श्रीजगदीश्वर की भक्ति चाहिए पूरी ;
निज अवनीश्वर की भक्ति चाहिए पूरी।

(६२)

इनही दोनों के साथ उचित है प्यारो ;
उद्यान-भूमि की भक्ति चित्त में धारो।

* * *

(६३)

उद्यान पुनः शोभा अनंत पाता है ;
सुख का निधान 'पूरन' वसंत आता है।

सुंदरी-सौंदर्य

(१)

विराजत बंदन भाल विसाल महावर लालिमा ह्वै रही लाग ;
रहे दृग ह्वै त्यों सुरंग सुहाय कपोलन लागे तमोल के दाग।
कहाँ लौं कहूँ सुखदेनी अनूप लखी सुखमा ये हुते बड़े भाग ;
लसै रँग रावरे लाली छटा रसराज पै मानौ चढ़यो अनुराग।

(२)

गंगा-जमुना की कोउ सुखमा बतावै कोऊ,
संगति सतोगुन रजोगुन अमंद की;
कोऊ धूप-छाँह की बतावत छटा हैं कोऊ,
लाज पै चढ़ाई कुसुमायुध सछंद की।
सोभा-सिंधु नवला की बैस की बिलोकि संधि,
वीरता सुहात मोहिं 'पूरन' अनंद की;
रूप देस एकै रंग राजैं उजियारी चारु,
जोबन के सूरज की सैसव के चंद की।

(३)

छाई अरुनाई तरुनाई की सुहाई अंग,
भानु को प्रभात सोह्यो अरुन उजेरो है;
मन तें पराने बालपन के सरल खेल,
हाल सों बिहायो लखौ पंछिन बसेरो है।
'पूरन' अतन तेज आतप सरस ह्वैहै,
चंद-सिसुता को तिमि मंद होत हेरो है;
सखियो दुपहरी में जानियो अँधेरो जनि,
जोबन के ग्रीषम को जोइए सबेरो है।

(४)

नवल सुर-वधू वा, मैनका, मंजुघोषा,
कुसुमशरचमू का उर्वशी पूर्ण शोभा;
अहितिय कमनीया, काम की कामिनी वा,
रजनि-पति कला वा चंचला सोभ-सींवा।
नवरतन प्रभा वा रूप ही की छटा है,
कमल-विपिन-सोभा डोलती कै धरा पै?
कल कनकलता है चारु कै चंप-माला,
छवि-उदधि-रमा, कै राजती राज-बाला?

(५)

नाइन बुलाइ अंग-अंग उबटाय न्हाय,
जावक दिवाय पग मेंहदी रचाई है ;
कज्जल कलित करि लोचन अनोखे चोखे,
बंदन की बिंदी बाल भाल पै लगाई है ।
चारु मखतूल ताग रुचि सों गुँधाय बेनी,
सुघर अनूप माँग मोतिन भराई है ;
तारन की बाँधि कै कतार नीके तारापति,
मानहुँ नवीन कीन्हीं तम पै चढ़ाई है ।

(६)

साजे आज नख-सिख रुचिर सिंगार प्यारी,
अंग-अंग भूषनन सोभा सरसाई है ;
बिमल बदन के समीप त्यों बिसाल स्याम,
'पूरन' अलक की झलक छबिछाई है ।
मुख पै सजे हैं चारु गहने प्रसूनन के,
माँग हू पै फूलन की सुखमा सुहाई है ;
छाय चंद-मंडल को मानौ निज आनन सों,
कीन्हीं मैन सैन रैन' 'चंद' पै चढ़ाई है ।

(७)

बैठी है सिंगार साजि प्यारी सुखमा अपार,
अंग-अंग भूखन-बसन की निकाई है ;
लाल जड़ी चौकी बाल उरं में बिसाल राजै,
'पूरन' अमंद-तासु झलक सुहाई है ।
ताही पै सुमन चारु भामिनि के केसन तें,
झरत बिलोकि बेस उपमा सुनाई है ;
'तम' की सरन बैठि मारि-मारि बानन सों,
कीन्हीं कुसुमायुध ने भानु पै चढ़ाई है ।

(८)

पीतम मिलन की सोहाग-भरी आई घरी,
　　प्यारी अनुराग-भरे हिए हरखाई है ;
संग की सहेलिन की मानति सकुच तौ हूं,
　　जानि तिन्हैं आपनी गँवाई ढुन्दिताई है।
यदपि मयंक-मुखी करति अनेक संक,
　　देत यह औसर न एक सो जनाई है ;
'पूरन' दरस-अभिलासी ह्वै रही है वाल,
　　कीन्हीं रतिराज आज लाज पै चढ़ाई है।

(९)

चंदमुखी हीरन के भूषन अमंद धारे,
　　मोतिन किनारी वारी सारी चारु धारी है ;
जोवन की ज्योति तैसी रूप की है वेस बनी,
　　जाति ब्रजचंद सों मिलन हेतु प्यारी है।
'पूरन' जू जामिनी में कौतुक अनोखो भयो,
　　जावै कुंजवन द्वै सिधारी सुकुमारी है ;
भोर जानी चोरन ने, मोरन तड़ित जानी,
　　समुझी चकोरन ने चंद उजियारी है।

(१०)

लाली जेहि बाला के अधर की अमंद चारु,
　　बिंबाफल विद्रुम बँधूक को लजावती ;
जाके मृदु मधुर रसीले प्रिय बैनन की,
　　बीना पिकी कोऊ समता को नहीं पावती।
प्रेम सों पिया सों बतरात सोई चंद्रमुखी,
　　सुखमा विलोकि मन उपमा सुहावती ;
छाय चंद्र-मंडल के बीच अरुनारी घटा,
　　मंद-मंद 'पूरन' पियूस बरसावती।

(११)

अधर जपा लोचन कमल सरस गुलाब कपोल,
नव अगस्त नासा अमल दसन कुंद अनमोल।
इक चंपक द्रुम में खिले विविध सुमन रुचिसार,
मधुप भागशाली करत सबको रस संचार।

(१२)

चितवत विसिख बिसाल, सैन सिरोही चापभ्रुव,
चारन सबद रसाल, करत चढ़ाई मदन जल।

(१३)

चंद्र को प्रात दिनेश बनाऊँ,
सुंदर चंद्रमुखी आनन पै बिमल गुलाब लगाऊँ।
काम-कमान कुटिल भृकुटिन रँगि सुरधनु गर्व लचाऊँ,
रँगि कमनीय-कपोल-गुलाबन गुलनारन पजराऊँ।
नासा-तिल-प्रसून करि रंजित किंसुक-द्युति दरकाऊँ,
चिबुक-सेब रँगि लाल रसालन द्रुम तें पतित कराऊँ।
मंजुल अधर-प्रवाल लाल करि बिंबाफलन पकाऊँ,
रँगि अभिराम बदाम-नयनपुट अरुन कमल सकुचाऊँ।
पूरन, बाम-ललाम-अंग पर ललित लालिमा छाऊँ,
आज सुखद अनुराग-प्रभा सम रूप-छटा दरसाऊँ।

(१४)

पिय प्रीति कछू सरसानी हिए रुचि बाल बिहार हू की है घनी ;
रस आस हुलास चमू है चढ़ी रखी लाज सकोचन हू की अनी।
रमनी छवि देख की संधि समैं लखि "पूरन" यों सुखमा बरनी ;
नव अंगना अंगन शैशव संग अनंग की जंग ठनी-सो-ठनी।

(१५)

उत बाहन हैं इत नैन मृगा उत चाँदनी त्यों तन तेज अनी ;
उत कोस सुधा को सराहैं इतै बतरान है मंजु पियूष सनी।

उत 'पूरन' षोड़स पेखी कला इते सोरा सिंगार की सोभ बनी ;
वृषभानु की नंदिनी नागरि की अरु चंद की होड़ ठनी-सो-ठनी ।

(१६)

इत मोर पखा उत मोर नचैं सुर-चाप उतै इत है कछनी :
बकपाँत उतै इत मुक्त हरा उत गाजन ह्याँ धुनि वेनु बनी ।
चपला है उतै इत पीतपटी तन ह्याँ उत श्याम घटा है घनी :
रस 'पूरन' या ऋतु में सजनी हरि पावस होड़ ठनी-सो-ठनी ।

(१७)

गज बल धाम जे सघन घनश्याम छाए,
हय बल धावत प्रचंड जो बयारी है ;
तुंग तरु रथ हैं बलाक दल पैदल हैं,
घोर धुनि दुंदुभि बजत जोर न्यारी है ।
बूँदों की कटारी सुर चाप असि चंचला है,
करखा पपीहा पिक मोर शोर भारी है ;
मानगढ़ तोरिबे को आली मिस पावस के,
मैन नृप सैन चतुरंगिनी सँवारी है ।

इंदिरा

सुनहु 'पूरन' ब्रह्म-विलासियो !
सकल त्याग सुदेश-निवासियो !
छिनहि को इत आतुर आइए ;
प्रकृति की सुखमा लखि जाइए ।

(२)

कमलिनी * रमनी दृग रोचनी ;
रसवती युवती मृगलोचनी ।

---

* स्त्री-जाति विशेष ।

सलवणा ललना कुल सुंदरा ;
बसति चित्र सुहावन "इंदिरा"।

(३)

बदन-मंडल 'पूरन' चंद्रमा ;
सघन कुंतल रैन मनोरमा।
मदन-ज्योति प्रभा रवि प्रात की ;
मिलि रहीं सुखमा दिन रात की।

(४)

ललित बंदन-बिंदु सुभाल पै ;
पुरित की पटली पर लाल है।
विदित यौं तिय भाग सुहाग है ;
उदित सो अथवा अनुराग है।

(५)

कलित मोतिन मंजु प्रकासिका ;
ललित बेसर बेस सुनासिका।
छबि सुहाति असीम प्रशंसिनी ;
मिलति कीर-वधू सँग हंसिनी।

(६)

अलक की लट कान समीप है ;
चहति नागिनि सेवन सीप है।
मदनचाप किधौं अभिराम है ;
शिथिल जासु लसै गुन* श्याम है।

(७)

सुकवि ग्रीव बखानत कंबु-सी ;
ध्वनि मुर ध्वनि के वर अंब-सी।

---

* डोरी।

सदुपमा पर एक अनूप है;
पिक सुग्रात कपोत स्वरूप है।

(८)

लसति नाल सुहावन कंचुकी;
अरुणिमा तेहि पै पट मंजु की।
सिखर आश्रित श्रीरसराज* पै,
रँग जमाय रह्यो अनुराग है।

(९)

चहति बोलन-सी रसलीन है:
वचन चाहत-सी अरधीन है।
हँसन चाहति-सी नव-कामिनी;
लसन चाहति-सी छिति दामिनी।

(१०)

निरखि चित्र हियो हरसात है:
लगति-सी रस की बरसात है।
प्रबलता छवि की सरसात है:
कुशलता "रवि"† की दरसात है।

(११)

बस करौ बस 'पूरन' है कथा:
निरखि के छवि बर्णन की प्रथा।
उठत प्रश्न यही प्रति बार है:
कहु मनोहरता चित सार है।

(१२)

विषय के विष में मनमोहनी;
अमृत-सी छवि है अति सोहनी।

---

* रसराज (शृंगार) का रंग श्याम है। † राजा रविवर्मा चित्रकार।

अनृत आकृति प्राकृत दंभ है ;
प्रकृति में प्रियता सब ब्रह्म है* ।

कादंबरी

(१)

करके सुर तालन को बिसतार, सितार प्रबीन बजावती है ;
परिपूरन राग हु के मन में, अनुराग अपार जगावती है ;
गुन-आगरी भाग सोहाग भरी, नव नागरी चाव सों गावती है ।
छबिधाम है नाम है "कादंबरी", धुनि कादंबरी† को लजावती है :

(२)

मन खैंचति तार के खैंचत ही, उमहै जब "जोड़" बजावन में ;
उमगै मधुरे सुर की लहरी, गहरी "गमकैं" ‡ दरसावन मैं
चपलाई हरै थिरता चित की, अँगुरी "मिजराब" चलावन में;
मनभावन गावन के मिस बाल, प्रबीन है चित्त चुरावन में ।

(३)

एमन सोरठ देस हमीर, बहार बिहाग मलार रसीली ;
शंकरा सोहनी भैरव भैरवी, गूजरी रामकली सरसीली ।
गौर बिलावल जोगिया सारँग, पूरिया आसावरी चटकीली :
बोल समै के बजायो करै, तिय गायो करै मिलि तान सुरीली ।

(४)

दग सौहैं सितार के मोहैं मनै, गति ध्यान में सोहैं चढ़ी भ्रुव बेली ;
सुर भेद भरे परदे तिनमें, भई जाति-सी लीन प्रबीन नवेली ।

---

* विषय विष है । उसमें अमृतसम सौंदर्य है । उसमें आकार जो है वह मिथ्या प्रकृति का दंभ है और प्रकृति में जितनी प्रियता है वह ब्रह्म है ।
† कोकिला । ‡ सितार में "जोड़" का बजाना श्रेष्ठ है ; और उसमें "मीड" (तार खींचकर स्वर चढ़ाना) और "गमक" (गहराई से शब्द निकालना) प्रधान वस्तु हैं—"मिजराब" की चपलता उसमें शोभा देती है ।

कर वाम को बाम की चंचल आँगुरीं, देखि फबै उपमा ये अकेली ;
नट-राज मनोज की नाचैं मनो, इकतार है पूतरिया अलबेली ।

(५)

छबि कोमल आँगुरी नागरी की, अति आगरी तार बजावन में ;
अनुमान रचै मन 'पूरन' को, उपमान की खोज लगावन में ।
दल मंजु अशोक को कंप समेत, वृथा कवि लागे बतावन में ;
सुरताल थली यह कंजकली, भली नाचती राग के भावन में ।

(६)

उर प्रेम की जोति जगाय रही, मति को बिनु वास घुमाय रही ;
रस की बरसात लगाय रही, हिय पाहन से पिघलाय रही ।
हरियाले बनाय के रूखे हिए, उतसाह की पैंगै झुलाय रही ;
इक राग अलापि के भाव भरी, खटराग * प्रभाव दिखाय रही ।

---

* छै राग के प्रभाव क्रम से—"दीपक" से दीपक का जल उठना, "भैरव" से कोल्हू का घूमना, "मेघ" से वर्षा का होना, "मालकोश" से पत्थर का पिघलना, "श्री" से सूखे वृक्ष का हरा होना, "हिंडोल" से झूले की पैंग का चढ़ना, इन्हीं छै प्रभावों का आभास इस सवैए में है।

३—भक्ति और वेदांत-विषयक

हरि-भक्ति

(१)

रस है मधु में कौन सो, किती रसीली ऊख ;
कहा चलाई दाख की, फीको जहाँ पियूख ?
फीको जहाँ पियूख, राग सब लागैं सीठे ;
लगैं निपट बिन स्वाद, पदारथ जग के मीठे ?
"पूरन" कहत सुनाय न मानौ तौ कह बस है ;
हरि-प्रसंग सम सुरस नहीं कहुँ दूजो रस है ?

(२)

दृग मोर के पंख हैं जौन लगे सुर संतन दर्श विधानन में ;
शिर निष्फल श्रीफल मानो जोई न नमै हरि पावन ध्यानन में ।
रसना बिन राम के चाम निरी कर काठ उठै जो न दानन में ;
अहि बाँबी समान है व्यर्थ नहीं भगवान कथा जिन कानन में । *

(३)

सुरंग प्रसूनन की सुखमा सुच प्रात दिनेश को तेज विभाग ;
विरंच रजोगुन सोमगिरा सुर नारिन हू को अमंद सोहाग ।
सुमंगल मंगल लाल प्रभा रँग लाल जितो लखिए भरो भाग ;
सबै जग भूरि सो पूरि रह्यो परिपूरन श्रीहरि को अनुराग ।

---

* जिन हरिकथा सुनी नहिं काना , श्रवणरंध्र अहि-भवन समाना ।
नयनन संत-दरश नहिं देखा , लोचन मोरपंख के लेखा ।
ते शिर कटुतुंबी सम तूला , जे न भजहिं हरि गुरुपद मूला ।
जे नहिं करहिं राम-गुण-गाना , जीह सो दादुर-जीह समाना ।

(तुलसी)

(४)

चकोर चहै जिमि पूरनचंदहि चंदन को जिमि चाहत नाग ;
पतंग को दीपक जैसे सुहाय पिकै प्रिय जैसे रसाल को बाग।
प्रभात रुचै चकवान यथा रजनी कुल चाहत जैसे सोहाग ;
करैं नित मो मन भृंग तथा हरि के पद कंजन में अनुराग।

(५)

सुखदायक धर्म के मारग को तजि मंद अभागो भगे सो भगे ;
दुखदाई महा भ्रम-जालन ते जग मूढ़ अज्ञान ठगे सो ठगे।
अधिकारी अनंद के 'पूरन' जू प्रभु के पद प्रेम पगे सो पगे ;
हरि-भक्त उपासना-पोत चढ़े भवसागर पार लगे सो लगे।

(६)

कोउ सीत बतावत कंजन में कोउ गावत सावन को जल है ;
कोउ सेवत सेवती कंद अनार तुषार को सेवै कोऊ थल है।
भव ग्रीषम भीषम में परिकै वृथा चंदन चंदहु को बल है ;
हरि-प्रेम-सुधा बिन 'पूरन' जू नर-हीतल होत न सीतल है।

(७)

सजि लीजिए हार सरोजन के चहै पीजिए जो हिम को जल है ;
चहै न्हाइए अमृत के सर में चहै खाइए जौन सुधा फल है।
निगमागम 'पूरन' टेरि कहै वृथा चंदन चाँदनी को बल है ;
हरि के पद पंकज धारे बिना नर-हीतल होत न शीतल है।

मन-बंदर

तुझे पहिचाना मैंने बंदर,
कूदा-फिरता है त्रिभुवन में, बँधा भवन के अंदर।
तू बाजीगर जादूगर है, बहुरूपिया कलंदर ;

छोटा कभी कभी तू भारी, मच्छर कभी मछंदर।
कभी सवार कभी तू पैदल, दारा कभी सिकंदर।
कभी महंत संत गुरु चेला, कभी कुबेर पुरंदर।
कभी कुढ़ै राई से दबकर, कभी ढहावै मंदर;
जल में कभी आग में विचरै, मगरा कभी समंदर।
अरे अनारी तू मछली है; यह सब अगम समंदर;
उछल-कूद, निष्फल विचार निज 'पूरन' त्याग न कंदर।

"अधम तेरो जीवन बीतो जाय"

अधम तेरो जीवन बीतो जाय—
आया था करि भजन-प्रतिज्ञा भूलि गया सो हाय।
अभयदान को हाथ मिले ये तीर्थ-गमन को पाय;
हिंसा करैं गहैं पर नारी चलै सुपंथ बिहाय।
शुभ दर्शन अरु चरित श्रवण को, नयन श्रवण ये पाय;
देखै सुनै पाप की बातैं विषयों में चित लाय।
यह रसना हरिनाम जपन को, मुरदा तातें खाय;
छल निंदा चोरी की बातैं करते निशि-दिन जाय।
'पूरन' अभी बना है अवसर कर ले वेगि उपाय,
कर दे प्रभु के हेतु समर्पण, मन वाणी अरु काय।

"बैस सब गई"

करत लारिकैयाँ बैस सब गई;
करत न अजहूँ चेत हाय लरिकैयाँ०।
बालापन सब खेलि गँवायो, तरुन भयो तिय-मोह बढ़ायो;
अब निर्बल गति भई, लची करिहैयाँ बैस सब गई।
धर्म पंथ गहु सुहित विचारी, विषय कुपंथ निपट भयकारी;
तजि 'पूरन' चटकई—यह भूलभुलैयाँ बैस सब गई।

विश्व-वैचित्र्य

शंकर की कैसी माया है ;
दिन है कहीं कहीं है रजनी, कहीं धूप कहिं छाया है।
सूरज तारे घने चंद्रमा सुंदर विश्व बनाया है ;
वन उपवन सब सुमन वाटिका साज अजब दरसाया है।
नदी सरोवर झील समुंदर जल का कोष सजाया है ;
हरियाली के रचे गलीचे गगन वितान तनाया है।
रंग-रूप का ताना बाना 'पूरन' जगत दिखाया है।

जीव को चेतावनी

मुक्ताफल-रत होय कत, गिरत ताक तू चाम ;
गीध-विषय में हंस तू, करत गीध के काम।

संसार की असारता

समान्यो मद अंग में, लुभान्यो तिय-संग में ;
भुलान्यो भव-रंग में, रैन—दिनु रे।
चेत अजहूँ अरे 'पूरन' प्रानी रे ;
नगरी छल सों भरी, कनक-कुल अंगना, चलैगो कोई संग ना,
चलैगो एकौ रंग ना भजन विनु रे॥

आनंद का गीत

आनंदरूप मैं हूँ पूरन अपार प्यारा,
आसक्त हो रहा है संसार मुझपै सारा।
जानै चहै न जानै यह बात दूसरी है,
पर जीव-मात्र का हूँ नैनों का मैं ही तारा।
जो नाम-रूपवाला घूँघट है मेरे मुख पर,
देखो इसे हटाकर मेरी छटा अपारा।
है कौन प्राण प्यारा ; है कौन प्राणप्यारा,
मैं ही रँगीला साईं, मैं ही छबीली दारा।

होठों की लालिमा हूँ, केशों की कालिमा हूँ;
हूँ अंग-अंग मैं ही शृंगार का सँवारा।
मुख-चंद की प्रभा हूँ लोचन कमल की शोभा ;
चितवन को मोहिनी हूँ निर्मोह निर्विकारा।
निद्रा सताए जन को हूँ सेज मैं ही कोमल ;
आतप तपाए तन को सीतल हूँ जल की धारा।
भूखे मनुष्य को हूँ मैं ही रसीले व्यंजन ;
मैं ही चतुष्पदों को हूँ स्वादवंत चारा।
पुष्पित प्रसून वन में मधुकर विहंग वन में,
निशि-चाँदनी पवन में प्रिय हूँ वसंत-द्वारा।

तपस्वी-महिमा

जग में धन्य तपस्वी लोग,
परम भक्त अनन्य प्रभु के जौन साधत जोग।
आतमा को रूप निरखत तुच्छ समझत भोग ;
जीति लेत अखंड आवागमन को भवरोग।
करत ईर्षा इंद्र हू तौ, देखि सो उद्योग ::
धन्य बारंबार 'पूरन' सो महान प्रयोग।
जहँ अनंत-हित करत नर साधु-संत मन जोग,
स्वर्गहु ताके सम नहीं धन्य तपोवन लोग।
परम विशद जहँ सत्य को रहत चारु आभास ;
शत सुरपुर-संपत्ति को करत तपोवन ह्रास।

"रहिए मकानन में चाहै घोर कानन में"

(१)

माता के समान पर पत्नी विचारी नहीं ;
रहे सदा पर धन लेन ही के ध्यानन में।

गुरु-जन-पूजा नाहिं कीन्हीं सुचि भावन सों ;
बीधे रहे नाना विधि विषय-विधानन में ।
आयुस गँवाई सबै स्वारथ सँवारन में ;
खोज्यो परमारथ न वेदन-पुरानन में ।
जिनसे बनी न कछु करत मकानन में ;
तिनसों बनैगी करतूत कौन कानन में ?

(२)

डरपोकपने की तजी नहिं बान, भँजे खल छिद्र विधानन में,
मदुली नहिं बोली धौ बानी कछू, रहे पूरे भयानक तानन में।
सुचि भोजन में रुचि कीन्हीं नहीं सब, खाइयो सीखो मसानन में ;
करतूत कहो भला कौन करी, जो बसे तुम स्यारजू कानन में ।

(३)

त्यागे बसती के लाभ ह्वैहै कहा मेरे मीत,
पागे मन जोपै अजौं विषय-विधानन में ;
ह्वै कै बनवासी लखौ सिंहन न हिंसा त्यागी,
साधुता विराजी नहीं रीछन के आनन में ।
काम मद कामना मतंगन की दूनी रही,
ऊनी रही भीलन की वासना पुरानन में ;
कानन के काचे अजौं मोहि मरैं तानन में,
कीरति कुरंगन कमाई कौन कानन में ।

(४)

'पूरन' सप्रेम जो न लेत मुख राम-नाम,
टीका अभिराम है निकाम तासु आनन में ;
उर में नहीं जो हरि-मूरति विराजी मंजु,
कौन महिमा है कंठ माल के दानन में ।

आसन को नेम बिन बासना नसाए मिथ्या,
बिनु श्रुति ज्ञान होत मुद्रा वृथा कानन में ;
चाहिए सुप्रीति धर्म-कर्म के विधानन में,
रहिए मकानन में चाहे घोर कानन में ।

मुमुक्षु-गान

(राग टोड़ी—अनेक ताल)

तिताला—तू अब भज मन प्रभु सुखदाई; (टेक)
नर-तन धरि हरि सुमिर दिवस-निस,
गत अवसर चलि जाई ।
रूपकताल—पाय परम "विवेक" पूरन चित्त धर "वैराग" ;
साधु "खट संपत्ति" * प्राप्ती "मोक्ष" आनँद लाग
झपताल—चेतु रे चेतु दृढ़ निगम की सीख गहु,
वेग लहु रीति सुखप्रद सुहाई ;
मट दे आपको लखु सब ब्रह्ममय,
महाभव-रोग जासों नसाई ।
तिताला—आत्म-ज्ञान पाय अति दुर्लभ,
महावाक्य "तत्त्वमसि" सफल करि ;
लहु "सत" "चित" "आनंद",
रूप शुद्ध पूर्ण परम पद पाई ।

(राग कालंगड़ा)

(१)

मन तू चंचल छली अजाना ;
टेक—चंचल छली अजाना, मन तू चंचल छली अजाना ।
जान्यो जाहि सदा अपनो सो, छिन में भयो बिराना ;

---

* "षट्संपत्ति—शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान ।"

अंतरा—देखी-सुनी न आस-मिलन की चितवत ताहि लुभाना ;
मंद कुटिल बरजो नहिं मान्यो लोचन-बाट पराना।
अंग सँघाती संग घात तैं कीन्हीं. बरु न बहाना ;
आप प्रियै मिलि तनु पीड़ित की सगरी सुरति भुलाना।
चपला पवन कोकिला सावक उपमा सोउ न समाना ;
चपल कृतघ्न चोर सुखदाई को मन-सरिस जहाना ?

धर्म-महिमा

(१)

बिप्र धर्म को भूलि तेजहत बंस· लजावैं :
क्षत्रिय धर्म बिसार दीन ह्वै निंदा पावैं।
वैश्य तजै जो धर्म सुखन को मूल गँवावै ;
शूद्र धर्म-प्रतिकूल मनुज-श्रेणी तें जावै।
सो धर्म किए ही परम सुख, संतन जो नित मन धर‍्यो ;
परलोक नसायो भ्रांति बस, जेहि अधर्म सपने कर‍्यो।

(२)

धर्म-शत्रु कनकाक्ष ताहि श्री बराह मार‍्यो :
कनक कश्यपहु दैत्य ताहि हरि उदर बिदार‍्यो।
रावण को श्रीराम, सहित खल-दल संहार‍्यो ;
केशी आदिक मारि कंस कहँ कृष्ण पछार‍्यो।
त्यों कियो अधर्महिं कौरवन, भारत-रण जूझे सकल ;
है तीन काल में अहितकर, धर्म छाँड़ियो एक पल।

वासना पर पद

(बिहाग के स्वरों में)

टेक—सपने में जागै, संत, बैरिनि वासना ;
दरसावै चरित अनंत बैरिनि वासना।

अंतरा—कामी को नव कामिनी अरु लोभी को धन देत ;
चेत भए संताप दै दूनो करति अचेत।
बैरिनि बासना।
अंब चखावै कोकिलै अरु निंब कीट को निंब ;
प्रानी की मन-कामना को बनै खरो प्रतिबिंब।
बैरिनि बासना।
बैरिनि बैरिनि मत करौ रे मानौ थासु निहोर ;
जो प्रानी के चित छिप्यो सो देत प्रगट करि चोर।
बैरिनि बासना।
मलिन विषै तजि चित करहु किन निर्मलता को धाम ;
'पूरन' सपने दरश शुचि देहिं राम घनश्याम।
बैरिनि बासना।

ब्रह्म-विज्ञान

(१)

मानुष-देह धरी तो सुनौ शुभ कर्मनं हीं को बनी यह खास है ;
कर्म बने नर धर्म रहै परिणाम नहीं तो महा दुख रास है।
भूलि न याहि करो अपवित्र सुनौ यह 'पूरन' मर्म प्रकास है ;
देह नहीं यह देवल है जगदीश को यामें रहै नित वास है।

(२)

बैन कहै विन आनन ही अरु नैन बिना तिहुँ लोक को भास है ;
कर्म करै कर-हीन सबै बिन पाँव चलै नहिं नेक प्रयास है।
छै रस चाखै बिना रसना बिन अंग निरंतर ही छवि रास है ;
नाक बिना नित बास लहै ब्रह्मांडहु तालु अखंड सुबास है।

(३)

आतमा सच्चिदानंद है पूरण विश्व में ताको अखंड निवास है ;
माया के संग सो है परमेश्वर पै तऊ ताको सुछंद विलास है।

जीव है बुद्धि में ताहि को सत्त्व सुबोध बिना ही भयो दुखरास है;
जीव के हेतु ये देह लिवास है देह को जैसे लिवास में वास है।

(४)

वाणी में अनल ह्वैकै इंद्र ह्वैकै हाथन में,
विष्णु ह्वैकै पावन में सत्ता को दिभास है;
जनन में प्रजापति अधो माहिं मृत्यु सोई,
बोलै गहै चलै रमै त्यागै अनायास है।
श्रवण दिगीश को पवन को त्वचा में बल,
नैनन में सूरज के बल सो प्रकास है;
सोई ह्वै वरुण रसना में बस्यो 'पूरन' है,
सोई पृथ्वी ह्वै करै नासा माहिं वास है।

(५)

कीन्हें शुभ कर्म शुद्ध अंतःकरण होत,
यह उपदेश श्रुति करत प्रकास है;
सोई भगवती पुनि 'पूरन' सुनाय कहैं,
ज्ञान बिन कैस हू न होवै मनोनास है।
कीजिए सकल कर्म त्यागिए स्वधर्म को न,
स्वस्थ को मर्म भरो एक ही सुपास है;
ब्रह्म की उपासना की पास है दवाई जाके,
ताकी नहीं बाकी रहै वासना की वास है।

(६)

जाही दिन राज के प्रकाश में लख्यो है सब,
ताही को लख्यो न अचरज ए महान है;
बोलत बतात दिन-रात तौ हूँ पूँछत हौ,
सचमुच मुख में हमारे का जबान है?
खोजत हौ जाको घर बाहर, अखंड सो तो,
आतमा तुम्हारे घर ही में राजमान है;

सच्चित स्वरूपवारो 'पूरन' परम प्यारो,
सोई है जहान माहिं ताही में जहान है।

(७)

चाँदनी को घाम जान्यो सूधो ताहि वाम जान्यो,
जान्यो दुःख धाम जौन सुख को निधान है;
जूड़े को तपायो मान्यो सुखी को सतायो जान्यो,
अपनो-परायो मान्यो है रह्यो अजान है।
लै कर सहारो सतसंग श्रुति सीखवारो,
ब्रह्म-रूपी रस्सी को न लीनो पहचान है;
ताही ते डगन तेरे भय को करनहारो,
बगरो भुजंग ऐसो सगरो जहान है।

(८):

सुख दुख भोगी कैसे आतमा प्रतीत होत,
यद्यपि न काहू भाँति व्यापै ताहि माया है;
जैसे जल भाजन में नभ प्रतिबिंब तहाँ,
जीव प्रतिबिंब नभ आतमा अमाया है।
वासना पवन जल बुद्धि को डुलावे देखो,
भेद खुल जावे जु पै शंकर की दाया है;
सूरज वा नभ में न किंचित विकार होत,
यद्यपि दिखाई देत डावाँडोल काया है।

(९)

कहीं बारबाला करैं चैन का निवाला कहीं,
मद का पियाला देखि पानी मुँह आया है;
कहीं देखि वैभव पराया बौखलाया चित,
कहीं भाव वैरी कहीं मित्र का समाया है।
तृष्णा की तरंगिनी में मज्जन कहीं है भूरि,
वासना भुजंगिनी ने कहीं लहराया है;

प्राणियों के फाँसने को रज तम डोरवाला,
चारों ओर जाल कलिकाल ने बिछाया है।

(१०)

प्रीत मणि माल की न भीति है भुजंगन की,
शत्रु पर क्रोध है न मित्र पर दाया है :
मित्रता सुधा सो है न वैर है हलाहल सों,
पदवी प्रजा की तैसो भूपति को पाया है।
कानन में वास तैसे कलित मकानन में,
अंबर कलित सो दिगंबर की काया है :
'पूरन', अनंद माहिं लीन ज्ञान योगिन को,
गरमी की धूप तैसी सरदी की छाया है।

(११)

कोऊ पाट ही के नीके अंबर जरी के सजे,
कोऊ दुखमगन नगन दीन-काया है :
कोऊ स्वाद पूरे खात व्यंजन सुधा-सो रूरे,
काहू पै विधाता की न साग हू की दाया है।
कहूँ शोक छायो कहूँ आनँद को पायो रंग,
कोऊ अति छुद्र कोऊ आसमान पाया है :
'पूरन' विचित्र हैं चरित्र भूमि-मंडल के,
रामजी की माया कहीं धूप कहीं छाया है।

(१२)

कंचन को कंकन ज्यों पृथक न कंचन सों,
तैसे दयावान सों न भिन्न होत दाया है ;
पवन को वेग जैसे भिन्न है पवन सो न,
जैसे पंचभूतन सों बिलग न काया है।
याही भाँति 'पूरन' जू यद्यपि कहत लोग,
व्यापक जगत माहिं ब्रह्म संग माया है।

सार को बिचारै माया ब्रह्म सों बिलग नाहीं,
होत ज्यों पुरुष सों बिलग नाहिं छाया है।

(१३)

सीखो व्यभिचार लघु बैस में अनारिन सों,
भये वार नारिन के चेरे बिन दाम के;
बुद्धि बल पौरुष गँवाय साल द्वैक ही में,
रोगन के बोझ बहु झेलं बस काम के।
ब्याह के न नेक उतसाह मन माहिं माने,
लखि पछताने रँग रूप निज बाम के
प्रथम अनीति करि संपति सों द्रोह ठानि,
मूरख रहे ना निज कामिनि के काम के।

(१४)

सोई है निकुंज सोई पुंज चारु फूलन के,
सोई सर कुंड सोई नीर बिमलाई है;
सोई गोप गोपी सोई 'पूरन' बिलास हास,
सोई ब्रह्म भूमि सोई समै सुघराई है।
सबको है सार सोई और है नहीं सो कछु,
भूमि है न बास है न लोग ना लुगाई है;
नीर है न कुंड है न कुंज है न पुष्प-पुंज,
खेत है न बारी है न बेल है न गाई है।

(१५)

काज सब साजै गढ़ि स्वारथ की बातैं नितै,
छलत दुनी को नाहिं रंचक सकात है;
भोग की बिषै की तैसे रटत कहानी रहै,
बाचा के रटनं से गँवावै दिन-रात है।

'पूरन' भनत तू अनोरी मूढ़ प्राणी हाय,
तजत न खोंटी बानि धोखा बड़ खात है;
जीवन के दाता जगत्राता रामजू के यश,
रटत तिहारी कस रसना पिरात है।

(१६)

बानी वेद गणप अनंत जो बखानी नित,
हित लिखी ब्रह्मा महाश्रम को प्रकास है;
उत्तर औ दक्खिन औ पूरब औ पच्छिम हू,
ऊपर औ नीचे छोर नाहीं कहुँ भास है।
सर्व शक्तिमान करुणा की भगवान ईश,
महिमा बखानन को कौनसों सुपास है;
'पूरन' मयंक रवि तारे अंक आखर हैं,
रावरो बिरद पत्र बापुरो अकास है।

(१७)

तू ही है तरुन तरु बेली है ललित तू ही,
सुखना कलित तू ही सुमन प्रधानन में;
सौरभ सुरंग तू ही भ्रमर विहंग तू ही,
सैर की उमंग तू ही शोर सार गानन में।
त्रिविध समीर तू ही जंतुन की भीर तू ही,
नदी सर नीर तू ही जड़ता चटानन में:
सुखमा अपार तू ही ऋतु की बहार तू ही,
सार तू ही 'पूरन' जगत रूप कानन में।

(१८)

लोभ है सघनताई तृसना अगाध घाटी,
मंद मति काई छाई जड़ता चटानन में;

मोह है प्रबल सिंह वृक है अधम कोह,
द्रोह है मतँग दंत पापता के आनन में।
अंध कूप अहंकार माया घोर अंधकार,
बासना कुपंथ भरे भीत भरि प्रानन में;
काम है कुटिल व्याधा बाधा अति देनहारो,
कामिनि है नागिनि जगत भीम कानन में।

(१६)

मोह को प्रबल जाल चहुँघा बिछो है यामें,
बैठो काल व्याधा रूप मारिबे के ध्यानन में;
वाही मति मंद अंध खग को बिनाश होत,
आयकै फँसत जौन लोभि-लोभि दानन में।
'पूरन' बिचार तेरो सुहित सुनाऊँ तोहिं,
सीख जौन पाई निगमागम पुरानन में;
मेरे जीव पंछी मत फँसिए सयाने एरे,
भोग के कपट दाने फैले लोक कानन में।

(२०)

नर को लहि सुंदर दिव्य शरीर, अरे कछु चेत करो मन में;
पर 'पूरन' प्रेम करो हरि को, चित देहु न नेक विषयगन में।
नत बासना अंत में देहै दगा, कहुँ फाँसिहै आतमा को खन में;
जड़ भर्त यथा मृग-जन्म लह्यो, मृग-सावक प्रीति कै कानन में।

(२१)

पावक जरावै नहीं पवन सुखावै नहीं,
सीत हू गलावै नहीं ऐसो अविकारी है;
फंदा ताहि फाँसै नहीं गाँसी ताहि गाँसै नहीं,
नासै नहीं काल ऐसो अचल बिहारी है।
'पूरन' है सचित है आनँद है अच्युत है,
देह में वृथा क्यों ताहि लेखत अनारी है;

गौर है न श्याम है न सूधो है न बाम जीव,
लघु है न भारी है पुरुष है न नारी है।

(२२)

जो पै मीत मेरे नारि मन में बसी है तेरे,
काहे को अनारी तैंने सारता बिसारी है;
केशन की कालिमा में लालिमा में ओंठन की,
ब्रह्म ही की 'पूरन' जू चारुता निहारी है।
हाँसी बोल चाल में हँसी में चाल ढाल हू में,
लीला में रँगीला सोई सुंदर बिहारी है,
अंगन में ब्रह्म भ्रुव-भंगन में ब्रह्म सोहै,
रूप उजियारी सारी ब्रह्ममयी नारी है।

(२३)

जो कुछ लखात वा सुनात व बिचारो जात,
जहाँ लौं निदान अनुमान है सो माया है;
'पूरन' जो ब्रह्म जानिबे की लालसा है तोहिं,
ऐसी उर ठान परमातमा अमाया है।
आनँद है ज्ञान है प्रमान है सनातन है,
बुद्धि है न तन है न प्राण है न काया है;
सुख है न दुःख है न प्रीति है न भीत है,
रूप है न काल है न धूप है न छाया है।

(२४)

वारो पितु मातु को दुलारो तात बंधुन को,
गोद में प्रमोद में सँवारी गई काया है;
बालक है अजान सोई आज तू अकेले आन,
खेल्यो या मकान में न जानी कछु माया है।
दीप को न देखै तम प्रभा को न लेखै भेद,
देखि भयभीत तोहिं लागै मोहिं दाया है;

औचक ही भौचक भयो है करतूत हीन,
सोच तौ सपूत अरे भूत है कि छाया है।

(२५)

जैसे उपाधि को पाय कै आतमा लोक में आय कै जीव कहावै;
तैसही माया की पाय उपाधि को आतमा ईश्वर नामहिं पावै।
ईश्वर जीव में भेद जँचै तब लौं जग जन्म औ मृत्यु सतावै;
ताहि सों 'पूरन' ईश्वर जीव को बुद्धि में भेद न आवन पावै।

(२६)

गीता-गुण-गान

भारत में पारथ को कृष्ण उपदेस्यो ज्ञान,
पावन सुखद सो रहस्य सब गावती;
नासिनी कुमोह कोह ममता मदादि दोष,
ब्रह्म ही अगाध ताकी थाह को लहावती।
झलकत जाके प्रति बचन में सांत रस,
मारग परम निरबान को बतावती;
गीता शांतिदायिनी मुमुक्षुन के श्रौनन में,
'पूरन' जू आनँद पियूष बरसावती।

(२७)

सोई भ्रम वात भूरि संकट करनहारो,
योनिन अनेक में जो बासना भ्रमावती;
आतप त्रैताप भूरि ममता जलाक पाय,
बिषय बिसूचिका त्रिकाल डरपावती।
जरत वृथा ही भव ग्रीसम बिषम दीन,
लहत न काहे जीव सांति मन भावती;
'पूरन' प्रसिद्ध घनस्याम की मधुर बानी,
गीता मेघमाला है पियूष बरसावती।

(२८)

धर्म को बिसारि गति धारि के तमीचर की,
 तामस तिमिर में भ्रमत क्यों बिहाला है;
'पूरन' प्रकाशमान पावन परम ज्योति,
 ध्यावरे अनारी जग जासों उजियाला है।
वासना प्रबल तें न पैहै नत पार कै हूँ,
 मेटि बुद्धि जीवन की देत जो कसाला है:
ग्रीसम प्रचंड घोर मारुत झकोर आगे,
 जैसे ठहरात नाहिं दीपन की माला है।

(२९)

वासना प्रचंड पौन जीव ममतादि जामें,
 भव को पयोनिधि अगाध बिकराला है;
तरन चहै तू छुद्र प्राणी तो रमेसैं ध्याव,
 ध्यान जल पान जाको 'पूरन' बिशाला है।
खेवट उपासना सहारे पार लागन को,
 सबमें बिशेष जो सुपास एक आला है;
माया की अँधेरी में कुपंथ की चटान पै हू,
 गीता की प्रकाशमान दीपन की माला है।

(३०)

भाव के निदाघ में जरत क्यों अनारी जीव,
 पैहै सुख धर्म धाम सीतल सनातन में:
तीन ताप आतप तपत, चित लावै क्यों न,
 ध्यान सुख सेज छाई भक्ति कंज पातन में।
तृसना तृपा सों रहै आकुल वृथा ही मूढ़,
 रीझ रस सीरे सांत ग्रंथन पुरातन में:
लहु बिसराम खस खाने गुरु बातन में,
 दुःख क्यों सहत भ्रम घोर भ्रम वातन में।

(३१)

भेद जीव ईश को बतावै सरसावै ज्ञान,
प्रीति जो करावै ब्रह्म 'पूरन' सनातन में ;
प्रकृति की संज्ञा दरसावै कै विदित पंच-
तत्त्व को प्रबंध जौन जीवन के गातन में ।
सेत भवसागर की हेत परमानँद की है,
पावन प्रसिद्ध जोई ग्रंथन पुरातन में ;
पीजै सुधा सांत रस मन को लगाव ताही,
भगवतगीता परमातमा की बातन में ।

रंभा-शुक-संवाद

श्रीशुक-रंभा को भयो विदित शब्द-संग्राम ;
ताही की कछु बानगी सुनिए शुभ-मतिधाम ।

रंभा— (१)

बीथी-बीथी आम की कुंज आवै ;
कुंजै-कुंजै कोकिला मत्त गावै ।
गाए-गाए मानिनी मान जावै ;
जातै-जातै काम को रंग आवै ।

शुक— (२)

बीथी-बीथी साधु को संग पैए ;
संगै-संगै कृष्ण की कीर्ति गैए ।
गाए-गाए एकताई प्रकासै ;
एकै-एकै सच्चिदानंद भासै ।

रंभा— (३)

धामै-धामै हेम की बेलि डोलै ;
बेली-बेली पूर्णिमा-चंद बोलै ।

चंदे-चंदे मीन की मंजु जोरी ;
जोरी-जोरी मैन क्रीड़ा अथोरी ।

शुक— (४)

धामै-धामै रत्न-वेदी सुहावैं ;
वेदी-वेदी भक्त-संवाद भावैं ।
वादै ह्वी सों बोध चित्तै प्रकासै ;
बोधै पाए शंभु को मूर्ति भासै ।

रंभा— (५)

श्यामा कामा सुंदरी रूपवारी ;
गोरी भोरी काम की-सी सँवारी ।
वाकी बाँहैं आपने कंठ डारी ;
भेंटी नाहीं तो वृथा देह धारी ।

शुक— (६)

लक्ष्मी-पी की साँवरी मूर्ति प्यारी ;
दवी देवै मोद को देनहारी ।
चंद्राभासी मंद मुसक्यानवारी ;
ध्याई नाहीं, तौ वृथा देह धारी

रंभा— (७)

वसंत में पाय प्रसून-कुंजैं ;
सुगंध पै मोहि मलिंद गुंजैं ।
विलास ऐसे थल अंगना को ;
लहै वही भाग विशाल जाको ।

शुक— (८)

प्रसून पीतांबर माल राजै ;
भृंगावली केश रसाल भ्राजै ।

वसंत में यों हरि मूर्ति ध्यावैं ;
ते संत आनंद अनंत पावैं ।

रंभा— (९)

हेमंत में बाल-मयंक ऐसो ;
है अंक में तो फिर सीत कैसी ।
पिया प्रिया की बतियाँ सुहावैं ;
आनंद-भीनी रतियाँ वितावैं ।

शुक— (१०)

विहाय जो ध्यान प्रमोदकारी ;
सोवै विषै में सब रात भारी ।
ता हेतु लीन्हें जमदूत फाँसी ;
सचेत होवैं वनिता-विलासी ।

रंभा— (११)

सुवर्णवर्णी तरुणी-छबीली ;
प्रिया रँगीली सुमुखी रसीली ।
जो प्रेम ऐसी नहिं वाम को है ;
तारुण्य तो ये केहि काम को है ?

शुक— (१२)

होवै जरा में बल-बुद्धि हानी ;
मिली तपस्या हित ही जवानी ।
उद्योग नाहीं शुभ काम को है ;
निकाम तो ये तनु चाम को है ।

रंभा— (१३)

कुरंग-सी जासु चितौन प्यारी ;
सुरंग बिंबाधर-जुग्मवारी ।
अनंग की-सी सुकुमार नारी ;
न संग होवै बिन भाग भारी ।

शुक— (१४)

जाकी लुनाई जग में बसी है;
दसौ दिसा में सुखमा लसी है।
पुनीत पूरी महिमा गँसी है;
बिना भजे ताहि सबै हँसी है।

रंभा— (१५)

सुहावनी गोल कपोलवारी;
बुलाक वाले नथ लोलवारी।
सुकामिनी काम किलोल वारी;
मिलै बड़े भाग समोल नारी।

शुक— (१६)

महेश ही को दिन-रैन ध्याना;
महेश ही पै मन ये दिवाना।
महेश ही जोग विचार ज्ञाना;
"अमोल" तो है बस भक्त दाना।

रंभा— (१७)

धारा अलंकार सिंगार सोरा;
विलोकि जाके मन होय भोरा।
जो, हाय, स्वीकार करै न ताहि;
ताको अरे जन्म गयो वृथाहि।

शुक— (१८)

सोरा कला चंद्र दिनेश बारा;
बाँरैं गिरा शेष लहैं न पारा।
आनंद का रूप प्रमोदकारी;
का तासु आगे वनिता विचारी।

रंभा— (१६)

रूरी पूरी वदन द्युति है चंद्रमा तें सवाई ;
नैना सैना, मदन सर में नाहिं सो तीछ्नाई।
कारे भारे चिकुर जेहि के भृंग के मानहारी ;
नारी प्यारी नर नहिं रमी तो वृथा देहधारी।

शुक— (२०)

प्यारे-प्यारे जुगुल पद हैं पद्म-शोभा-प्रहारी ;
सेवै-लेवै भरि हिय जिन्हैं सिंधुजा प्राण वारी।
छाई भाई मुनि-गन हिए जासु प्यारी उज्यारी ;
सोई जोई नर नहिं भजै सो वृथा देहधारी।

रंभा— (२१)

बामा कामाभिरामा शशिवर-वदना
शीलधामा ललामा।
कस्तूरी-चर्चितांगी मदन मद-भरी
चंचला चारु श्यामा।
बाँकी ऐसी तिया की चितवन चित में
काम नाहीं जगावै *।
नाहीं संदेह देही वह जग अपनो
जन्म यों ही गँवावै।

शुक— (२२)

मज्जा मेदा वसा की अशुच मल भरी
चाम की तुच्छ थैली।
खोटी नौ छिद्र वारी बहु नसन कसी
अस्थि की वस्तु मैली।

---

* "काम (मदन) नाहीं जगावै"— यह रंभा का अभिप्राय है और "कामना (इच्छा, वासना) हीं जगावै—" इस अर्थ से शुक का पक्ष सिद्ध होता है। रंभा की वाक्त्रुटि उसके भावी पराजय की अग्र-सूचना है।

लोहू मूत्रादि जासों वहत बहु सदा
स्रोत दुर्गंधवारे।
सेवैं सोना वृथा की नर जग नरकी
नीच पापी नकारे।

(२३)

(उपसंहार)

रागी त्यागी शब्द-संग्राम कीन्हों ;
भोगी जोगी वार में चित्त दीन्हों।
हारी नारी, जीत पाई जती ने ;
बाजे गाजे व्योम नें मोद भीने।

४—देशभक्ति, स्वदेशी और राजभक्ति

(१)

स्वदेशी बारामासी

छा गया अनुराग देश का भाई 'स्वदेशी' ;
है बैसाख महीना पुनीत , देशहितैषी बनो सब मीत ;
चलो हिलमिल के वीरों की चाल , कर दो भारत को मालामाल ;
कमाई है जस की, अजी छा गया० ।
जेठ गए सुख-सरवर सूख , रूखे तिजारत के हुए रूख ;
गरीबी की लूकों से हिम्मत हार , हिंद ने दुख से किया हाहाकार ;
जगी हमदर्दी, अजी छा गया० ।
मास असाढ़ घटा घनघोर , आसा की उमड़ी चहुँ ओर ;
झमाझम बरसै चेत का नीर , चलने लगी उपदेश-समीर ;
तपन गई जी की, अजी छा गया०
सावन सुमति-नदी उफनाय , संधि-सिंधु मिलने चली धाय ;
गिरै कट-कटके कुमति-कगार , फूट का कूड़ा बहा मँझधार ;
लहर आई मन की, अजी छा गया० ।
भादों विरोध अँधेरी रैन , साहस की बिजली सुखदैन ;
छिन-हि-छिन चमकै हित का शोर , सुन धुन छावैं हितैषी मोर ;
घड़ी आई सुख की, अजी छा गया० ।
क्वार विमल अवसर आकाश , छाया परिश्रम-चंद्र-प्रकाश ;
सितारे चमकैं सेवाधीर , भारत के उपकारी वीर ;
कृपा हरि-हर की, अजी छा गया० ।

कार्तिक मद के जुए में कपूत, हार गए करनी-करतूत;
मनावैं लक्ष्मी कर व्यापार, लोग स्वदेशी करें त्योहार;
जगावैं दिवाली, अजी छा गया०।
अगहन जाड़े का संवाद, कीजे भारत को आबाद:
रुई, परमीने, रेशम, और, कोसे यहाँ के-से हैं किस ठौर;
क़दर करौ इनकी, अजी छा गया०।
पूस पड़ा आलस पै तुसार, काँपा है दारिद का दरबार:
है छाई संपदा की नई धूप, है सबका उतसाह अनूप;
बनो उद्योगी, अजी छा गया०।
माघ तजै घर का अब कोन। ख़बर बसंत की है तुम को न:
राय सरकारी मिली भरपूर। हमको स्वदेशी है मंज़ूर।
हो मुल्की तरक़्क़ी, अजी छा गया०।
फागुन मतवाले हुए ढीन। अपनी मतवाले लवलीन;
समझ के हिलाओ हाथ और पैर। पानी में रह के मगर से क्या बैर।
नहीं हठ अच्छी, अजी छा गया०।
चैत में फूले घनेरे पलास, चोखा है रंग नहीं कुछ बास;
हैं ऐसे ही वे भी है जिनमें दिखाव, बातों के लच्छे, नहीं बरताव;
ये कैसी सपूती, अजी छा गया०।
है मलमास सुखी सब देस, स्वामी ने भेजा प्रजा को सँदेस;
"किए श्रम जाओ, छोड़ो न आस, 'पूरन' होगी सभी अभिलास;"
सो जै-जै स्वदेशी। अजी छा गया०।

जागिए!

(१)

विगत आलस की रजनी भई;
रुचिर उद्यम की द्युति छै गई।

कुमति-नींद अहो अब त्यागिए;
भरतखंड-प्रजागण जागिए।

(२)

चल गई उपदेश-हवा भली;
खिल गई जन के मन की कली।
सुमति भैरव के स्वर रागिए;
भरतखंड-प्रजागण जागिए।

(३)

सदुपदेश-विहंगम तात है?
प्रबल वाद सुकुकुट तान है।
विहित कारज में उठि लागिए;
भरतखंड-प्रजागण जागिए।

(४)

जलज-पुंज मनोरथ के खिले;
मधुप हैं पुरुषारथ के मिले।
विहित कारज में हठ लागिए;
भरतखंड-प्रजागण जागिए।

(५)

उदित सूरज है नव भाग को;
अरुन रंग नए अनुराग को।
तजि विलौनन को अब भागिए;
भरतखंड-प्रजागण जागिए।

राजदंपति को आशीर्वाद

जय-जय भरतखंड-भुवाल,
राजरानी राजकुलयुत दयाकर जनपाल।
स्वर्गिनी हितकारिनी विक्टोरिया मतिधीर;

तासु सुत एडवर्ड सप्तम भए शासन-वीर।
यश-सहित करि राज सोऊ लह्यो स्वर्ग-विहार;
छाँड़ि प्यारी प्रजा अपनी रावरे आधार।
जानि निज रक्षा समुन्नति रावरे आधीन;
विनय भारत करत विनती भक्त-भावन-लीन।
सहित 'पूरन' सुख जियहु चिर सुजस पाय विशाल;
हरहु दुख सब भरहु संपति करहु देश निहाल।

भूप-सप्तक

(१)

स्ववश जासु अनेकन देश हैं;
विपुल सेवत जाहि नरेश हैं।
विदित शत्रुन को विकराल जो;
जयतु भारतवर्ष-भुवाल सो।

(२)

विदित है जग जासु कृपालुता;
निज प्रजापति भूरि दयालुता।
सुमति-सागर नीतिस्वरूप जो;
जयतु भारत-भूप अनूप सो।

(३)

समर-धीर, भयंकर, साहसी;
विकट सैनिक जासु अहैं जसी।
विजय पायक जासु रहै सदा;
जयतु वीर महानृप सर्वदा

(४)

धरत दीनन के सिर हाथ जो;
नित अनाथन के हित नाथ जो।

चलत जो सतपंथ निशा अहर् ;
जयतु सो प्रिय भारत ऐंपरर् ।

(५)

सुरप-से जेहिके दरबार हैं ;
धनद-से धनकोश अपार हैं ।
सुयश-चंद्र प्रताप दिनेश सो ;
जयतु भारत-देश-नरेश सो ।

(६)

अनल भारत-संकट-तूल को ;
पवि अनीति-प्रथा-तरु-मूल को ।
अनिल घोर उपद्रव-दीप को ;
जयतु भारतवर्ष-महीप सो ।

(७)

विजयिनी जननी विक्टोरिया ;
प्रिय हुतो जिनको अति इंडिया ।
विदित तासु सुपौत्र नरेश जो ;
हित करै परिपूरन देश को ।

स्वदेशी कुंडल

(१)

देशी प्यारे भाइयो ! हे भारत-संतान !
अपनी माता-भूमि का है कुछ तुमको ध्यान ?
है कुछ तुमको ध्यान ? दशा है उसकी कैसी ?
शोभा देती नहीं किसी को निद्रा ऐसी ।
वाजिब है हे मित्र ! तुम्हें भी दूरंदेशी ;
सुन लो चारों ओर मचा है शोर "स्वदेशी" ।

(२)

परमेश्वर की भक्ति है मुख्य मनुज का धर्म ;
राजभक्ति भी चाहिए सच्ची सहित सुकर्म ।
सच्ची सहित सुकर्म देश की भक्ति चाहिए *;
पूर्ण भक्ति के लिये पूर्ण आसक्ति चाहिए ।
नहिं जो पूर्णासक्ति वृथा है शोर चढ़े स्वर ;
है जो पूर्णासक्ति सहायक है परमेश्वर ।

(३)

सरकारी क़ानून का रखकर पूरा ध्यान ;
कर सकते हो देश का सभी तरह कल्यान ।
सभी तरह कल्यान देश का कर सकते हो ;
करके कुछ उद्योग सोग सब हर सकते हो ।
जो हो तुममें जान, आपदा भारी सारी ;
हो सकती है दूर, नहीं बाधा सरकारी ।

(४)

थाली हो जो सामने भोजन से संपन्न ;
विना हिलाए हाथ के जाय न मुख में अन्न ।
जाय न मुख में अन्न विना पुरुपार्थ न कुछ हो ;
विना तजे कुछ स्वार्थ सिद्ध परमार्थ न कुछ हो ।
बरसो, गरजो नहीं, धीर की यही प्रणाली ;
करो देश का कार्य छोड़कर परसी थाली ।

(५)

दायक सब आनंद का, सदा सहायक बंधु ;
धन भारत का क्या हुआ, हे करुणा के सिंधु !

---

* ईश्वर-भक्ति, राजभक्ति और तदनंतर देशभक्ति के क्रम में श्रीमती बीसेंट, तथा उनके अनुयायियों के प्रसिद्ध सिद्धांत "For God, Crown and Country" के प्रभाव की झलक जान पड़ती है ।

हे करुणा के सिंधु पुनः सो संपति दीजै ;
देकर निधि सुखमूल सुखी भारत को कीजै।
भरिए भारत भवन भूरिधन, त्रिभुवन-नायक !
सकल अमंगलहरण, शरणवर, मंगलदायक।

(६)

धन के होते सब मिलै बल, विद्या भरपूर ;
धन से होते हैं सकल जग के संकट चूर।
जग के संकट चूर यथा कोल्हू में घानी ;
धन है जन का प्राण वृक्ष को जैसे पानी।
हे त्रिभुवन के धनी ! परमधन निर्द्धन जन के !
है भारत अति दीन लीन दुख में बिन धन के।

(७)

यथा चंद बिन जामिनी भवन भामिनीहीन ;
भारत लक्ष्मी बिन तथा, है सूना अति दीन।
है सूना अति दीन संपदा सुख से रीता ;
है आश्चर्य अपार कि है वह कैसे जीता।
सुनौ रमापति ! हाय ! प्रजा धनहीन रैन-दिन ;
हैं अति व्याकुल वृंद कुमुद के यथा चंद बिन।

(८)

नहीं धनुष का, चक्र का, नहीं शूल का काम ;
नहीं गदा का काम है, नहीं विकट संग्राम।
नहीं विकट संग्राम निकट वैरी नहिं कोई ;
है बस भारत-प्रजा घोर निद्रा में सोई।
हरिए किसी प्रकार हरे हर ! आलस उसका ;
वामहस्त का काम कान नहिं बान-धनुष का।

(९)

'पूरन' ! भारतवर्ष के सेवाप्रेमी लोग ;
कर सकते हैं दूर दुख ठानैं यदि उद्योग ।
ठानैं यदि उद्योग कलह तजकर आपुस का ;
नानाविध उपकार अभी कर डालें उसका ।
करता है निर्देश जगत का स्वामी 'पूरन' ;
करें सुजन उद्योग, कामना होगी पूरन ।

(१०)

कह दो भारतवर्ष के भक्तों से तुम आज ;
अवसर यह अनुकूल है करने को शुभ काज ।
करने को शुभ काज शीघ्र उद्यत हो जावें ;
न्यायशील-नृप-विहित रीति का लाभ उठावें ।
कर्म-विपाक-स्वरूप राजशासन है कह दो ;
है श्रीप्रभु का तुम्हें यही अनुशासन कह दो ।

(११)

हिलता,मिलता,नीति लै इंग्लिशजन के साथ ;
करै यत्न तो हो सही, भारतवर्ष सनाथ ।
भारतवर्ष सनाथ हुआ जानौ फिर जानौ ;
यदि कुछ भी अनुकूल हवा का रुख पहचानौ ।
उसकी इच्छा विना कहाँ यह अवसर मिलता ;
पत्ता भी तो नहीं हुक्म विन उसके हिलता ।

(१२)

तन, मन, धन से देश का करैं लोग उपकार ;
विद्या, पौरुष, नीति का कर पूरा व्यवहार ।
कर पूरा व्यवहार धर्म का काम बनावैं ;
अग्रगण्यजन विहित प्रथा को चित में लावैं ।

पृथक्-पृथक् निज स्वार्थ भुलावैं सचेपन से ;
देश-लाभ को अधिक जानकर तन-मन-धन से।

(१३)

सेवा तन से जानिए, हाथों उत्तम लेख ;
कानों सुनना हित वचन, आँखों दुनियाँ देख।
आँखों दुनियाँ देख ऊँच अरु नीच परखना ;
पैरों से कुछ भ्रमण चरण समथल पर रखना।
मुख से सुठ उपदेश पार हो जिसमें सेवा ;
सज्जन ! है बस यही देश की तन से सेवा।

(१४)

मन की सेवा के सुनो, मुख्य चिह्न हैं चार :
(१) देश-दशा का मनन शुभ (२) उन्नति-यत्न-विचार।
(३) उन्नति-यत्न-विचार सोचना नियम कार्य का ;
(४) कार्य-समय विश्वास, विदित जो धर्म आर्य का।
मिलती हैं इन गुणों सफलता-रूपी मेवा ;
करौ देश के लिये समर्पित मन की सेवा।

(१५)

धन की सेवा जानिए सब सेवा का सार ;
होता है तन, मन दिए इस धन का संचार।
इस धन का संचार धर्म ही के हित मानौ ;
विना दान के सफल धनी-पद को मत जानौ।
पेट देश का भरौ पेट का काट कलेवा ;
यथाशक्ति दो दान बनै तब धन की सेवा।

(१६)

सुनौ बंधुवर ! 'पूर्ण' का सुन करुणामय नाद ;
इन वचनों से ईश ने सब हर लिया विषाद।

सब हर लिया विषाद किया आश्वासन पूरा ;
होगा पूरन काम नहीं जो यत्न अधूरा।
उसी सीख अनुसार लेखनी कर में लेकर ;
करता हूँ विस्तार-कथन, टुक सुनौ बंधुवर।

(१७)

भारत-तनु में हैं विविध-प्रांत-निवासी अंगः—
पंजाबी, सिंधी सुजन, महाराष्ट्र, तैलंग।
महाराष्ट्र, तैलंग, वंगदेशीय, विहारी ;
हिंदुस्तानी, मध्यहिंद-जनवृंद, बरारी।
गुजराती, उत्कली, आदि देशी-सेवा-रत ;
सभी लोग हैं अंग बना है जिनसे भारत।

(१८)

ईसावादी, पारसी, सिक्ख, यहूदी लोग ;
मुसलमान, हिंदी, यहाँ है सबका संयोग।
है सबका संयोग, नाव पानी का जैसे ;
हिलिए, मिलिए भाव बढ़ाकर मित्रो कैसे।
गुण उपकारी नहीं दूसरा एकदिली-सा ;
हैं भ्राता सब मनुज, दे गया सम्मति ईसा।

(१९)

सौदागर वर, बैंकर, मालगुज़ार, वकील ;
ज़िमींदार, देशाधिपति, प्रोफ़ेसर शुभशील।
प्रोफ़ेसर शुभशील, एडिटर, मिल-अधिकारी ;
मुंसिफ़, जज, डेपुटी, आदि नौकर सरकारी।
रहा खुलासा यही, किया सौ बार मसौदा ;
बनै स्वदेशी तभी होय जब सबको सौदा।

(२०)

पुर्ज़े किसी मशीन के हों कहने को साठ ;
बिगड़े उनमें एक तो हो सब बाराबाठ ।
हों सब बाराबाठ बंद हो चलना कल का ;
छोटा हो या बड़ा किसी को कहो न हलका ।
है यह देश मशीन, लोग सब दर्ज़े-दर्ज़े ;
चलें मेल के साथ उन्हें क्यों पुर्ज़े-पुर्ज़े ?

(२१)

धर्म-सनातन-रत कहाँ बैठो हो तुम हाय ?
पूज्य सनातन देश का सोच समस्त विहाय ।
सोच समस्त विहाय धर्म का पालन भूले ;
देश दशा को भूल, भला क़िस्मत में फूले ?
यदि न देश में रही सुखद संपदा पुरातन ;
सोचो, किस आधार रहेगा धर्म सनातन ?

(२२)

आर्यसमाजी ! आर्यवत् आर्यदेश के काज ;
निज प्रयत्न अर्पण करौ, सार्थक करौ समाज ।
सार्थक करौ समाज, देश की दशा बनाओ ;
"दया"-युक्त "आनंद" सहित धीरता दिखाओ ।
आर्ति हित का मैदान बीच दौड़ाओ बाजी ;
हो तुम सच्चे तभी, मित्रगण ! आर्यसमाजी ।

(२३)

दामनगीर निफ़ाक़ है, हाय हिंद ! अफ़सोस ;
बिगड़ रहा अख़्लाक़ है, वाय हिंद ! अफ़सोस ।
वाय हिंद ! अफ़सोस ! ज़माना कैसा आया ?
जिसने करके सितम् -भाइयों को लड़वाया ।

मुसलमान हिंदुओ ! वही है क़ौमी दुश्मन ;
जुदा-जुदा जो करै फाड़कर चोली-दामन ।

(२४)

बरस कई सौ पेशतर की हक़ ने तहरीक ;
दो भाई बिछुरे हुए हो जावें नज़दीक ।
हो जावें नज़दीक हिंद में दोनों मिलकर ;
लड़े भिड़े फिर एक हुए कर मेल बराबर ।
यह दोनों का साथ रज़ाए रब से समझो ;
इन दोनों को मिले हुए अब बरस कई सौ ।

(२५)

बंदे हैं सब एक के, नहीं बहस दरकार ;
है सब क़ौमों का वही ख़ालिक़ औ कर्तार ।
ख़ालिक़ औ कर्तार वही मालिक परमेश्वर ;
है ज़बान का भेद, नहीं मानी में अंतर ।
हो उसके बरअक्स करौ मत चर्चे गंदे ;
कह कर "राम", "रहीम" मेल रक्खौ सब बंदे ।

(२६)

पानी पीना देश का, खाना देशी अन्न;
निर्मल देशी रुधिर से नस-नस हो संपन्न ।
नस-नस हो संपन्न तुम्हारी उसी रुधिर से ;
हृदय, यकृत, सर्वांग, नखों तक लेकर शिर से ।
यदि न देशहित किया, कहेंगे सब "अभिमानी ;
शुद्ध नहीं तव रक्त, नहीं तुममें कुछ पानी" ।

(२७)

सपना हो तो देश के हित ही का हो, मित्र !
गाना हो तो देश के हित का गीत पवित्र ।

हित का गीत पवित्र प्रेम-बानी से गाओ;
रोना हो तो देश-हेतु ही अश्रु बहाओ।
देश! देश! हा देश! समझ बेगाना अपना;
रहँ झोपड़ी बीच महल का देखूँ सपना।

(२८)

भैंसी की जब मर गई पड़िया, चतुर अहीर
कम्मल की पड़िया दिखा लगा काढ़ने छीर।
लगा काढ़ने छीर, भैंस भेसब बेचारी;
यही समझती रही-यही पुत्री है प्यारी।
नहीं स्वदेशी बंधु, बात यह ऐसी वैसी;
हो मानुष तुम सही किंतु हो सोई भैंसी।

(२९)

खेती है इस देश में सब संपत्त की मूल;
कोहनूर इस कोश में हैं कपास के फूल।
हैं कपास के फूल सुभग सत् के रँगवाले:
रखते हैं अँग-लाज इन्हीं से गोरे-काले।
अपनाओ तुम उसे, तुम्हारी मति जो चेती;
हरी-भरी हो जाय अभी भारत की खेती।

(३०)

लीजै विमल कपास को उटवा चरखी-बीच;
धुनकाकर रुँटे चढ़ा, तार महीने खींच।
तार महीने खींच वस्त्र वर पहनो बुनकर;
दिया साधु का उदाहरण क्या प्रभु ने चुनकर।
जग-स्वारथ के हेतु देह निज अर्पण कीजै;
प्रिय कपास से यही, मित्रगण, शिक्षा लीजै।

(३१)

चींटी, मक्खी शहद की, सभी खोजकर अन्न ;
करते हैं लघु जंतु तक, निज गृह को संपन्न ।
निज गृह को संपन्न करौ स्वच्छंद मनुष्यो ;
तजो-तजो आलस्य अरे मतिमंद मनुष्यो !
चेत न अब तक हुआ मुसीबत इतनी चक्खी ;
भारत की संतान ! बने हो चींटी, मक्खी !

(३२)

कूकर भरते पेट हैं पर-चरणों पर लेट ;
शूकर घूरों घूमकर भर लेते हैं पेट ।
भर लेते हैं पेट सभी जिनके है काया ;
पुरुषसिंह हैं वही भरैं जो पेट पराया ।
ठहरौ, भागौ नहीं, स्वदेशी चर्चा छूकर ;
करौ 'पूर्ण' उद्योग, बनौ मत शूकर, कूकर ।

(३३)

देशी उन्नति ही करै भारत का उद्धार ;
देशी उन्नति से बनै, शक्तिमती सरकार ।
शक्तिमती सरकार-रूप-शाखा हो जावै ;
प्रजास्वरूपी मूल बली यदि होने पावै ।
विलग न राजा प्रजा, करौ टुक दूरंदेशी ;
कहो स्वदेशी जयति, स्वदेशी जयति स्वदेशी ।

(३४)

गाढ़ा, झीना जो मिलै उसकी ही पोशाक ;
कीजै अंगीकार तो रहै देश की नाक ।
रहै देश की नाक स्वदेशी कपड़े पहने ;
हैं ऐसे ही लोग देश के सच्चे गहने ।

जिन्हें नहीं दरकार चिकन योरप का काढ़ा ;
तन ढकने से काम गजी होवै या गाढ़ा।

(३५)

खारा अपना जल पियो मधुर पराया त्याग ;
सीठे को मीठा करै 'पूर्ण' देश-अनुराग।
'पूर्ण' देश-अनुराग, सकल सज्जनो निवाहो ;
है जो ह्याँ पर प्राप्त अधिक उससे मत चाहो।
बिना विदेशी वस्त्र नहीं क्या गुज़र तुम्हारा ?
काफ़ी है जो मिलै होय गाढ़ा या खारा।

(३६)

संगी, साटनैं, गुलबदन, जाली बूटेदार ;
ढाका, पाटन, डोरिया, चिकन अनेक प्रकार।
चिकन अनेक प्रकार, नैनसुख, मलमल आला ;
फ़र्द, दूस, कमख़ाब अमीरी क़ीमतवाला।
कोसा कंचनबरन, अमौवा नारदारंगी ;
पहनो ह्याँ के बने, बनो भारत के संगी।

(३७)

धोती सूती, रेशमी, खन, साड़ी, मंडील ;
बनत, कामदानी, सरज, हे समर्थ शुभशील !
हे समर्थ शुभशील ! ज़री से कलित दोशाले ;
पहनो बसन अमोल, सितारे, सलमेवाले।
सस्ती, महँगी वस्तु देश में है सब होती ;
धेली की या एक मोहर की पहनो धोती।

(३८)

कपड़े भारतवर्ष के गए बहुत परदेश ;
तब समान उनके वहाँ बनने लगे अशेष।

बनने लगे अशेष देखने में भड़कीले;
सस्ते अरु कमज़ोर नगर सुंदर, चमकीले।
खपने लगे तमाम वही सब चिकने-चुपड़े;
हैं यहाँ की ही नक़ल सक़ल परदेशी कपड़े।

(३६)

मारा है दारिद्र्य का भरतखंड आधीन;
कारीगर बिन जीविका हैं दुःखित अति दीन।
हैं दुःखित अति दीन वस्त्र के बुननेवाले;
धीरे-धीरे हुनर समय के हुआ हवाले।
भरा देश में हाय निकम्मा कपड़ा सारा;
तुमने ही कोरियों, जुलाहों को बस मारा।

(४०)

बाक़ी है जो कुछ हुनर है वह भी म्रियमान;
जीवदान कर्तव्य है हे भारत-संतान!
हे भारत-संतान! दया करके दवा लेना;
है बेबस बीमार दवा वाजिब है देना।
नहीं देर की जगह ज़ियादा है नाचाक़ी;
करो रहन की नज़र जान अब भी है बाक़ी।

(४१)

लत्ता, गूदड़ जगत का जीर्ण और अपवित्र;
उससे भी हो धन खड़ा, है व्यापार विचित्र।
है व्यापार विचित्र उसे धो कूँथ सौंथकर;
सूत कात बुन थान, मढ़ें मूढ़ों के सर पर।
खोया सब, हाँ रही, बुद्धि इतनी अलबत्ता;
देकर चाँदी खरी मोल लेते हो लत्ता।

(४२)

दे चाँदी लो चीथड़े, है अद्भुत व्यवहार ;
भारतवासीगण ! कहाँ सीखे तुम व्यापार ?
सीखे तुम व्यापार कहाँ यह सत्यानासी ;
जिससे तुमको मिली आज निर्द्धनता ख़ासी ।
गलै पसीना लगे मित्र यह वही बसन है ;
पूरे धनिए बने द्रव्य गूदड़ पर दै-दै ।

(४३)

दौड़ी भारत से सुमति जा छाई परदेश ;
उसके रुचिर प्रकाश का याँ तक हुआ प्रवेश ।
याँ तक हुआ प्रवेश गई कुछ नींद हमारी ;
मचा स्वदेशी शोर सुजन-मुदकारी भारी ।
पर हीरे की डींग बुरी है पाकर कौड़ी ;
मसल न होवै कहीं वही "काता लै दौड़ी" ।

(४४)

चूड़ी चमकीली विशद परदेशीय विचार ;
वनिताओं ने त्याग दी किया बड़ा उपकार ।
किया बड़ा उपकार यदपि हैं अबला नारी ;
अब देखें कुछ पुरुषवर्ग करतूत तुम्हारी ।
सुनो ! तुम्हारी अगर प्रतिज्ञा रही अधूरी ;
यही कहेंगे लोग "पहनकर बैठो चूड़ी" ।

(४५)

चीनी ऊपर चमचमी भीतर अति अपवित्र ;
करते हो व्यवहार तुम, है यह बात विचित्र ।
है यह बात विचित्र, अरे, निज धर्म बचाओ ;
चौपायों का रुधिर, अस्थि अब अधिक न खाओ ।

है यह पक्की बात बड़ों की छानी-बीनी;
करो भूल स्वीकार, करो मत नुक़्ताचीनी।

(४६)

मिट्टी, पत्थर, रेणुका, रेहू, सींक, पयाल;
हैं चीज़ें सब काम की पत्र, फूल, फल, छाल।
पत्र, फूल, फल, छाल, जटा, जड़, घास विहंगम;
सीपी, हड्डी, सींग, बाल, रद, कोसा, रेशम।
है जितनी यहाँ उपज जवाहर हो या गिट्टी;
है सब धन का मूल बुद्धि जो होय न मिट्टी।

(४७)

छाता, काग़ज़, निब, नमक, काँच, काठ की चीज़;
चुरट, खिलौना, ब्रश, नसी, मोज़े, बूट, कमीज़।
मोज़े, बूट, कमीज़, बटन, टोपियाँ, पियाले;
बरतन, ज़ेवर, घड़ी, छड़ी, तसवीरें, ताले।
करो स्वदेशी ग्रहण नहीं तो तोड़ो नाता;
नीची गर्दन करो तानकर चलो न छाता।

(४८)

दियासलाई, ऐनकें, बाजे, मोटरकार;
बाइसिकिलें, करगे, दवा, रेल, तार, हथियार।
रेल, तार, हथियार विविध बिजली के आले;
धूमपोत, हल, पंप, अमित औज़ार, मसाले।
बनें यहाँ और खपें, नहीं तो सुन लो भाई;
देशीपन को अभी लगा दो दियासलाई।

(४९)

कल है बल उद्योग का कल उन्नति की मूल;
कल की महिमा भूलना है अति भारी भूल।

है अति भारी भूल अगर कोरी कलकल है ;
दूरदर्शिता नहीं इसी में सारा बल है।
कल से सकल विदेश सबल, निष्कल निर्बल है ;
भरतखंड! कल बिना तुझे, हा, कैसे कल है *?

(२०)

जागो-जागो बंधुगण आलस सकल विहाय ;
देशहित अर्पण करौ मन, वाणी अरु काय।
मन, वाणी अरु काय देश-सेवा को जानो ;
जीवन, धन, यश मान_उसी के हित सब मानो।
वीरजनो! अब खेत छोड़ मत पीछे भागो ;
सोतों को दो चेत करो ध्वनि "जागो, जागो"।

(२१)

शिक्षा ऊँचे वर्ग की पावें ह्याँ के लोग ;
तभी यहाँ से दूर हो अँधकार का रोग।
अंधकार का रोग करै ह्याँ से मुँह काला ;
तभी, करै जय पूर्ण-कला-दिनकर उजियाला।
बिना कला के तुम्हें मिले नहिं माँगे भिक्षा ;
कहा इसी से करो वेग संपादन शिक्षा।

(२२)

वंदे-वंदे मातरम् सदा पूर्ण विनयेन ;
श्रीदेवी परिवंदिता, या निज-पुत्र-जनेन।
या निज-पुत्र-जनेन पूजिता मान्याऽनूपा ;
या धृत-भारतवर्ष देश-वसुमती-स्वरूपा।
तामहमुत्साहेन शुभे समये स्वच्छंदे ;
वंदे जनहितकरी मातरम् वंदे-वंदे।

---

* 'पूर्णजी' महात्मा गांधी के 'Music of the spinning wheel' अर्थात् चर्ख के संगीत के पक्ष में नहीं जान पड़ते।

हिंदू-विश्वविद्यालय*
डेप्यूटेशन का स्वागत

(१)

स्वागत श्रीयुत देशभक्त अभ्यागत प्यारे ;
स्वागत स्वार्थ विहाय धर्म के सेवनहारे ।
स्वागत-स्वागत मातृभूमि के योग्य पुत्रवर ;
स्वागत-स्वागत आर्यवंश-अवतंश सु हितकर ।
सब पुरवासी स्वागत करें सहित प्रेम की भावना ;
श्रीविश्वनाथ 'पूरन' करें आगत जन की कामना ।

(२)

काशी पावन भूमि ग्रंथ बहु महिमा गावैं ;
अविनाशी सुखधाम जिसे नहिं प्रलय मिटावै ।
तप, विद्या, विज्ञान, नीति, गुण आप जी के ;
रहे जगत विख्यात सदा काशी नगरी के ।
है सज्जन, विद्वज्जन सहित आज धन्य काशी-सिटी ;
है धन्य भाग जो ह्याँ बनै हिंदू-यूनीवर्सिटी ।

(३)

शुद्ध धर्म का ज्ञान लोप सब विद्या बिन है ;
विहित कर्म का ध्यान लोप सब विद्या बिन है ।
विद्या बिन हीनता देश की जाय न लेखी ;
भारत की अब अधिक दीनता जाय न देखी ।
है दशा शोक की सर्वथा हा रमेश, विद्या बिना ;
गति भई देश की अन्यथा हा महेश, विद्या बिना ।

* कानपुर में जब श्रीमान् मालवीयजी हिंदू-विश्वविद्यालय का डेप्यूटेशन लेकर गए थे उस समय 'पूर्ण'जी ने यह कविता पढ़ी थी। पहले छप्पय से कानपुर-बालिका-विद्यालय की बालिकाओं ने संगीत-द्वारा डेप्यूटेशन का स्वागत किया था।

(४)

योरप का है मान मित्रजन विद्या ही से;
है समर्थ जापान बंधुगन विद्या ही से।
अमेरिका के प्रांत बड़े हैं विद्या ही से;
दुनिया के सब देश बड़े हैं विद्या ही से।
प्रिय भारत के उद्धार की उदित हुई जो भावना;
तो बिन विद्या समझो नहीं उन्नति की संभावना।

(५)

विद्या ही साहित्य-शास्त्र का बोध करावै;
विद्या वैद्यक, शिल्प, कला उद्योग सिखावै।
विद्या खेती, खनिज, बनिज, व्यापार बतावै;
विद्या ईश्वर और जीव का संग मिलावै।
विद्या बिन धन, बल, मान का रहै निरंतर शोक है;
विद्या बिन हिंदू-जाति का लोक है न परलोक है।

(६)

"है अंग्रेज़ी राज नहीं अब औरँगज़ेबी";
सुनौ करैं उपदेश देश की वसुधा देवी।
अवसर है अनुकूल किए जो कुछ बनि आवै;
आरत भारत पुनः पुरानी महिमा पावै।
बस एकौ साधे सब सधै यही चतुर का काम है;
है एक पदारथ इष्ट जो विद्या उसका नाम है।

(७)

देश काल की दशा देखके कारज कीजै;
प्रथम समझिए रोग दवाई पीछे दीजै।
खेती, कारीगरी, बनिज की नई प्रणाली;
शिक्षा द्वारा ग्रहण किए होंगे सुखशाली।

इसलिये चेतिए अन्यथा सड़ी-गली अपनी प्रथा ;
धन कभी खींचने की नहीं बंधुवर्ग हठ है वृथा।

(८)

देशों की घुड़दौड़ कहो या कहौ कबड्डी ;
रहे मीर तुम सदा किंतु अब हुए फसड्डी।
नहीं अभी कुछ गया बढ़ाओ अब भी साहस ;
लो बढ़कर मैदान पास आवे मत आलस।
निज तन, मन, धन अर्पण करौ बस फिर बेड़ा पार है ;
उद्योग तुम्हारे हाथ हैं फल-दाता कर्तार है।

(९)

यदि भूलैं परलोक नरक के भागी होवैं ;
जो भूलैं यह लोक दुःख में जीवन खोवैं।
चतुर वही जो यहाँ ध्यान दोनों का रक्खैं ;
मुक्ति यहाँ हाँ मुक्ति स्वाद दोनों का चक्खैं।
इसलिये निवेदन आपसे मेरा बारंबार है ;
बिन हिंदू-यूनीवर्सिटी नहिं संभव उद्धार है।

(१०)

बालक संस्कृत पढ़ैं और अंग्रेज़ी भाषा ;
सीखैं शिल्प, कलादि सभी विद्या की शाखा।
कारीगर, खेतिहारि चतुर सौदागर बन के ;
हों धन-बल-संपन्न मनोरथ ये हैं मन के।
प्रत्येक पक्ष से हो चुका पूरा सोच-विचार है ;
बिन कॉलिज सात प्रकार के नहिं संभव उद्धार है।

(११)

नई नहीं कुछ बात विश्वविद्यालयवाली ;
इसी देश में रही यही प्राचीन प्रणाली।

दस सहस्र एकत्र निवासी हों विद्यार्थी;
करते थे अध्ययन आश्रमों में परमार्थी।
जो उनके भोजन, वसन का मुनिवर लेते भार थे;
'शौनक' 'वशिष्ठ' इत्यादि वे 'कुलपति' परम उदार थे।

(१२)

अन्नदान के लिये वहीं-भर को सुख होवै;
विद्यादान अखंड काल को तृष्णा खोवै।
है ईश्वर का नियम उचित फल मिलै किए का;
फल है परमानंद सुविद्या-दान दिए का।
है देश, काल अरु पात्र सब परम शुद्ध बस लीजिए;
निज लोक और परलोक हित श्रद्धा से धन दीजिए।

(१३)

यह महत्त्व का कार्य नहीं कुछ ऐसा-वैसा;
फल पावेगा चार इसे जो देगा पैसा।
हैं कोटियों सपूत भूमिमाता के जाए;
ऊँचा देने-हेतु हाथ दाहिना उठाए।
है जहाँ कमाई पुण्य की है इसका साझा वहीं;
यह ईश्वर-प्रेरित कार्य है अब रुकनेवाला नहीं।

(१४)

"हो सुधर्म की हानि जभी जब हे प्रिय भारत;
बढ़े अधर्म महान् भक्त सज्जन हों आरत।
साधु-सुरक्षण-हेतु धर्म-संस्थापन के हित;
लेता हूँ अवतार" वचन ये हरि-मुख-प्रकटित।
इसलिये देखकर निज प्रथा मग्न महादुख-कूप में;
अवतार धरेगा 'विश्व-पति' विद्यालय के रूप में।

(१५)

मत समझो यह काम किसी डेप्यूटेशन का ;
है यह अपना काम और प्यारी नेशन का।
हो यदि कुछ भी गर्व ओल्ड सिविलाइज़ेशन* का ;
सुना दीजिए बड़ा हिंदसा डोनेशन † का।
क्या अधिक और इससे कहूँ मरना-जीना व्यर्थ है ;
वह जीता है जो जाति का सेवक हुआ समर्थ है।

(१६)

एक वर्ण के अंग ! चतुर्वर्णीय महज्जन ;
कैसे-कैसे हुए बंधुगण ! तुममें सज्जन।
बलि, दधीच, हरिचंद, राम, हरि, करण, युधिष्ठिर ;
किए दान धन, प्राण नाम कर गए चिरस्थिर।
उन पुरुषों की धर्मज्ञता शुद्ध हृदय में लाइए ;
रखिए मर्यादा जाति की 'पूर्ण' पुण्य यश पाइए।

नए सन् का स्वागत ‡

[भारतवर्ष की ओर से सन् १९१० ई० का स्वागत]

(१)

स्वागत नूतन वर्ष ! समय-द्रुम की नव शाखा !
स्वागत वर्ष नवीन ! जगतजन की अभिलाषा !
स्वागत दर्शनीय-योग्य मान्य, नूतन अभ्यागत !
स्वागत प्यारे व्यक्ति ! अनोखे स्वागत ! स्वागत !

(२)

स्वागत शतत्रय साठ पंच दिन गौरव गर्वित !
पंचाशत-युत-युग्म-भव्य-सप्ताह सुगर्भित× !

---

* प्राचीन सभ्यता। † चंदा। ‡ 'सरस्वती' से। ×एक साल में ३६५ दिन और ५२ सप्ताह होते हैं।

स्वागत द्वादश मास छटा से आनेवाले !
स्वागत षटऋतुमयी महाछवि लानेवाले !

(३)

स्वागत उत्तर-कालसिंधु के बिंदु अदर्शित !
स्वागत अलख, विशाल गणित के अंक अनंकित !
स्वागत परम भविष्य-चंद्र की कला शोभना !
स्वागत अश्रुत महाराग की एक मूर्च्छना !

(४)

कहना भारतवर्ष देश उत्कर्ष वर्षवर !
चले आइए तात ! रुचिर अनुकूल रूपधर !
ईसाई सन्-राज ! साधु का करके बाना ;
ईसा-यश के हेतु शांति दीजे विधि नाना ।

(५)

है यह शिशिर-प्रवेश चाहिए कृपा विशाला :
बरसाना दुर्भिक्ष-अनी पर पूरा पाला ।
किंचित ही है लगी देश-सेवा की गर्मी ;
तद्रक्षा हित उचित आपकी पूरी नर्मी ।

(६)

भो सन्-संत ! वसंत देश में ऐसा आवै ;
संपत वन में सदा कोकिला सुख की गावै ।
उद्यम-द्रुम-समुदाय मोदमय कुसुमित होवैं ;
दिव्य सफलता-सुमन देव-पद अर्पित होवैं ।

(७)

मिलै ग्रीष्म में शीत-सम्मिलन मलय-रास की ;
लसै परस्पर प्रीति-पीलिमा अमलतास की ।

ईश-भानु-कर-निकर भाव हिम-गिरि पर छावैं ;
द्रवित मनोरथ-बरफ देश-सिंचन को धावैं ।

(८)

पावस में उत्साह-मेघ बरसात मचावैं ;
हरी-भरी व्यापार-भूमि की कृषी बनावैं ।
देश-राग-हिंदोल बैठ सज्जन सुख पावैं ;
शुभ शिक्षा के मोर, पपीहे शब्द सुनावैं ।

(९)

शरत्चंद्रिका भरतखंड की कीर्ति सुहावै ;
परमहंस-गन-राजहंस-बन विचरन भावै ।
अमल-समय-सर हृदय-कमल-दल रहैं प्रफुल्लित ;
सोखै उग्र अगस्त पंक जो विघ्न उपस्थित ।

(१०)

मोदवंत हेमंत देश में ऐसा बाना ;
थर-थर काँपै देश-द्रोह का दल दीवाना ।
देशहितैषी धीर प्रथा के गर्म मसाले ;
सेवैं, ओढ़ैं नर्म स्वदेशी-प्रेम-दुशाले ।

(११)

नव कौंसिल-संवृद्धि-सिद्धि हो पूर्ण रूप से* ;
राजा-प्रजानुराग वृद्धि हो पूर्ण रूप से ।
विविध जाति समुदाय-प्रीति हो पूर्ण रूप से ;
शासन विधि में नीति-रीति हो पूर्ण रूप से ।

---

* सन् १९१० में मार्ले-मिंटो-सुधार से कौंसिल में हिंदुस्थानी सदस्यों की संख्या की वृद्धि हुई थी और वाइसराय की कार्यकारिणी-समिति में एक हिंदुस्थानी भी नियत हुआ था ।

(१२)

हैं ऐसे ही विपुल मनोरथ विपुल हमारे ;
है उनका साफल्य पूर्ण विधि हाथ तुम्हारे।
स्वागत में है विनय बिदा जब होय तुम्हारी ;
कहैं लोग सब "था उनीस सौ दस हितकारी।"

नवीन संवत्सर (संवत् १९६७) का स्वागत *

(१)

स्वस्ति महज्जन! स्वागत सज्जन! आशा-भाजन प्यारे!
नव संवत्सर! समयराज के वत्स रसाल दुलारे!
स्वागत आगामिनी भाविनी के प्रिय बालक बारे!
स्वागत! स्वागत स्वस्ति नवागत! आदर-योग्य हमारे!

(२)

स्वागत काल-विशाल-कोश के रत्नजाल चमकीले!
भूप विक्रमादित्य-सुयश के नित्य-रूप दरशीले!
प्रकृति-विकृति के अचिर-चित्रगत आविदित रंग रँगीले!
लुप्तसार संसार काव्य के गुप्त प्रसंग रसीले!

(३)

स्वस्ति अनंत समय-कुसुमाकर-अंतर्गत-नव क्यारी!
स्वागत सर्ग-महासागर की नव तरंग सुखकारी!
स्वागत मंजु भविष्य-महल के द्वार मनुज मनभावन!
अघटित घटनामय अभिनय के स्वागत दृश्य सुहावन!

(४)

माया ने जो कालदेश का 'ताना-बाना' ताना ;
बुना जगत्-पट अमित बने फिर बूटे नाना बाना।

---

* 'सरस्वती' से।

नाम-स्वरूप-क्रियात्मक वह सब पूर्ण-प्रियात्मक जाना;
तुमको भी इक वर्ष उसी में है उत्कर्ष दिखाना।

(५)

बंधु तुम्हारे 'दुर्मति'*जी ने मृगवाहन पै चढ़के;
सार्थक नाम किया दुर्मति ने ली छलाँग चढ़-चढ़के।
बम की बमचख रही मची ही 'शासन'-कोप बढ़ाया;
न्याय-धाम में भी हत्या का अत्याचार दिखाया।

(६)

अन्नहानि, ताऊन, कालरा, मलेरिया की पीड़ा;
करते ही सब रहे अभागी भरतखंड में क्रीड़ा।
जो उदार सरकार सुलक्षण रक्षणशील न होती;
भारत-धरनी सिर धुन-धुनकर आरत धुन से रोती।

(७)

'दुर्मति' ने प्राचीन चीन में रंग जमाया खासा;
चीनी चाट लगी, तिब्बत में अजब लगाया 'लासा'।
लामागुरु पै वार कराया, हिंद-शरण में लाया;
है संदेह समाया, देखें होनहार क्या आया।

(८)

चलते-चलते 'पुच्छलतारा' 'दुर्मति' ने दिखलाया;
झाड़ू लिए पड़ा है पीछे गुल ये नया खिलाया।
गत संवत् का कूड़ा सब ये बढ़नी झाड़ बहावे;
तब तू अपनी अमल दुंदुभी विमल बजाता आवै।

(९)

'मृगवाहन'† ने मृगवाहन की कुछ सौम्यता दिखाई;
मार्ले-मिंटो-कृत रिफ़ार्म की सुखद चाँदनी छाई।

---

* संवत् १९६६ का नाम। † संवत् १९६७ का नाम।

गत चुनाव में दया-भाव से किया बड़ा आश्वासन ;
जो अनाथ भारत का रक्खा उसी हाथ में शासन।

(१०)

प्रजा-प्रमोद-प्रयत्न-पताका निर्बाधा फहरानी ;
पुर प्रयाग में श्रीह्वीवट ने शुभ प्रदर्शिनी ठानी।
शासन की सुन रोग-विनाशन अनुशासन की बानी ;
होता है आश्वासन जी को सुख की समझ निशानी।

(११)

गिरे पुराने पीले पत्ते, निकली प्यारी कोपल ;
हुए दृगों से दूर कड़े दल, लगे सुहाने कोमल।
शोभाशाली है हरियाली सुमन-वेलियाँ फूलीं ;
अस्थिर जान अवस्था जग की चिंताएँ कुछ भूलीं।

(१२)

चलती नहीं सुगंधि समीरन मृदु ऋतु के हरकाले ;
चले चतुर्दिश मित्र तुम्हारे आगम की चर्चा ले।
फूली सरसों नहीं महीतल पीत-पाँवड़े डाले ;
नहीं रँगीले फूल-पताके नाना रंग सँभाले।

(१३)

नहीं भ्रमर गुंजार, करें झनकार वीत के झाले ;
पिक की नहीं पुकार, वचन हैं रोचक स्वागतवाले।
नहीं कमलदल-कलित ताल पै ललित भृंग मतवाले ;
फूलदार पट पै 'अभिनंदन' लेख सुनहले काले।

(१४)

हिंद-देश को सखा सनातन श्रीवसंत सुखनेमी ;
जान मित्र सुख हाथ तुम्हारे हुआ तुम्हारा प्रेमी।

सजे उसी ने साज सकल ये, हे अपूर्व अभ्यागत;
आओ शुभ संवत् प्रसन्नमुख स्वागत! स्वागत! स्वागत!

(१५)

विमल सत्त्वगुणमयी चैत में चारु चंद्रिका छाना;
प्रभु-अनुराग-पलास-प्रभा से कलि-कालिमा मिटाना।
त्रिगुण बोध की त्रिविध पवन से ताप चित्त की हरना;
जान प्रपन्न कृषीवल-गृह संपन्न अन्न से करना।

(१६)

माधव में श्रीकृष्णचंद्र के वचन समझ अनुरागी;
धर्म, भोग अरु कर्म-योग के जानें मर्म सुभागी।
मलिनहृदय वैशाखनंदनों को घूरे दिखलाना;
देशप्रताप-दिनेश सुभग का दिन दिन-तेज बढ़ाना।

(१७)

ज्येष्ठ मध्य विपरीत पवन जब तन की तपन बढ़ावै;
फौवारे तू शांति-सलिल के शीतल, सुखद छुड़ावै।
अमलतास की पीली-पीली सरस प्रभा दरसावै;
गर्मी में भी भरतखंड पै रंग बसंती छावै।

(१८)

जब आवै आषाढ़, आस की घनी घटाएँ लाना;
दबे हुए दुर्भिक्ष बीज को बिजली से झुलसाना।
दुर्मतिमय विद्रोहदलों को गरज-गरज डरवाना;
पावस-सुख-विज्ञप्ति 'दुंदुभी' श्रद्धाजनक बजाना।

(१९)

बगुले देशभक्त सावन में जभी वृथा झख मारैं;
लोग समझ पाखंड सफ़ेदी पर न चित्त को वारैं।

सद्गुपदेश के मोद, पपीहे पूरा आदर पावैं ;
सत्य परिश्रम-प्रेम वृष्टि से प्रजा, भूप सुख पावैं ।

(२०)

भादों में 'अति दुःख' कंस के जीवन-खंडनकारी ;
'परमानंद' कृष्ण जग जनमें सकल अमंगलहारी ।
संयम जमुना तीर मंजु सत्संग-कुंज मन भावै ;
ज्ञान-प्रसंग मधुर बंसी धुनि सुन-सुन श्रुति सुख पावै ।

(२१)

क्वार करावै राजभक्त-वर-राजहंसगण-दर्शन ;
अभिलाषा के खिलें कमलवन हो मन-मधुप-प्रहर्षण ।
भीष्मपितामह आदि पूर्वजों का हो सम्यक् तर्पण ;
हो उनका अनुकरण धर्महित हों धन, जीवन अर्पण ।

(२२)

कातिक में हो लक्ष्मी-पूजन भारत-उन्नतिशाली ;
दीपावली सुमतिभावाली जगै, सजै दीवाली ।
उठे जुआ, चोरी दुनिया से कुटिल नीतिवालों की ;
होती हार रहै तीसों दिन कपट प्रीतिवालों की ।

(२३)

मार्गशीर्ष में निर्धन जन पर करुणा पूरी करना ;
विपुल वस्त्रसंपन्न उन्हें कर भीति शीत की हरना ।
भरतखंड-दुर्दैव-कोप को करना ऐसा शीतल ;
हो न कभी संतप्त यहाँ की संत-प्रशंस्य महीतल ।

(२४)

पूस मास में देश-हितैषी ऐसी धूम मचावैं ;
क्रिसमस क सप्ताह विदित में परमोत्साह दिखावैं ।

पोलिटिकल, धार्मिक, औद्योगिक, नैतिक विविध सभाएँ ;
रचें महावार्षिक अधिवेशन पूर्ण सफलता पाएँ।

(२५)

माघ मास में सुजनभाव के सुमन सुमंजुल फूलें ;
चंचल चित्त-हिंडोल मनोहर मूर्ति श्यामवर फूलैं।
वेदधारिणी सरस्वती की पूजा जग को भावै ;
सत्य, सनातन, सत्कृत विद्या सदा समुन्नति पावै।

(२६)

फाल्गुन में नरसिंह-भक्त का गुण सच्चा रँग लावै ;
हरिजन-त्रासक के कुनाम पर दुनिया धूल उड़ावै।
भीड़ें रँगे हुए स्यारों की फूहड़ शोर न छावैं ;
'पूरन' देश रंग में भीगे जग की छटा बढ़ावैं।

(२७)

आओ प्यारे मित्र 'दुंदुभी!' सहित प्रेम तुम आओ ;
हर्ष दुंदुभी बजे वर्ष-भर, सहित क्षेम फिर जाओ।
इस उमंग से निज तुरंग पर लैर हिंद की कीजै ;
रंग-ढंग से मान्य महज्जन ! सज्जन वश कर लीजै।

(२८)

सत्कवियों का मान बढ़ाना * सद्भक्तों का आदर
देश-अहितकर अकवि-निकर को देना घोर अनादर।
सत्य, सुमति, संपत्ति, सौम्यता, सदुद्योग सुखकारी ;
मिलैं, पूर्णविधि प्रिय भारत को विनती यही हमारी।

---

* 'पूर्ण'जी सत्कवियों के लिये भी अवश्य प्रार्थना कर लेते हैं—
"देखिए" पावैं पूरी प्रतिष्ठा कविवर जग के शुद्ध साहित्य-ज्ञानी।"

प्रदर्शिनी स्वागत*

(१)

परमेश्वर को धन्य सिंधु जो करुणा का है;
दया-कृपा का धाम क्षमाधर जगत्पिता है।
'खेती' लोक-स्वरूप उसी से हरी-भरी है;
'कारीगरी' अपार उसी की झलक रही है।
है धन्य वही परमात्मा जो याँ तक लाया हमें;
यह उन्नति अरु उद्योग का शुभ दिन दिखलाया हमें।

(२)

अफ़सरान ज़ीशान! ज़मींदारान गिरामी;
पंडित विद्यावान! चतुर कारीगर नामी।
काश्तकार! तुज्जार! मुबारक सबका आना;
है इज़्ज़त का सबब! क़दम रंजा फ़र्माना।
हमदर्दी के इज़हार का, वाजिब मुबारकबाद है!
यकजहती के आसार का वाजिब मुबारकबाद है!

(३)

भरतखंड का हाल ज़रा देखो है कैसा;
भारत का अंजाम ज़रा देखो है कैसा।
ज़रा फूट की दशा खोलकर आँखें देखो;
ख़ुदग़रज़ी का नशा खोलकर आँखें देखो।

---

* चौबेपुर ज़िला कानपुर की प्रांतीय प्रदर्शिनी के अवसर पर ता० ७-१०-१६ को पूर्णजी ने बहैसियत चेयरमैन स्वागतकारिणी समिति यह कविता पढ़ी थी। इसमें उर्दू का अधिक मिश्रण इसलिये किया गया है, जिससे सब लोग—अफ़सर, हिंदू और मुसलमान—समझ सकें। यह कविता 'सरस्वती' में भी छप चुकी है।

है शेख़ी दौलत की कहीं, बल का कहीं गुमान है ;
है ख़ानदान का मद कहीं, कहीं नाम का ध्यान है !

(४)

अवगुण ये ही हुए सबब इस बरबादी के ;
हुए बाहमी रंज सबब इस नाशादी के।
दिल में जब कर लिया ग़रज़मंदी ने डेरा ;
नज़र न आया मुल्क निगह में बसा अँधेरा।
जो आप भले तो जग भला, नहीं ग़ैर की चाह है ;
बस इसीलिये, ऐ भाइयो, भारतवर्ष तबाह है।

(५)

फिरते हैं अशराफ़ गली में मारे-मारे ;
कहुँ अहल अख़्लाक़ हुए कँगले बेचारे।
थे अमीर पर आज बदन पर नहीं लँगोटी ;
मिडिल कर लिया पास, नहीं पर मिलती रोटी।
जब सनअत, हिरफ़त खो गई, रोज़गार उनका हुआ ;
ख़ुद कहो तुम्हीं इंसाफ़ से, यह न होय तो होय क्या।

(६)

जो देखो वह हुआ नौकरी का मुतलाशी ;
जो है दौलतमंद उसे सूझी ऐयाशी।
चीज़ हुई दरकार वही झट मोल मँगा ली ;
कहाँ, किस तरह बनी, न की कुछ देखाभाली।
यों दस्तकारियाँ उठ गईं ; रोज़गार ग़ायब हुआ ;
ख़ुद कहो तुम्हीं इंसाफ़ से यह न होय तो होय क्या।

(७)

फैला ख़ूब निफ़ाक़, दोष किसको दें कहिए ?
बिगड़ गया अख़लाक़, दोष किसको दें कहिए ?

यही अगर मुफ़लिसी, दोष किसको दें कहिए ?
है अजीब बेकसी, दोष किसको दें कहिए ?
क्या समझोगे तुम दोष सब अपने ही किरदार का ?
या है सब दोष नसीब का, या अपनी सरकार का ?

(८)

नहीं-नहीं, मत कहो नसीबा बुरा बिरादर ;
खोते हो खुद दूध गाय चलनी में दुहकर ।
अगर न होती गाय, बुरी क़िस्मत बतलाते ;
छिन जाता गर दूध, राज को दोष लगाते ।
कुछ नहीं दोष सरकार का, बुरी नहीं तक़दीर है ;
ऐ यार ! फ़क़त तदबीर की यह सारी तक़सीर है ।

(९)

जिसने भारतभूमि तुम्हारे लिये बनाई ;
कामधेनु की तरह प्रजागण को सुखदाई ।
उस ईश्वर को मित्र, न तुम इस तरह भुलाओ ;
होकर शुक्रगुज़ार प्रेम से सीस झुकाओ ।
है उसने सब कुछ दिया, जो इसमें कुछ सार है
तो प्यारे भारतवर्ष का समझो बेड़ा पार है ।

(१०)

सड़कें, नहरें, तार, शफ़ाख़ाने अरु थाने ;
रेल, अदालत, मिले मदरसे भी मनमाने ।
उस पर भी है धर्म, तिजारत की आज़ादी ;
है दिल से मंजूर रिआया की दिलशादी ।
यह कई तरह तैयार है भारत के उद्धार को ;
फिर करते हैं बदनाम हम किस मुँह से सरकार को ।

(११)

तुहमत देना बुरा किसी को बिला ज़रूरत
खुद कोशिश कुछ करो मिटा वाहमी कुदूरत।
परमेश्वर का काम, जाँच देखा, दुरुस्त है;
सरकारी भी काम नियम से खूब चुस्त है।
हम भी जो काम अपना करें भारत का उद्धार हो;
यह शायद 'हा-हा'कार हो जग में 'जय-जय'कार हो।

(१२)

नहीं हमें कुछ द्वेष बाहरी सौदागर से;
सरोकार है हमें ज़रूरी अपने घर से।
घर का है जो माल उसे कुछ देखें-भालें;
दूरंदेशी करें, देश की दशा सँभालें।
जो दस्तकारियाँ मुल्क की उन्हें न मरने दीजिए;
यह जाँबखूशी का जस बड़ा, उन्हें जिलाकर लीजिए।

(१३)

जो हों अच्छी कलें, काम की करनेवाली;
अख़्तियार कर उन्हें देश की करो बहाली।
अच्छी कारीगरी जौन आला क़िस्मों की;
वह सब हासिल करो, हौसले से मुल्कों की।
अपनों को भेजो सीखने जर्मनि इँगालिस्तान से;
ढँग सनअत अरु व्यापार के, अमेरिका, जापान से।

(१४)

कौन-कौन-सी चीज़, कहाँ होती है, कैसी:
हो सकती है यहाँ तिजारत उससे जैसी।
सो सब सोच-विचार लाभ का ढंग निकालो;
जो देशी व्यापार, बिना तुम उसकी डालो।

इस ढँग से ही हिंदोस्ताँ होगा मालामाल यह;
और दौलत से व्यापार की होगा मुल्क निहाल यह।

(१५)

है ऐसी मज़बूत दिलों में हवस समाई;
जिसको देखा बना नौकरी का सौदाई।
अगर किसी ने अक़्ल तिजारत में कुछ छाँटी;
वही पकड़ ली राह, पुरानी, पीटी-पाटी।
अब कल की पद्धति छोड़कर देखो दुनिया आज की;
सब जगह काम देतीं नहीं बातें बाबा-राज की।

(१६)

रेशम, रेहू, लाख, गोंद, सन, गूदड़, गिट्टी,
बहुत तरह की घास, लकड़ियाँ, कंकड़, मिट्टी,
अजब-अजब फल, फूल, छाल, जड़, बूटी, ग़ल्ले,
धातें, नील, कपास, आदि हैं जिसके पल्ले,
यह देश कहो व्यापार कर क्या-क्या कर सकता नहीं?
यह कभी दूसरे मुल्क की पर्वा कर सकता नहीं।

(१७)

जो आवें याँ चीज़, कहीं से, खपने क़ाबिल;
ऐसी कोशिश करो उसी की बनें मुक़ाबिल।
जो न एक से बने करो कंपनियाँ क़ायम,
जिससे होता रहे फ़ायदा उनसे दायम।
जो बात कठिन है एक से वह सौ से आसान हो,
ऐ भाई! समझो तो सही इत्तिफ़ाक़ की शान को।

(१८)

खेती का भी ढंग हिंद में जो है जारी,
उससे खुलती नहीं ज़मीं की ताक़त सारी।

हल बक्खर की साख़्त, जोतना, बीजा बोना,
खाद कहाँ के लिये चाहिए कैसी होना।
इन बातों में जब आपकी मश्क़ खूब चढ़ जायगी,
तब कईगुनी हर जिंस की पैदायश बढ़ जायगी।

(१९)

इसे नुमायश कहो, कहो या इसे प्रदर्शन,
मगर न समझो इसे फ़क़त चीज़ों का दर्शन।
मेला है यह नहीं, नहीं यह बुढ़वा-मंगल,
नहीं बहरे तफ़रीह कोई कुश्ती या दंगल।
मुल्क-तरक़्क़ी के लिये रचा गया है साज सब,
तुम मुल्की ख़िदमत के लिये करो प्रतिज्ञा आज सब।

(२०)

है धीरों का काम देश की सेवा करना,
है वीरों का काम क़दम को आगे धरना;
देशोन्नति का काम नहीं दस-बारा दिन का,
यह है उनका काम मक़ूला है यह जिनका,
"करके प्रण अच्छे काम का मुँह को मोड़ेंगे नहीं,
हम कामयाब जब तक न हों, कोशिश छोड़ेंगे नहीं।"

ग़ज़ल—देशभक्ति

(१)

कभी हिंद में भी कमाल था तुम्हें याद हो कि न याद हो;
यहीं आप अपनी मिसाल था तुम्हें याद हो कि न याद हो।
कला विद्या नीति में, पेशों में ये समस्त भूमि के देशों में।
मानौं चक्रवर्ती भुवाल था। तुम्हें०।
भरा पूर्ण कर्म में धर्म था, खुला सब पै धर्म का मर्म था;
सदा आतमा का ख़याल था। तुम्हें०।
यती विप्र धन थे न जोड़ते, सदा रहते तृष्णा को तोड़ते;

उन्हें प्यारा तप ही कमाल था। तुम्हें०।

नहीं क्षत्रिय भोग का कीड़ा था, लिए वीरता का वो बीड़ा था;

सभी आफ़तों में वो ढाल था। तुम्हें०।

नहीं जाति वैश्यों की सूम थी, दया दान धर्म की धूम थी;

कोई काम रुकना मुहाल था। तुम्हें०।

नहीं शूद्र सेवा से हटता था, समय उसका चैन से कटता था;

वो सोसाइटी पै निहाल था। तुम्हें०।

ये थे एक तन में ही सब बरन, मानौ सीस बाहु उरू चरन;

कोई फूट का न मलाल था। तुम्हें०।

यहाँ वहँ होती थीं प्रेम से, घनी वर्षा होती थी नेम से;

नहीं पड़ता ऐसे अकाल था। तुम्हें०।

वो विधान भारी थे योग के, नहीं जमते पैर थे रोग के;

नहीं आता ख़ौफ़ से काल था। तुम्हें०।

सभी सत्य से भरे बैन थे, खुले स्वच्छ ज्ञान के नैन थे;

उन्हें आईना-सा त्रिकाल था। तुम्हें०।

हुए हाँ तपस्वी वो तेजसी कि प्रभा थी सूरज-चंद-सी;

जो मुखों पै उनके जलाल था। तुम्हें०।

किया खोज ब्रह्म का माया में, लिया जान भानु को छाया में;

वो जो काटा जीव का जाल था। तुम्हें०।

वो थी ब्रह्मचर्य की भावना, था शरीर पुष्ट सुहावना;

बना मुखड़ा लाल गुलाल था। तुम्हें०।

वो कुलांगनाओं की वीरता, सुपतिव्रताओं की धीरता;

वो जो देवियों का जमाल था। तुम्हें०।

(२)

न अनाथ ऐसी ये गाय थी, नहीं दिल में हिंद के हाय थी।

वली उसका नंद का लाल था। तुम्हें०।

वो जिगर थी हिंदू की जान थी, बड़े देवता के समान थी;
प्रिय वंश उसका विशाल था। तुम्हें०।
हरी घास वन में वो चरती थी, नदी दूध की बहा करती थी।
नहीं घी का ऐसा ज़वाल था। तुम्हें०।
वो तवांगरी वो बहादुरी, वो दिमाग़ो चेहरे की रोशनी।
वो गऊ के थन का ही माल था। तुम्हें०।
थी जो उपनिषद् की फ़िलासफ़ी, वो प्रभाव की भरी शायरी।
उसी दूध का वो उबाल था। तुम्हें०।
अति सूक्ष्म तत्वों का छानना, वो अदेख लोकों का जानना।
उसी दूध का वो जलाल था। तुम्हें०।
न क़साइयों का बजार था, गऊ माता का तुम्हें प्यार था।
नहीं कटता उसका कपाल था। तुम्हें०।
तुम्हें उसका बेटा भी प्यारा था, कृपी को उसी का सहारा था।
बना फिरता बाल गोपाल था। तुम्हें०।
वो रँगीली अंग पै झूल थी, कहीं लगने पाती न धूल थी।
बिछा रहता नर्म पयाल था। तुम्हें०।
था महेशजी का-सा नादिया, क्या महत्त्व तुमने भुला दिया।
वो न होता ऐसे हलाल था। तुम्हें०।
गऊ जाति का किसी आन में, गली बाग़ वन में मकान में।
कहीं बाँका होता न बाल था। तुम्हें०।
मकराक्ष दुष्ट के सामने जभी देखा बछड़ों को राम ने।
नहीं मारा बानों का जाल था। तुम्हें०।
किया हमला सिंह ने गाय पर, दिया तन दिलीप ने हाय कर।
गऊ-प्रेम का यही हाल था। तुम्हें०।
तुम्हीं बेचते हो क़साई को, तुम्हीं क़त्ल करते हो माई को।
ये तो हिंदुओं का न हाल था। तुम्हें०।

ये कमाई माई के खूँ से तर न कभी फलेगी अरे बशर।
इसी से मिटा देशभाव था। तुम्हें०।
कभी हिंदू सामने आएँगे, उन्हें दुख ये 'पूर्ण' सुनाएँगे।
ये बहुत दिनों से सवाल था। तुम्हें०।

अद्भुत वर्णन

नवल नागरी सुनगरी

(१)

सुंदर-दरशन-दीपति दीसै दसहु दिसान;
मनहुँ मनहि मोहत सुमुखिन के मुख द्युतिमान।
छहरैं चँवरैं मनों मनोहर कुंतल भार।
बनी सुनगरी नवल नागरी सोभा-सार।

(२)

लसत सरासन बंक भुवन से सोभावान;
अनियारे नैनन से पैने देखे बान।
मंजु माँग-सी चंद्रहास दरसै अभिराम;
बनी सुनगरी नवल नागरी सुखमाधाम।

(३)

ग्रीवा से कल कंबु बाहु से मृदुल मृनाल;
अमल आँगुरिन सों अशोक के परन रसाल।
कनक कुंभ कमनीय समुन्नत उर के ठाम;
बनी सुनगरी नवल नागरी सोभाधाम।

(४)

सघन सुजंघन ऐसी कदली खंभन माहिं;
छवि है, रंभा-पात पीठ सम सुंदर आहिं।
रंग-रंग के रुचिर पताके चीर समानें;
बनी सुनगरी नवल नागरी सोभाखान।

(५)

छावैं छटा छबीले बहु संरसीखे फूल;
भासी सुंदरीन की हासी मनु छबि-मूल।
बीन बजनि मनरंजन मानौ मधुर सुबैन;
बनी सुनगरी नवल नागरी सुखमा-ऐन।

(६)

कुंजर-गति मतवारी प्यारी चाल सुमंद;
वर विलास पूरन पुरवासिन को आनंद।
आहा कैसी मनोरमा है छटा अपार;
बनी सुनगरी नवल नागरी सोभागार।

अलका-वर्णन *

(१)

तोमें दामिनी है चारु कामिनी विराजैं उतै,
तोमें सुर-चाप उत चित्र रंगवारे हैं;
मधुर गराज तोमें गायन के काज तहाँ,
सुंदर मृदंगन के शब्द होत प्यारे हैं।
तोमें जल जाल थल मनि के विसाल तहाँ,
तेरे सम तिनके शिखर तुंग भारे हैं;
अलकापुरी के दिव्य धामन में धाराधर,
एते साज तेरी तुल्यताई के निहारे हैं।

---

* 'अलका-वर्णन' मेघदूत के 'पूर्ण' कवि-कृत हिंदी-अनुवाद "धाराधर-धावन" से लिया गया है। अनुवाद होने पर भी इसमें मौलिकता टपकती है। मेघ को संबोधन करके विरही यक्ष अलकापुरी की शोभा वर्णन कर रहा है।

(२)

कर में कमल, कुंद कलिका अलकन मैं,
लोध को पराग ओप आनन बढ़ावै है;
कुरबक वेस केस पास माहिं भासमान,
कानन सिरीस को प्रसून चारु भावै है।
अंबुधर ! तेरो उपजायो त्यों कदंब वर,
छवि अवतंस माँग मध्य मैं सुहावै है;
सुमन सिंगार तहाँ नागरी नवेलिन को,
सदा खट ऋतु की बहार दरसावै है।

(३)

बारौ मास तामैं मंजु फूले-द्रुम-पुंजन मैं,
भृंगन के वृंदन को गुंजन सुहावै है;
साजे रहैं लालन की सुखमा सरोज जाल,
सोभा त्यों मरालन की माल सरसावै है।
पालतू कलापिन कलाप बाँको बानिक सों,
ग्रीवा को नचाय नाचि आनँद बढ़ावै है;
लेस अँधियारी को न होवै बेस जामिनी को,
'पूरन' प्रकास नीको चाँदनी को छावै है।

(४)

केवल अनंदधारे अँसुवा निहारे तहाँ,
दुख की निशानी कहुँ नेक न लखानी है;
ताप तहँ देखी बस पाँचसर आँचवारी,
जानी तासु औषध विलास सुखदानी है।
मान के सिवाय है वियोग को न जोग दूजो,
पूरन जो रीति प्रीति नीति की बखानी है;

बैस ना दिखानी ह्वाँ जवानी के सिवाय दूजी,
ऐसी मोदसानी अलका की राजधानी है।

(५)

चंद्रमनि-मंडित अमंद मंदिरन माहिं,
तारन के बिंब फूल भासत बिसाला हैं;
जैसी मंद-मंद घन! घनकैं तिहारी घनी,
तैसी तहाँ ठनकैं मृदंगन की आला हैं;
संग नवबामा लसैं रूप रस-धामा चारु,
सुख के सकल साज सोहत रसाला हैं;
'रतिफल' नामधारी रति परिनाम धारी,
कल्पवृक्ष हाला के पियत यच्छ प्याला हैं;

(६)

करि मनुहारी देवता हू जाहिं वारी, ऐसी
रूप-उजियारी छबिधारी सुकुमारी हैं;
धूप के समैं में सुर-द्रुमन-समूह-छाँह,
सुरसरि तीर सीर सेवती सुखारी हैं;
आवै जो समीर देवग्राम को परसि नीर,
ताके तन लागे मन पावैं मोद भारी हैं;
हेमवारी रज में मुठी सों करि मेल प्यारी,
खेल मनिखोजवारी खेलती कुमारी हैं;

(७)

तहाँ रसवंत कंत प्रेमबस आतुरी सों,
चातुरी सों नीबी छोरि अंबर छुटावै हैं;
तब नवजोबना सुरंग अधरानवारी,
प्यारी उजियारी में बिबस ह्वै लजावै हैं;

ताही में बिसाल मनि-दीपन बुझाइबे को ,
भोरी नवबाल यों उपाय ठहरावै हैं ;
ताकि-ताकि तिनपै चलावैं मूठ कुंकुम की ,
रतन प्रभाव को बुझाय पै न पावै हैं ;

(८)

तहाँ मौन भेदी पौन दूती की सहाय पाय ,
तोसे मेघ कैतिक अटान बीच रहि-रहि ;
चित्रन की अवली विचित्र अलबेली तिन्हें ,
रसमई बुंदन बिगारैं. मंद बहि-बहि ;
याही अपराध सों असेस पुनि कै अँदेस ,
करिकै कपट-भेस चातुरीन गहि-गहि ;
निसरि पराय जात राह सों झरोखन की ,
छिन्न-भिन्न ह्वैकै अरु धूम-रूप लहि-लहि ;

(९)

आधी राति बीते घन-पाँति जब दूर होति ,
छावत अमंद नभ-चंद उजियाला है ;
मैनरस बाढ़े गाढ़े पिय के अलिंगन सों ,
अंग-अंग सिथिल सुहाति प्रतिबाला है ;
चंद्रमनि-माला चारु उर में बिसाला वर ,
चाँदनी में द्रवत स्रवत बुंद-जाला है ;
हीतल सुखद मंजु सीतल बिसद सोई ,
तुरत निवारि देत सुरत-कसाला है ;

(१०)

निधि अभिराम धाम जिनके रहति पूरी ,
विविध विलास वर नित ही अधीन हैं ;

लोग अलका के रस पैन रस वैन गाते,
लीन्हें निज संग जो विबुध कंचनीन हैं;
सुभग अराम जौन चैतरथ नाम तामें,
प्रतिदिन करत प्रवेश सुख लीन हैं;
सँग-सँग ऊँचे मंजु माधुरे सुरन माहिं,
गावत कुबेर-जस किन्नर प्रवीन हैं;

(११)

लोल अलकावली ते छूटे जे गगन माहिं,
कल्पद्रुम सुमन अवनि सो सुहात हैं;
मंजु पल्लवन के परे हैं झरि खंभ रूरे,
कानन तें खसके कनक-जल-जात हैं;
माँगते झरे हैं मुकताहल विमल तैसे,
हीतल के हार त्यों महीतल लखात हैं;
रात अभिसारिका नवेलिन की मारग के,
प्रात के समै में चिह्न एते दरसात हैं;

(१२)

धनद भुवाल के सनेही चंद्रमालजू को,
प्रकट निवास रतिनाथ तहँ जानो है;
कुसुम-कमान मधुपावली प्रतिंचा जुक्त,
ताही तें न तानै हिय रहत सकानो है;
तदपि प्रवीन प्रमदान के सहारे सदा,
काम को सकल काम सफल लखानो है;
भृकुटी कमानन अचूक नैन बानन को,
हीय काम-बानन को बनत निसानो है;

(१३)

देत है बसन वर बरन बरनवारे,
सुरा देत नैनन विलास जो सिखावै है;

मंजुल सुमन देत पल्लव मृदुल देत,
भूखन विपुल को सुपास दरसावै है;
चारु पद कंजन को रंजन करन जोग,
लाख को सुरंग रंग चोखो सरसावै है;
एक हीं कलपतरु चारि हू प्रकारन के,
अबला सिंगारन के साज उपजावै है,

भयात्मक वन

विचरत बहु बनराज, वृक भालु व्याघ्र-समाज।
'भय'-राज्य रक्षण हेत, चौकी पहरुवा देत।
हुक्करहिं घोर उलूक, हू-हुव करैं जंबूक।
'भय'-राज-बंदीवृंद, मनु गावहीं जस-छंद।
विकराल असित विशाल, फुंकरहिं रेंगहिं व्याल।
'भय' की मनौ संतान, विहरै भयानक वान।
व्याप्यो विकट तम-जाल, वन बीच सघन कराल।
भय-कीर्ति कारी घोर * छाई मनौ चहुँ ओर।
दरसै दवानल-ज्वाल, मनु सजी दीपन-माल।
दै जंतु चोरन त्रास, भय करत देश-निकास।
चमगीदबहु द्रुम-डार, लटके अधोमुख झार।
'भय' नृपति देत प्रचंड, गुनहीन को मनु दंड।
जो रटहिं वायस 'काँव' कह गूँज झाईं 'खाँव'।
'भय' भूप की जनु हंक, छावै महान अतंक।
शुभ चतुष्पद न लखात, वर विहग रव न सुनात।
जिमि पापरत नृपराज, नहिं रमत संत-समाज।
रूखे भयानक रूख, लखि प्राण जावे सूख।

---

* कीर्ति उज्ज्वल होती है, परंतु जैसे सब सामान उलटे हैं वैसे ही भयराज की कीर्ति भी काली है।

मनु भय-प्रजा के गोल, डर सों सकैं नहिं डोल।
महि पड़े हाड़-पहाड़, त्यों रहे सब बहु झाड़।
मल-मूत्र-पूरित गाड़, रहि गंध नासा फाड़।
इक तो विपिन भयखानि, अति होति तापै ग्लानि।
'भय'-राज मनु मतिहीन, वीभत्स मंत्री कीन।

युद्ध-वर्णन

(१)

धावौ रे समर धीर गाजौ रे विकट वीर,
वैरिन को अंग चीर करहु पछार झार;
मारौ रे सघन तीर काटौ रे रिपुन भीर,
छेदौ रे शरीर हूल-हूल शूल धारदार।
डारौ रे सबन चीर नेक न विचारौ पीर,
औसर मिलै ना वीर बाजिबे को बार-बार;
शत्रु हिए हार-हार भागे शस्त्र डार-डार,
धाव-धाव मार-मार काट-काट फार-फार।

(२)

एकन तें एक बली तेजसी समर धीर,
वीर जब धावैं भरे साहस गुमान में;
तृन के समान निज प्रान बलवान लेखैं,
राखैं ना तनक ध्यान तनय तियान में।
रिपुन समूह सामने को होत बाँको समै,
तीन में तें एक जहाँ होनहार आन में;
भागैं ते कहावैं कूर जीतैं नाम पावैं सूर;
मरैं ते सिधारैं सुरपुर के विमान में।

(३)

वीर धावैं ललकार होय धौंसा की धुकार,
भिरैं भट्ट बार-बार नाचैं घोर घमासान;

कटैं मुंडन पै मुंड परैं रुंडन पै रुंड,
झरैं झुंडन पै झुंड भरैं बानन पै बान।
मचै बैरिन मँझार शोर जोर हाहाकार,
गिरैं घायल चिघार भागैं कायर लै प्रान ;
कहूँ धावे रण भूमि दै-दै कावे घूमि-घूमि,
मद वैरिन के गूम करूँ धूम बेप्रमान *।

आल्हा

लै-लै फ़ौज लड़ें का धाए उमहे बड़े-बड़े सरदार,
गरज-गरज के डंका बाजैं आए धरती धमक सिपाह ;
कौन वीर अब आगे आवैं पियो दूध जिन माता क्वार,
दानन पाटि काटि दल डारौं औरं देहुँ भालन कै मार।
धँस-धँस धमक बजावत धौंसा झंडा गाड़ देउँ मैदान;
बड़े घमंडी राजा मारौं अंड-बंड सब देउँ भुलाय,
कड़बड़-कड़बड़ घोड़े दौड़ैं तड़-तड़ भड़-भड़ बजैं निशान।
लप-लप झप-लप तेगा लपकैं सरसर-सरसर बरसैं बान,
धावैं लै-लै पटा बनेठी धर-धर धमक पछारैं ज्वान ;
सूरन के मन उमगन लागे कूरन के मुरझाने प्रान,
नदी बह गई तहँ लोहू की तिनमाँ भूत-परेत किल्हायँ,
ताल ठोंकके विक्रम गरजैं कायर भागैं पीठि दिखाय ;
जिनकी पीठ हाथ धर सीतल कीन्हों पच्छ सारदा माय,
तेई जीत लौटके आए तिन घर बाजत अनँद-बधाव।
नागड़-धिन्ना नागड़-धिन्ना नागड़-धिन्ना नागड़-धिन्ना।

राम-रावण-संग्राम

चढ़त रामदल लंक पर, डगमगि धरनि सुहात ;
जानि सुता सुख निकट जनु, मातु अंग उनगात।

---

* इस छंद को पढ़ने से युद्ध की ध्वनि प्रतिध्वनित होती है।

लंका के चहूँघा कोटि-कोटि में ठहरि सोई,
गुंबज कँगूरन अतंक सरसावत है;
बीथिन दुकानन में बागन मकानन में,
सगरे नगर में घनेरी धूम छावत है।
'पूरन' प्रसिद्ध राम-रावण के संगर में,
देखि धूरि जाल भूरि भाव ऐसो भावत है;
पच्छ लै सुता को राजधानी में दसानन के,
अवनी भवानी निज अमल जमावत है।

पातक सघन बन जारिबे को पावक से,
अघन मृगन को समान केहरी के हैं;
समता बिसमता को दीजे कहा एकै एक,
करत सहस खंड बज्र की अनी के हैं।
पर्सु भृगुनंदन को रुद्र को त्रिसूल तैसे,
प्रलय कृसानु जासु तेज आगे फीके हैं;
रावन समेत खल खंडन करनवारे,
पावन प्रचंड बान रामचंद्रजी के हैं।

'पूरन' बिधि करतार, जगपालक जो विष्णु वपु;
करत आज संहार, रुद्र रूप जनु धरि सोई।

रावन अपावन की पातकी प्रजा हैं जौन,
आठौ जाम नूतन ही पापन के हेत हैं;
जड़ हैं अधम हैं सुरापी निरजापी जोई,
क्रूर व्यभिचारी धर्मपथ ते अचेत हैं।
परम दयाल प्रभु पूरन छमा के सिंधु;
काज तिनहू के हरि करुना-निकेत हैं।
लंका के समर माहिं अमर नरेश देखौ;
मार असुरन को अमर-पद देत हैं।

लंका के समर में विलोकि गति द्रोहिन की ;
उपजत आज उर मेरे इमि भाव रे।
चाहस जो अंत में परम पद पाइबो ;
तो ध्यान हरि ही को चित्त 'पूरन' चढ़ाव रे।
जोग को न काज ना अजोग सों अकाज कछू ;
सुमिरन सार जानि करु मन चाव रे।
भक्त ह्वैके ध्याव रे अभक्त ह्वैके ध्याव चाहै ;
मित्र ह्वैके ध्याव चाहै शत्रु ह्वैके ध्याव रे।

राम-लखन बलधाम वर, लंका समर मँझार ;
भार उतारत भूमि को, खल मारे महि डार।

फन फटकार सेस बल कै सँभारैं धरा ;
सुंड फटकार वीर दिग्गज चिघारे हैं।
कच्छप विकल भो कोलाहल करत कोल ;
सिंधु-जल होत हिलकोरे तुंग भारे हैं।
चकित जकित जै-जै रटत सभीत सुर ;
राकस-समूह सोर हाहाकार पारे हैं।
जाही छन कोप-कोप ताक-ताक रावन को ;
रामचंद्रजू ने इकतीस बान मारे हैं।

संग्राम-निंदा

(१)

अरे ! तू अधम काल के मित्र ! जगत के शत्रु ! नीच संग्राम !
अरे धिक्कार तोहिं सौ बार ! अमंगल ! दुःखद ! पातक-धाम !
सघन-सुख-पंकज-पुंज-तुपार ! देश-उन्नति-तरु-कठिन-कुठार !
शांति-वन-दहन-प्रचंड कृपानु ! भयानक हिंसावंशागार !
देश संपत्ति कृपी पै हाय ! परत तू टूटि गाज के रूप !
लोक-द्रोही ! धिक्-धिक्-धिक् ! तोहिं, युद्ध ! रे व्याधि देश के भूप !

नीच जन के अघ के परिणाम ! देशदुष्कर्मविपाक स्वरूप !
प्रजामुदकुसुमाकर को ग्रीष्म ! अरे दारुण संताप अनूप !

(२)

सहस्त्रन घायल डारे वीर कराहैं कलपि-कलपि बलहीन ;
सहस्त्रन मुर्च्छित भरहिं उसास जियन को घटिका द्वै वा तीन ।
सहस्त्रन जूझि गए बलवान सिपाही समरधीर सरदार ;
सहस्त्रन गज तुरंग भे नष्ट झेलि कै घानन की बौछार ।
सहस्त्रन धामन में कुहराम मच्यो है सकरुन हाहाकार ;
चहूँदिश शोकावलि सरसात सहस्त्रन उजरि गए घर-बार ।
सहस्त्रन बालक भोरे दीन भए असहाय हाय बिन बाप ;
बिलख लखि लखि कै तिनकी आज हिए में होत महासंताप ।

(३)

सहस्त्रन दुर्बल बूढ़े लोग निपुत्री भए रहे सिर फोरि ;
कहँ करि रोदन "बेटा ! हाय ! कहाँ तुम गए कमर को तोरि ?"
सहस्त्रन बंधु दुहाई देत "हाय ! हरि हिए दया है नाहिं,
हमारो उठि गो बंधु जवान, हमारी टूटि गई हा बाहिं"
सहस्त्रन नारी यहि सप्ताह भई विधवा, है शोक महान,
बरनि को सकै अहो दुख घोर ? अहैं सो करुनामूरतिमान !
मृतक-सी परीं महीतल माहिं दया के योग्य भरीं संताप ;
कबहुँ जो होवे मुरछा दूर करैं तौ अतिशय घोर विलाप—

(४)

"कहाँ तुम गए प्रान आधार ! जगत जीवन के शोभा रूप ?
गए कित स्वामी ! सुख के धाम ! बोरि दासी को दुख के कूप ?
हाय ! कहँ गए हमारे छत्र ! छाँड़ि औचकहि हमारो साथ ?
हाय ! सुरनगर बसायो जाय, निठुर ह्वै, करि हम दुखिन अनाथ ।
हमारे चूड़ामनि सिरमौर ! हमारे, पति, संपत्ति, 'सोहाग !

गए पिय ! कित श्रृंगार नसाय ? अरे निरदई दैव ! हा भाग !
करौ हे पीतम ! सो दिन याद जबै तुम गह्यो हमारो हाथ।
कह्यो करि साखी देवहि आप 'जन्म लौं देहैं तुम्हरो साथ';
प्रानप्यारे ! क्यों मुख को मोरि गए तजि भला प्रतिज्ञा तोरि ?
चले द्रुत आवो हाय बहोरि, विनै है चरन परसि कर जोरि;
पिया ! शय्या पर सोवनहार ! आज तुम परे कठिन रनखेत।
कंत ! अँगराग लगावनहार धूरि तन भरी धूरि केहि हेत ?
प्रानवल्लभ ! नित रहे दयाल, सही नहिं कबहुँ हमारी पीर;
आज लखि हमैं हाय ! बिलखात न पोंछत काहे नैनन नीर ?
कबहुं नहिं कियो कंत आलस्य, जगत हे भेकहि खटका पाय;
निपट बेखटके सोवत नाथ ! आज की कैसी निद्रा हाय ?
कबहुँ जो जात हुते परदेश आप, वा, खेलन काज सिकार;
होत हो दारुन हमैं कलेस रैन दिन प्रानन सालनहार
रहति ही यद्यपि पूरी आस कछुक दिन बीते ऐहैं कंत;
तऊ अनुरागी चित को हाय वेदना होतहि हुती अनंत।
हाय ! सोइ पीतम प्रेमनिधान आज तुम गए नहीं परदेस;
गए तुम सुरपुर हमैं विहाय सदा को, हाय अपार कलेस !
नाथ ! जो बहुरि न आवौ पास करौ तो एतो ही उपकार;
बुलावौ हम को ही निज पास, होय काहू विधि बेड़ापार।
नाथ ! तुम बिना निपट अँधियार भयो सूनो दुखप्रद संसार;
होत प्रानन छिन-छिन दुखदाय अधम माटी को कारागार।"
कहाँ लौं बरनो जाय प्रलाप दुखारी विधवागन को हाय;
बिसूरत ही तिनको संताप सहज ही हिरदे फाटो जाय।

(५)

अरे ! संग्राम ! घृणा के धाम ! धर्मद्रोही, अपकारी क्रूर !
रुधिर के प्यासे ! अरे पिशाच ! उपद्रव करन ! धूर्त भरपूर !

जगत में तू ही बार अनेक प्रकट ह्वै किए घने उतपात ;
भरे इतिहासन में वृत्तांत तिहारे दुर्गुण के विख्यात ।

(६)

सुरासुर समर महान प्रचंड भए भयकरण अनेकन बार ;
भई तिनमें हिंसा विकराल, अपरिमित सृष्टि भई संहार ।
परशुधर क्षत्रियगण के युद्ध नष्ट कर दीन्हें अगणित वंस ;
बली वर भूपति संख्यातीत प्रतापिन लखो सहज विध्वंस ।
राम-रावण-संग्राम प्रसिद्ध उपस्थित भयो भयानक घोर ;
अपरिमित बलधर कला प्रवीण नसे योद्धा विक्रांत अथोर ।
लड़े त्यों जरासिंधु यदुवंस, भयो हरि-बानासुर-संग्राम ;
भयंकर भयो महाविकराल महाभारत रण हिंसाधाम ।

(७)

रूम यूनान मिस्र वा रोम स्पेन जर्मनि वा इंग्लिस्तान ;
आस्ट्रिया फ़्रांस देश वा होय अफ़रिका अमेरिका जापान ।
सबन को जेतो है इतिहास होय सो नवीन वा प्राचीन ;
ठौर-ही-ठौर भरी तेहि माहिं युद्ध की कथा महादुखलीन ।

(८)

अरे तू जगत उजाड़नहार ! अकथ दुखकरन ! अपावन ! भीम !
कहाँ लौं बरनूँ हे खलराज ! तिहारे निंदित कर्म असीम ?

दिल्ली-दरबार, १९११.

[प्रथम भाग]

(१)

देख कर दिल्ली का दरबार हृदय में उदय हुआ उत्साह
करें कुछ वर्णन उसके अंग करें जो सरस्वती निर्वाह ;
असंभव मुझसे निस्संदेह कुंभ में भरना सिंधु अपार
रसिक जन करें बानगी-रूप ग्रहण यह एक बिंदु-उपहार ।

(२)

ईसवी ग्यारह की थी सात दिसंबर और बृहस्पतिवार
रही थी चार घड़ी जब रात खलबली मची भली विशिचार ;
नगर दिल्ली के वासी और प्रवासी आगत वृंद विराट्,
परस्पर कहते थे—"झट चलो, आज आते हैं श्रीसम्राट् ।

(३)

सात अरु आठ बजे के बीच मार्ग सब हो जावेंगे बंद
पहन लो जल्दी-जल्दी वस्त्र ठिकाने जा बैठो स्वच्छंद ;
बजा वह सुनो बैंड, अब फ़ौज सघन दल पैदल और सवार
सवारी-पथ के दोनों ओर खड़ी होवेगी बाँध क़तार ।

(४)

सभी विधि हो जाओ निश्चिंत छोड़ दो घर-बाहर के काज
राज-दर्शन का लाभ विचार करो दिन सारा अर्पण आज ।"
जहाँ था जिसका नियत प्रबंध वहाँ वह जा बैठा कर मोद
राह, मैदान, छतों में भीड़ हो गई भारी भरी विनोद ।

(५)

कहीं थोड़ा भी गड़बड़ देख सिपाही करते थे उद्योग—
'करो मत भड़-भड़, सब दब जाव, ठिकाने खड़े रहो सब लोग,
वहाँ के घोड़े कड़बड़ चाल फ़िटन अरु मोटर तावड़तोड़
चले आते हैं धावे साथ बचो है यह अति अड़बड़ मोड़ ।

(६)

क़िले की सड़क, चाँदनी चौक आदि का था अनूप शृंगार
चारु थे चित्र वसन रंगीन पताके खंभे बंदनवार ;
एक थी सबमें बात विशेष भूपवर श्रीरानी के चित्र
वस्त्र पर छपे हुए अभिराम धाम प्रति देखे विपुल पवित्र ।

(७)

भक्तिवश मानो दिल्ली भूमि राज-दर्शन में जान विलंब
हृदय के आश्वासन के हेतु लिया इन चित्रों का अवलंब ;
तेल से सींची तैसे धूलि करै थी मानो यही बखान—
'लोग सब देखें यह प्रत्यक्ष "भूप" से "भू" का स्नेह महान।'

(८)

शैलरंगिण की श्रेणी तुंग छटा की थी इक अद्भुत अंग,
प्रचुर नागर-सागर में चारु उठी रह गईं विशाल तरंग ;
ताकते थे सब नृप की राह क्षण प्रति था उन्नत उत्साह
दर्शकों के दृग हुए चकोर भूप तारों के शाहंशाह।

(९)

समय जब नौ का हुआ समीप हुए अभिलाषी अधिक अधीर
"अजी क्या अब भी शाहीट्रेन न पहुँची होगी यमुनातीर।"
इसी विधि की चर्चा के बीच धमाका हुआ तोप का एक
"सलामी दगी, सलामी! वाह"! बोल यों उठे मनुष्य अनेक।

(१०)

सलामी दगी एक सौ एक, तीन भागों में* सहित हिसाब
बार दो, अंतर में, मार्गस्थ तुपकवालों का हुआ जवाब†:
बैंड बाजे का गूँजा शब्द भूप-आगम की छाई धूम
उठ गईं बाँहें आपी आप निगाहें गईं कोट-दिशि घूम।

---

* ३४ ३३ ३४। † प्रत्येक अंतर में, उस सैनिक श्रेणी ने, जो सवारी के मार्ग पर दिल्ली से कैंप तक खड़ी थी, बंदूकों की पड़ापड़ी इस छोर से उस छोर तक, उस छोर से इस छोर तक की। इसको Feu de joie कहते हैं।

(११)

सवारीवाला पहला भाग दृष्टि में आया शोभागारः—
फ़ौज के बड़े-बड़े सरदार, सिपाही, लिए हुए हथियार ;
बैंड की "सम" पर रखते पैर देख, समता भाई सुखसार,
मिला दिल्ली के संग तरंग-सहित जंगम बल पारावार ।

(१२)

सवारी का फिर भाग, द्वितीय—सर्वतः अद्वितीय कमनीय
स्वयं थे जिसमें भारत-राज स्वस्थ अश्वस्थ प्रजानमनीय ;
लार्ड क्रू और लार्ड हार्डिंग आदि थे संग तुरंग सवार
सुशोभित राजयान में पूज्य राजरानी थीं सुख की सार ।

(१३)

पर्व पर चंद्र-सूर्य को देख उमड़ता है ज्यों सिंधु अपार
राजदंपति-दर्शन से भक्त प्रजा का था अपार उत्साह ;
शोर "हुर्रे"* का हुआ अनंत मची करताल-ध्वनि की धूम
सलामी मानौ जन-समुदाय दे रहा निज कर से विनधूम ।

(१४)

राजदंपति के वदन-सरोज प्रफुल्लित थे विनोद के धाम ;
गए सुख देते हुए सप्रेम प्रजा का लेते हुए सलाम ।
अनेकों को न हुई पहचान, न पूरा हुआ उग्र-उत्साह ;
पूछते रहे परस्पर दीन "आपने देखे शाहंशाह ?"

(१५)

सवारी का फिर भाग तृतीय बड़ा था दर्शनीय सुविचित्र ;
पधारे विपुल सुदेश-नरेश ब्रिटिश शासन के सच्चे मित्र ।
संग थे बड़े-बड़े सामान, राजयानों के घोड़े चार,
सुभूषण, गाजे बाजे छत्र ध्वजा, चामर, सैनिक, सरदार ।

* Hurrah.

(१६)

उन्हें भी सभ्य प्रजा-समुदाय कर-ध्वनि से देकर सन्मान
एक बजते-बजते कृतकृत्य हुआ अवलोकन कर वह शान।
किंतु जो-जो सड़कें थीं दूर वहाँ के दर्शन आशालीन
गमन कर सके न घर की ओर बजे जब तलक न दो वा तीन।

[दूसरा भाग]

(१)

नगर से कई मील था दूर बसा भारी दरबारी कैंप
निशा में देते थे वाँ चारु छटा बिजली के अगणित लैंप।
महाराजाओं के छविवंत रावटी तंबू और वितान
सजे थे थोड़ी-थोड़ी दूर, धन्य वह दिल्ली का मैदान!

(२)

जहाँ था किसी समय सुनसान, वहाँ है बस्ती शोभाधाम
दिया जलता था जहाँ न एक वहाँ से तम हट गया तमाम।
जहाँ पर रहते थे न किसान वहाँ हैं भूपों के रनवास,
विहंगम बोले जहाँ कुशब्द रसायन गायन हैं सुखरास।

(३)

गवरनर जनरल आदिक उच्च कर्मचारी कमांडरिन्-चीफ़,
बड़े आदर के रूलिंग चीफ़ महाराजा, नौवाब शरीफ़।
धनी हिंदुस्तानी, अँगरेज़, बिलूचिस्तानी, बर्मी लोग,
सिक्किम-भूटान-चीन-जापान निवासीगण का था संयोग।

(४)

बड़ ही की बसती में भूप जार्ज पंचम का था सुखवास,
सहित श्रीमेरी हृदय उदार राजरानी श्री-शीलनिवास;
न होगी कुछ भी अनुचित उक्ति कहूँ जो मैं करके कुछ गर्व,
जगत के धन बल यश सौंदर्य पधारे हुए वहाँ थे सर्व।

(५)

प्रात से अर्द्धरात पर्यंत लगा रहता था ताँतातोर,
फ़िटन,टाँगे अरु मोटर कार-"टनन""घों""चलो बचो"का शोर।
तीर्थ में पर्व-समय जन-वृंद यथा जुड़ते हैं संख्यातीत,
हुई त्यों भारत-प्रजा-प्रजेंद्र-संधि-संक्रांति अनूप प्रतीत।

(६)

डाकघर, रेल, तार, नलनीर सभी का था पूरा आराम,
सकल दिन घूम-घामकर लोग रात को जाते थे निज धाम।
सभी भूले थे सारे काज यही कहते थे "भाई ! आज,
गए थक करते-करते सैर पुनः अब देखेंगे कल साज"।

(७)

भूप-एडवर्ड-मिमोरियल-कृत्य, खेल पोलो हाकी फुटबाल
फ़ौज को रंगों का उपहार, चर्च में सर्विस * आदि विशाल,
हुए जो अक्सर उनमें भूप हमारे आए गए सहर्ष,
प्रजा ने पाए बार अनेक राजदंपति-दर्शन-उत्कर्ष।

(८)

बादशाही मेले का दृश्य प्रजादल-रंजन था भरपूर,
सभी ने देखे होकर पास राजदंपति हुजूर पुरनूर,
सात से ले सोलहपर्यंत रहे दिल्ली में भारत-भूप,
जयंती रही महा मुद-पात्र यथा अवसर नवरात्र-अनूप।

[तीसरा भाग]

(१)

कहाँ तक हो वर्णन विस्तार, करें अब थोड़े में निस्तार,
उपक्रम हुआ सवारी दृश्य, बने दरबारी-उपसंहार।

---

* चर्च में सर्विस=गिरजे में ईश्वर-प्रार्थना।

आज है मंगल मंगलवार दिसंबर की बारह सुखसार ;
मुकुट-धारण-विज्ञापन हेतु सजेगा बहुत बड़ा दरबार ।

(२)

अभी तक बजे नहीं हैं आठ किंतु मार्गों पर जन-समुदाय ;
चले आते हैं मंडप-ओर ठानकर उत्सव का व्यवसाय ।
दूर का टीला चंद्राकार मनुष्यों से भर गया विशाल ;
भरा दस बजते-बजते "एँफ़ि थिएटर"*-वाला भी सब हॉल ।

(३)

खड़ी थीं सेनाएँ उद्दंड जमाए परा, निकट अरु दूर ;
पधारे ग्यारा के उपरांत गवरनर जनरल हिंद हुज़ूर ।
सलामी हुई, हुए सब लोग खड़े, अरु दिए "चियर्स"† प्रचंड ;
साथ में थीं लेडी हार्डिंग मुसाहब था आतंक अखंड ।

(४)

गगन के शिरोबिंदु पर चारु सजावट सूर्य मुकुट की देख ;
मुकुट-धारण का सूचक चिह्न शकुन शुभ मानो मान विशेष ।
मुकुटधारी श्रीपंचम जार्ज राजरानी मेरी के साथ ;
पधारे बारा पर दरबार हुआ सब भारतवर्ष सनाथ ।

(५)

सलामी हुई विधान समेत खड़े हो दरबारी समुदाय ;
देर तक देते रहे चियर्स, सहित हुर्रे, संकोच विहाय ।
विराजे राजासन-आसीन राजमंडप में दोनों व्यक्ति ;
इंद्र-इंद्राणी-से विख्यात पराक्रमधारी अतुला शक्ति ।

(६)

हुआ दरबार-कृत्य आरंभ, महानृप की सुन-सुन के स्पीच ;
हुआ श्रोताओं को संतोष, करध्वनि हुई बीच-ही-बीच ।

---

* Amphitheatre (अर्द्धवृत्ताकार मंडप) । † Cheers (करतल-ध्वनि) ।

उच्चतर अफ़सर और नरेश बहुत-से प्रतिनिधिगण प्रांतीय,
नृपाधिप-सम्मुख पहुँच प्रणामकिया दिखलाई भक्ति-स्वकीय।

(७)

दूसरे मंडप में फिर भूप गए जो था थोड़ी ही दूर ;
वहाँ "प्रोक्लेमेशन*" का पाठ हुआ ऊँचे स्वर से भरपूर।
पुनः पहले मंडप में भूप आ गए निज महिषी के संग ;
सुनाए प्रजा-सुखद वरदान बढ़ी जन-दल में अमित उमंग।

(८)

राजधानी हो दिल्ली और एक शासन में हों बंगाल ;
और कर दिए जायँ आज़ाद क़ैद दीवानी से कंगाल।
प्रथम शिक्षा का है अधिकार देश-आगम के ऊपर ख़ास ;
दिए जाते हैं उसके हेतु इसी दम मुद्रा लाख पचास।

(९)

और भी आगे शिक्षा हेतु मिलेंगे यों ही दान महान ;
मुक्त हों भूप-क्षमा के पात्र बहुत अपराधी अवगुणवान—
आदि ये सुन-सुनकर वरदान हुआ अतिशय आनंद प्रकाश
हर्ष के शब्दों से परिपूर्ण घड़ी-भर गूँज गया आकाश।

(१०)

हुआ दो पर समाप्त दरबार पधारे डेरे भारत-राज ;
यही करते थे चरचा लोग "देश के सिद्ध हुए गुरु काज।
आज का मंगल दिन शुभवंत प्रजा के हेतु महासुखराज ;
हिंद को देनेवाला मान सदा ही मानेगा इतिहास।"

(११)

आज दिन सारा भारतवर्ष सुखी है राजभक्ति में लीन ;
छके हैं पाकर भोजन-वस्त्र जन्म के कँगले दुखिए दीन।

---

* Proclamation (घोषणा)।

सुशिक्षित जन को है यह तोप,"नराधिप का है हमपर ध्यान;
हृदय से है निश्चय यह पूर्ण मिलेंगे आगे भी वरदान"।

(१२)

जान भूपाधिप को अनुकूल उक्ति कवियों की हुई अनूप ;
शिखर जो हैं सीधे अरु तुंग देवलों पर तर्जनी-स्वरूप।
हिंद कहता है—"वह कर्तार एक, सब ऊपर विश्व दयाल ;
करेगा तुम्हें सुखी हे जार्ज, किया जो तुमने हमें निहाल।"

(१३)

एक हैं हम अरु इँगलिस्तान, यहाँ अरु वहाँ एक है राज ;
तुम्हारे दुनिया-भर के देश बनें मिल एक कुटुंब-समाज।
नहीं वास्तव में कुछ भी भेद, रंग अनुरागी एक रसाल ;
गवाही देता है भरपूर, मैप*में हिस्से देखो लाल।

(१४)

बड़ाई पावे इँगलिस्तान हिंद से, उससे हिंदुस्तान ;
हुआ जब दोनों का संबंध, बढ़े जग में दोनों का मान।
हमारा आर्य देश है, आर्य, पराए नहीं आप हे जार्ज ;
पूर्व संबंध विना, सम्राट! न मिलता तुम्हें यहाँ का चार्ज†।"

(१५)

क्रास ‡ गिरजा-शिखरों पर आज सुनाता है ईसा-संवाद ;
"जार्ज! ईसाई-मत-सिरताज! तुम्हारे हित है आशिर्वाद।
जहाँ फहराय"यूनियन जैक+"वहाँ हो"लव"=का झंडा साथ;
हुए हम तुमसे बहुत प्रसन्न किया जो आर्यावर्त सनाथ।"

---

* Map=नक्शा । † Charge. ‡ Cross. + Union jack (अँगरेजी झंडा) । = Love = प्रेम।

(१६)

मसजिदें भी दो-दो मीनार-स्वरूपी ऊँचे करके हाथ;
दुआ करने में मंदिर चर्च भाइयों का देती हैं साथ।
"पाक परवरदिगार ग़फ़्फ़ार ख़ुदा या, ख़ालिक़ या अल्लाह!
अबद तक रहे सलामत शाह मेहरबाँ आदिल जहाँपनाह।"

(१७)

देश-भर में है सुख की धूम हुए हैं जगह-जगह दरबार;
छुटी है आतशबाज़ी खूब जयध्वनि गूँजी बारंबार।
प्रजा ने पाकर भूप-सहाय दिया मानो दुख को ललकार;
जलाकर उसको दिया निकाल चलाकर अग्निगर्भ हथियार।

(१८)

जले हैं आज करोड़ों दीप, हुआ है दिन के सदृश प्रकाश;
उधर है तारों का सामान, भूमि सम है जगमग आकाश।
सुपावन भरतखंड का आज हुआ दुनिया में रोशन नाम;
करे सब पूर्ण सच्चिदानंद प्रजावत्सल भूपति के काम।

दरबार के उपलक्ष्य में

पाठशाला के बालकों का आनंद

क्या अच्छी तातील मिली है; सबके मन की कली खिली है।
आओ मित्र, मिठाई खावें; महाराज की विजय मनावें।
लड्डू पेड़े खाजा बरफ़ी; बूँदी घेवर सेव अमिरती।
पूरी दूध मलाई पावें; महाराज की जै-जै गावें।
अहा! समोसे कैसे अच्छे; वाह-वाह! रबड़ी के लच्छे।
है क्या ही स्वादिष्ठ खटाई; जै नरेश की गाओ भाई।
क्या-क्या खावें कितना खावें; ऐसा पेट कहाँ से लावें।
किस व्यंजन की करें बड़ाई; भारत-भूपति जयति सदाई।

अधिक भूप का आयुर्बल हो ; दिल्ली का दरबार सफल हो
हुर्रे-हुर्रे हिप्-हिप् हुर्रे ; उड़ा देव चिंता के धुर्रे

दरबार के उपलक्ष्य में

दरिद्र-भोजन

(१)

दुबरे दरिद्री दीन, कंगाल संकट लीन ;
भूखे सदा के हीन, तिन आज भोजन कीन ।

(२)

जो खात भोजन पीन, रसहीन स्वाद विहीन;
तिनको मिले स्वादिष्ट, नमकीन खट्टे मिष्ट ।

(३)

दुखिया अपाहिज अंध, तिन हेतु भयो प्रबंध;
स्वादिष्ट भोजन पाय, हैं सुखी सो समुदाय ।

(४)

चटरी चबैया लोग, मटरी खवैया लोग ;
ह्वै भूप के महमान, पावैं विविध पकवान ।

(५)

जे नित्य सरदी खात, जिनको न आग जुहात;
तिनको उबारन काज, कम्मल बँटे हैं आज ।

(६)

न्योतै कोऊ इक धाम, न्योतै कोऊ इक ग्राम;
श्रीभरतखंड-नरेश, न्योता रच्यो सब देश ।

(७)

जुग-जुग जिएँ सम्राट्, अरु राज होय विराट्;
सुन लेहु हे जगदीश, कंगाल देहिं असीस ।

५—विविध विषय

अन्योक्ति विलास

(१)

चकोर-नैराश्य

कारी जामिनी है अँधियारी चहुँ ओर छाई,
दामिनी-छटा है घन-घटा को प्रभास है;
तारापति पेखन की 'पूरन' चलाई कहा,
करत न तारा जहाँ एक हू प्रकास है।
सीतल अमंद चंद लोभी इन नैनन को,
देत क्यों कलेस दूर सुख को सुपास है;
पावस की ऋतु है अमावस की रैन तापै,
दुखिया चकोर काहे ताकत अकास है * ।

(२)

अमंगल उलूक

आँधरो सदा को अधिकारी अंधकार ही को,
कीन्हों अग भारी तैं उड़त रैन सारी में;
घूमिकै जो थिर ह्वै रह्यो तो भूमि खोदी वृथा,
घोर धुनि भीम कीन्हीं बैठि द्रुम-डारी में।
भाजु रे तू अधम अमंगल निकम्मे न तो,
फोड़ैंगे तिहारे नैन काक उजियारी में;
होत है सबेरो अरे चूकत है उल्लू कत,
लूकत न काहे कहूँ खोह अँधियारी में।

---

* दे० अन्योक्ति सं० १५

(३)

कोसनेवाले

कुमुद चकोर कंज कोक वृंद चाहैं तऊ,
हानि ह्वै सकै ना दिन-रजनी-विधान की;
अरक जवासे घने जरि-जरि चाहैं मैरें,
होयगी सगाई जग वरषा प्रमान की।
काक के मनाए कहूँ ढोर ना मरत देखे,
इच्छा है प्रबल हरि 'पूरन' सुजान की;
कोसें चकमूँदर छछूँदर उलूकन के,
घटति न एकौ अंश आभा जग भान की।

(४)

पात्र-दोष

चातक चातकी प्यासे रहैं तौ, अहै नहीं लाभ वने धुरवान की;
चाँदनी में कुम्हलाय जो कंज, तौ हानि का चंद निशा-छवि-दान की।
आपने दाम न क्यों परखैं, परखैयन भाखत बात क्यों ग्लान की;
सूझि परै दिन में न उलूकहिं, तौ कहा खोरि उजागर भान की।

(५)

कपास

केवड़ा कुमुद कुंद केतकी कमल आदि,
अवनी पै जेतो जाल फूलन को भायो है;
रंग-बास तिनके निहारे दिन द्वैक ही के,
कारज न कोऊ तिन जग को बनायो है।
सादे सहजादे! धन्य तू ही तूल तरुवर,
तेरे सरवर को न दूजो दृष्टि आयो है;
सेत, बिन बास, घन-आसी ही भयो तो यार!
झेलि दुख वैहीं परछिद्र को छिपायो है।*

---

* दे० "जो सहि दुख परछिद्र दुरावा"—तुलसी

(६)

मृग-तृष्णा

उलटे निहारिकै अनारी बहु रूख-जाल,
जानि प्रतिबिंब अनुमान कीन्हों सर है;
प्यास सों विकल ह्वैकै धायो जात वाही ओर,
मूरख कुरंग तोहिं प्रान को न डर है।
योजन अनेकन लौं जल को न बूँद पैहौ,
खोज कहुँ साँचो जलवारो जौन थर है;
धोखे भरी टाटी यह ताती पौन रेनुका में,
मृग-तृपना है नहीं पानी की लहर है *।

(७)

सुआ और सेमल

तरु तुंग निहारि थक्यो प्रथमैं, पुनि लायो सुरंग फलै मन में;
ऋतुराज के औसर में शुक मूढ़, रह्यो सोइ खान की घातन में।
दिन पूरे भए फल पाके जबै, खुलि पोल गई सगरी छन में;
कढ़ि आयो घुवा पछितायो सुवा, सुवा सेइकै सेमर कानन में।

(८)

स्यार

डरपोकपने की तजी नहिं बान, मँजे छल-छिद्र विधानन में;
बदली नहिं बोली औ बानी कछू, रहे पूरे भयानक तानन में।
सुचि भोजन में रुचि कीन्हीं नहीं, शव खाइबो सीखो मसानन में;
करतूत कहौ भला कौन करी, जो बसे तुम स्यारजू कानन में।

(९)

निःशंक मृग

फल फैलकै गैल गुफा की चले, नहिं सूझत चारहु नैनन में;
वह गाज-सी भीम गराज महा, न डनान सुमान न श्रौनन में।

---

* दे० अन्योक्ति सं० १२

बलधाम मतंगहु शंकित है, बल अंकित तासु किए मन में;
मृगजू मत ऐसे निशंक फिरौ, मृगराज को राज है कानन में।

(१०)

रागी मृग

लघु सी रस नीरस है लकरी, खल छिद्र अनेक अहैं तन में :
मुख व्याध के लागिकै लाग भरी, करै शोर अथोर घने बन में।
तुव बंश की घातक बैरिन है, टुक सार विचारु कछू मन में;
कत मोहत रे मति-मंद मृगा, सु परी बँसुरी-धुनि कानन में।

(११)

प्यासा पपीहा

बरखनवारे साँचे होत मेघ कारे कोऊ,
सींचि जे जगत के करत काज खासे हैं।
कोऊ-कोऊ बापुरे बलाहक पै नाहक ही,
छाय बीच अंबर अडंबर प्रकासे हैं।
ऐहो मीत चातक नहीं है यह बान नीकी,
दारिद में दीनता के भाव जौन भासे हैं :
पेरे गरे धुरवान देखि धुनि आरत सौं,
काहे को पुकारत पियासे हैं, पियासे हैं। *

(१२)

आपत्ति में हंस

करत न बक-भक धरत न बक ध्यान,
चाल सो चलत जैसी चलत सदा से हैं;

---

* दे०—"रे रे चातक सावधानमनसा मित्र क्षणं श्रूयता-
म्मभोदा बहवो वसन्ति गगने सर्वेपि नैतादृशाः;
केचिद्वृष्टिभिरार्द्रयन्ति वसुधां गर्जन्ति केचिद्वृथा,
यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः।"
—भर्तृहरि।

भूलत न बान नीर-छीर बिलगावन की,
निज कुल-कीरति के रहत उपासे हैं।
मानसर-तालवारे मोती के चुगनहारे,
'पूरन' जहान जस जिनके प्रकासे हैं;
झीलन में झाँकि झख मारत न जाय भूलि,
यदपि मरत हंस भूखे औ पियासे हैं *।

(१३)

व्याकुल मृग

नदी खोजौ कुंड खोजौ सर खोजौ सिंधु खोजौ,
प्यास को बुझाओ सुख पाओ तहाँ जाय-जाय;
नाहीं परिछाहीं ए लखात तरु औंधे जौन,
मति को गँवाओ मत धोखौ इत खाय-खाय।
मरि-मरि रेत में परेत ह्वै परौगे हाल,
सीख निज हेत मानों चेत डर लाय-लाय;
चारु चखवारे तृषा-पीड़ित कुरंग अंध,
मृग जल ओर क्यों सिधारे वृथा धाय-धाय।

(१४)

धनप्रेमिका सारंग (सारंगी वा स्त्री)

आवते जो पन्नग तो लावते मनीन-जाल,
सुधर मराल तेरे मोती-माल लाय-लाय;

---

* दो०—"मानसरोवर ही मिलै, हंसन मुक्ता-भोग;
सफरिन भरे 'रहीम' सर, बक-बालकनहिं जोग।"
—रहीम

तथा—"जद्यपि अवनि अनेक सुख, तोय तामरस-ताल;
तजै न 'तुलसी' मानसर, तदपि न तजत मराल।"
—तुलसी

रीझते मयूर तौ सुपास होतो कलगी को,
रीझते चलाक तो सिहाते पंख पाय-पाय।
सींग खुर चामवारे कारे दगवारे मृग,
ठाढ़े हैं निकाम तृण-भोजी मुख बाय-बाय :
सारँग कहत अन्हवाय दुख पाय हाय,
हरिन हरामी मोहिं घेरैं कत धाय-धाय।

(१५)

दर्शनशील चकोर

सरद निसा में सेत पच्छ के सु औसर में,
रह्यो है प्रकास चंद 'पूरन' को छाय-छाय :
चरत अँगार के अहार को विसारि मीत,
नैनन जुड़ाव शीत-आभा चित लाय-लाय।
मुख सों न बोल पंख भूलि नत खोल मूरे,
राजी रहु दूरि ही ते दरसन पाय-पाय :
पास जाइबे को नाहिं तनकौ सुपास ताके,
केतिक चकोर तोसे हारे उड़ि धाय-धाय।

(१६)

तेली का बैल

कोल्हू को कठिन भार काठ औ कबार ताप,
काँधे पै सँभार धाँव भूसा-तिन खाय-खाय:
चलतो जो सूधो होतीं मंजिलैं बिपुल वार,
नंदीपुर जाय हरखातो सुख पाय-पाय।
होनहार नाहीं इन तिलन में तेल नेकु,
'पूरन' भनत चेतु हित चित लाय-लाय ;
निरख न लेत काहे अजहूँ चखन खोलि,
काटी गैल केती बैल रातौं-दिन धाय-धाय।

(१७)

मृग और सारंगी

गई चौकड़ी भूलि तौ पागुर छोड़ि खड़े तृण दाबि क्यों दाँतन में ;
भए मोहित क्यों कहा सार लख्यो लकड़ी कच खाल औ ताँतन में ;
सर मारिहै व्याध अदेख घने सरसाइहै घोर बिथा तन में ;
कत रंग में भंग करौ हो कुरंग न सारँग की लगो बातन में ।

(१८)

सजल मेघ

ठहराय न देहै सदा नभ में, तुम्हें देहै उड़ाय हवा खन में ;
जल डारिकै सूखते धानन में, जस लीजिए तातें उदारन में ;
पलटी जो बयारि तो देहै झराय, सबै कन रेत पहारन में ;
गुन-ग्राहक यार बलाहकजू, लगे नाहक पौन की बातन में ।

(१९)

अविवेकी मेघ

धान के खेतन पै न परैं जल के कन रेतन पै बगरावैं,
बाग बगीचन सींचन छाँड़िकै सिंधु पै नीर उलीचन धावैं ;
संपत पूरे अधूरे विवेक के दान के रूरे विधान भुलावैं,
मूसरचंद ये मूसर-धार धराधर ऊसर पै बरसावैं ।

(२०)

सयाना मृग

लकरी इक बाँस की पोली सोई तू परी इक व्याध के हाथन में,
तोहिं फूँकि सुनावत रागिनी सों छल-छिद्र भरो छिपि कानन में ;
हम जानत हैं तुव भेद सबै कहै चेत भरो हरिना बन में,
नहिं रीझनहार सयाने मृगा असुरी बँसुरी तुव बातन में ।

(२१)

खटमल

मारे ते बढ़त नेक काढ़े ते कढ़त नाहिं,
एरे हम डारि धार ताते जल-जाला की ;
दैत्य रक्तबीज-बंशी रक्त के पियासे पापी,
चुभनि अथोर झेलीं तेरी जीह आला की।
जेतो होय मन में सतावन सताय ले तू,
औध रही थोरी अब सकल कसाला की ;
एरे दुखदायी खटकीरन के वृंद बैरी,
आवन दे सीरी सुखदाई ऋतु पाला की।

(२२)

अनादर का रीझना

देह-द्युति दीपक है भाय प्रान यौं कोऊ,
आनन-सरोज-प्रेमी कोऊ रस प्रेरे हैं ;
दसन-छटा की दामिनी पै मोहि नाचें नाच,
कोऊ मंजु बानी ही सुनन हेतु चेरे हैं।
कोऊ कामगाढ़े मदमाती गति देखि मेरी,
सुबरन बिना रूप लीन्हें देत फेरे हैं ;
पुर के पतंग मृग बरही कुरंग और,
बापुरो मतंग सखी पीछे परे मेरे हैं।

(२३)

इंजन की शिकायत

बल ना करत काठ-दल है कतार सारी,
गिनती गिनन ही को साथी ये घनेरे हैं ;

दृष्टिकै चढ़ाई आगे पीछे को करत खींच,
जानिकै उतार वृथा ठेलत करेरे हैं।
इंजन सबल बीर धूम सों कहत बात,
एक तौ बिघन मग माहिं बहुतेरे हैं;
तापै ये अलाल बिन बूझ बिन सूझवारे,
ह्वै मुरदार भार पीछे परे मेरे हैं।

(२४)

चातक-संताप

सीरी भई छाती ताती देखि-देखि स्वाती बन,
जान्यो जानहारो मन साल को कसाला है;
रटन "पियासो हौं, पियासो हौं" झुरानी जीह,
सोऊ उर जानी होन चाहत निहाला है।
औचक ही बैरिन समीरन में लागी आगी,
चातक अभागी रोय टेरत बिहाला है;
"सुधासम पानी जिंदगानी की निसानी हाय,
हाय रे बिलानी जात मेघन की माला है!"

(२५)

बन में कछारन में बागन पहारन में,
भयो ठौर ठौरन में धुआँधार झाला है;
भरि गए बापी कुंड कूप ना समानो जल,
परै उफनानो सो प्रत्येक नद-नाला है।
मेरी भई बारी तब बैरिन बयारी भई,
आसा पर मेरे राम! परो जात पाला है;
सुधासम पानी जिंदगानी की निसानी हाय,
हाय रे बिलानी जात मेघन की माला है!

(२६)

अर्क और जवासा

चंपक तमाल कुंद किंशुक रसाल नीप,
बकुल अशोक कचनारन सघन में;
'पूरन' सुहाई ऋतु पावस के आवत ही,
भई है बहाली हरियाली बाग बन में।
पादप ते रूरे जौं लौं आतप सों झूरे रहे,
उन्नति निहारी दोई तुम्हरे तनन में;
अरक जवास तुम जग तें उदास ऐसे,
झरसत कैसे बरसात के दिनन में।

(२७)

काकपाली

आवन दे 'पूरन' सघन घनश्याम घटा,
छावन छटा दे छनदान की गगन में;
होन दे कलापिन-कलाप की अलाप तीखी,
शोर पपिहान को परन दे श्रवन में।
देखूँगी तिहारी तब कंठ की कठिनताई,
करि ले ढिठाई जिती ठानी होय मन में;
सुनु री बिहंगम कलूटी काकपाली तेरी,
कलई खुलैगी बरसात के दिनन में।

(२८)

काग

करि-करि काँव-काँव ठाँव-ठाँव गाँव-गाँव,
खाँव-खाँव ही को ध्यान राखत हौ मन में;
ढोरन के घाव मुरदार मास जीवन के,
मल के मिलत मोद मानत छकन में।

'पूरन' भनत होत औसर की औरे बात,
भए हू घृणित आई महिमा लखन में;
काग अभयागत हो! महिमा तुम्हारी सबै,
बीतिहै कनागत के पंद्रा दिनन में।

विरह-वर्णन

(१)

विरह-बारहमासी

(राग सोरठ)

बीर बिना बलबीर-विरह की पीर न जात सही;
फूले चैत पलास लाल बिन मधुसख ज्वाल रही।
माधव बिन बैसाख कठिन संताप-जलाक वही;
लाग्यो जेठ वियोग जरत तन-मन दिन रैन सही।
छाए घन आसाढ़ आस की सघन घटा उमही;
सावन बरसत नीर नयन घन समता मनहुँ लही;
भादों जग अँधियार श्याम बिन धीर न जात गही।
क्वार छाय वन सेत जरद अँग विरहिन को करही;
कातिक निरमल चंद्र बिषम बिष किरनन सुख हरही।
अगहन गहन गँभीर लोक कुल की कछु सुधि न रही;
पूस न सीतल होत हियो जड पाला परत मही।
माघ सुनाए बोल कोकिला मोहन सुरति कही;
फागुन 'पूरन' काज मिली बर प्रेम-मगन दुलही।

(२)

कहा कहूँ निज गति जबहि चातक बोलत रात;
'पीव' सुनत जी जातहूँ 'कहाँ' सुनत जी जात।

(३)

छूटि गयो सखि संग सखीन को छूटि गयो सबै रंग औ राग है;
खान औ पान लौं छूटि गयो तब बापुरो बैरी कहाँ अँगराग है।

नित्य के हास बिलास छुटे सब भाग में एक परो अनुराग है ;
प्रान को छूटिबो बाकी रहो अहो कैसो दियो विधि ने ये सोहाग है।

(३)

प्रीतम-प्रीति में पीरी परी द्युति पूरे रहैं जल सों जलजाता ;
कंपित अंगन रोम उठैं सरसैं तिमि स्वेद बनै नहिं बाता ।
बाल बिहाल जकी-सी रही पिय-ध्यान में लीन सबै तजि नाता ;
बोरि रह्यो करुना के समुद्र में कैसो सोहाग तैं दीन्हों बिधाता ।

(४)

(राग शाहाना वा बिहाग—ताल धम्माल)

पिया की बाट तकति गइ हारि ,
पिय-मुख चंद दरस-हित अँखियन गति चकोर की धारि :
पुनि निरास ह्वै बूड़ि नीर में भई मीन बिन बारि ।

यक्ष-संदेश*

(१)

(दंडक छंद)

परसि सलिल तेरो सीतल है पौन जौन ,
ताके मंद झूकन जगैयो प्रान-प्यारी को ;
मुकुलित मालती समूहन के साथ-साथ ,
प्रफुलित कीजियो पयोद ! सुकुमारी को ।
ह्वैकर चकित जबै ताकै सो झरोखें ओर ,
दामिनी बलित बेस बानिक तिहारी को ;
लागियो सुनावन सरस सोरवारे बैन ,
नीरद सुहावन ! वा मान जोग नारी को ।

---

* 'यक्ष-संदेश' भी मेघदूत के पूर्ण-कृत अनुवाद "धाराधरधावन" से लिया गया है । यक्ष मेघ से अपनी पत्नी के लिये संदेश भेज रहा है ।

(२)

(स्रग्धरा छंद)

"हे हे सौभाग्यवंती ! तुव प्रिय पति को मैं सखा आहुँ प्यारो :
लायो ताको सँदेशो तुव निकट सखी ! मेघ मैं प्रीतिवारो ।
उत्कंठा सों बिदेशी चलत तियन की छोरिबे काज वेनी ;
धावैं हैं सो थकेहू मम धुनि सुनिकै श्रौन-आनंद-देनी ।

(३)

ज्यों सीता पौन-पूतैं, तिमि सुनि इतनो बाम तोको लखैगी :
दैके सत्कार पूरो, प्रमुदित चित ह्वै बैन तेरे सुनैगी ।
जो नारी मित्र-द्वारा निज प्रिय पति को छेम की बात जानैं :
तौ वे प्यारे पिया के मिलन-सरिस ही चित्त में मोद मानैं ।

(४)

तू है जीवोपकारी तेहि हित, अथवा मानिकै बात मेरी :
तासों यों बोलियो कै तुव पति निवसै राम के शैल पेरी ।
जीवै है सो वियोगी अरु कुशल-समाचार पूछै सुतेरे :
ऐसी ही बात बोलैं सब तजि पहले आपदा जाहि घेरे ।

(५)

जैसी तू दूबरी ह्वै तपति तिमि अहै तस औ छीन सोऊ ;
तोमें आँसू उसाँसें जिमि लखियतु त्यों है विथा-छीन सोऊ ।
उत्कंठा है दुहूँ को बिबस बिछुरि सो आय नाहीं सकै है :
तौ हू संकल्प-द्वारा सब बिधि सम ह्वै पीव तोमें मिलै है ।

(६)

होती जो बात कोऊ प्रकट कहन की सामने हू सखी के :
तौहूँ था हौंस होती मुख लगि कहिए कान में भावती के ।
सो प्रेमी कंत तेरो दरस-परस को जाहि सौभाग्य नाहीं ;
मेरे द्वारा सुनावै तोहिं सुवचन ये रचे शोक माहीं ।

(७)

भामा ! श्यामा लता में तन चितवनहू चारु चौंकी मृगी में ;
केकी के पंख माहीं कच मुख सुखमा सोहती है ससी में।
भासैं भ्रूभंग-सी त्यों लहर नदिन में पै अहो प्रानप्यारी ;
जैसी शोभा तिहारी तेहि सरिस नहीं एकहू में निहारी।

(८)

गेरू सों चित्र तेरो विरचि शिला मान के कोपवारो ;
चाहूँ मैं चित्र-द्वारा परि तुव पग पै मान मोचूँ तिहारो।
त्यों ही आँसू बढ़ै हैं सजल दृगन सों जाय नाहीं निहारो ;
हा हा ! विधिना सहत न मिलियो चित्रहू में हमारो।

(९)

कैसे हू स्वप्न में जो लहि भरन चहूँ अंग में तोहिं प्यारी ;
तौ निद्रा की दशा में गगन विच दोऊ देहुँ बाँहैं पसारी।
देखै जो सो अवस्था वनसुर-वनिता शोक धारैं महान ;
आँसू के बिंदु त्यागैं द्रुमन दलन पै स्थूल मोती समान।

(१०)

हे प्यारी ! पौन जोई परसि लहलहे सोहने देवदार ;
आवै है या दिशा को परिमल तिनके छीर के लै अपार।
भेटूँ हूँ कामना कै हिमि गिरिवर की पौन सोई सुहाई ;
होवै है भाव ऐसो सुखद पवन सो भेंटिकै तोहिं आई।

(११)

कैसे ह्वै जाय छोटी निमिख सरिस ये जामिनी जौन भारी ;
कैसे ह्वै जाय थोरी कठिन दिवस की पीर संतापकारी।
ऐसी-ऐसी करे है दुरलभ विनती चित्त मेरो दुखारी ;
चाढ़ी भारी विथा सों विन सरन भयो सो अहो प्रानप्यारी।

(१२)

आशा ही के सहारे अतुलित दुख में मैं धरूँ धीर जैसे ;
तू हू हे भागवंती ! दुसह विरह में राखु ही धीर तैसे।

ना कोऊ नित्य भोगै अति सुख अरु ना नित्य ही दुःख भारी ;
ऊँची-नीची अवस्था लखियतु जग में चाल ज्यों चक्रवारी।

(१३)

बीतैगो शाप मेरो भुजग-शयन तें विष्णु जागैं जबै ही ;
तासों ये मास चारौ तिय-दृग अपने मूँदिकै दे बितै ही।
पूरी ह्वैहैं उमंगैं सकल दिनन की थास में प्रानप्यारी ;
ऐहैं आनंदवारी जबहिं सरद की जामिनी चंदवारी।

(१४)

याहू वाने कही है इक निसि गर सों लागि सोई हुती तू ;
जागी तू औचकै ही पुनि अति दुख सों बाल रोई हुती तू।
मैं बारंबार पूछो तबहिं बिहँसि तैं बैन ऐसे उचारे ;
मैं देख्यों स्वप्न ऐसो रमत इक तियै तू छली प्रानप्यारे।

(१५)

बातैं ऐसे एते की सुनि मृगनयनी ! जानु तू छेम मेरी ;
यामैं विश्वास कै तू पुरजन चरचै नेक ना कान देरी।
प्यारी ! तू यों न सोचै बहुत विरह में होत है नेह ऊनो ;
पूरी होवैं न हौसें दिन-दिन तेहिसों होत है प्रेम दूनो।

(१६)

नारी है सो सताई प्रथम विरह की पीर ताको धरैयो ;
नंदी जाके विदारे शिखर तेहि महाशैल तें लौटि ऐयो।
लैयो वाकी निसानी कुशल बचनहू मोहिं वाके सुनैयो ;
ये बासे कुंद ऐसे अतिशय मुरझे प्रान मेरे बचैयो।

गोरक्षा-विषयक

गो-पुकार

(होली)

(१)

ऐसी होली को आगी लगाओ, अरे मत जिय को जराओ।
जा दिन विष्णु धर्यो नरहरि-वपु, शिशु प्रह्लाद बचाओ।

ऐसे दिन मेरे वच्छन को स्वच्छन तुम बिसराओ;
जाति का नाम धराओ—ऐसी होरी० ।

(२)

नर तुम हौ अरु पुरुषसिंह हौ बुध बलवंत कहाओ,
मेरी रक्षा में फिर काहे, कायरपना दिखाओ;
वीर का नाम घटाओ—ऐसी होरी० ।

(३)

सरकारी क़ानून निबाहौ नृपहिं अर्पाल सुनाओ,
मेरे रुधिर से हाय हिंद की भूमि न लाल कराओ;
ऐसी होरी को बंद कराओ—ऐसी होरी० ।

(४)

गो-अनुराग गुलाल सुहावन सुमन लगाय उड़ाओ,
शिवगोपाल-रंग में भीजौ नीत का चाचर गाओ;
धर्म की धूम मचाओ—ऐसी होरी० ।

(५)

फूट बैर को इंधन करके जगत तें जारि बहाओ,
कुमति धुरहरी से बचि खेलौ, भंग भुलावा न खाओ;
न मद की मदिरा चढ़ाओ—ऐसी होरी० ।

(६)

जो जग में मम दूध पिवैया मत उपकार भुलाओ,
है "पूरण" अखंड यह नाता, माता को अपनाओ;
बिधाता को न खिझाओ—ऐसी होरी० ।

"कान्ह तुम्हारी गैयाँ कहाँ गईं ?"

(१)

कहाँ गईं कान्ह ! तुम्हारी गैयाँ ? हाय माधव हाय !
हाय ! कहाँ जमुना की कूलैं, कुंजन की घमछैयाँ । कहाँ गईं० ।

(२)

कृष्णा कपिला कालो पीली, कबरी औ करछैयाँ। कहाँ गई॰।
कहाँ गईं मख़मल की झूलैं, रेशम जरी की गेरैयाँ। कहाँ गई॰।

(३)

कहाँ गयो तुम्हरो दुलरैओ, बलदाऊ की बलैयाँ। कहाँ गई॰।
कहाँ गए परबत माखन के, दूध की ताल-तलैयाँ। कहाँ गई॰।

(४)

बाजति नहीं चैन की बंसी, दधिकाँधौं की बधैयाँ। कहाँ गई॰।
गोवरधन की चाचर होरी, गोकुल की सहनैयाँ। कहाँ गई॰।

(५)

बिन घी-दूध हानि धन-बल की, पूजा होम कछु नैयाँ। कहाँ गई॰।
हे गोपालचंद्र! ब्रज-नभ की, गौवैं-असंख्य तरैयाँ। कहाँ गई॰

(६)

कलियुग बढ़ो पतित भए हिंदू, धर्म पताल जनैयाँ। कहाँ गई॰।
गोवध से अब हिंद पिता की, टूटी जाय करिहैयाँ। कहाँ गई॰।

(७)

बधिक हाथ गाई मत बेंचौ, परिए सबकी पैयाँ। कहाँ गई॰।
"पूरन" धर्म-पंथ दरसायो, छूटै भूलभुलैयाँ। कहाँ गई॰।

"गैया, गंगा, गीता-गान" *

(१)

जग में कर्म, उपासन, ज्ञान, हैं जीवन को सुखद महान;
तातें इनको कीजै मान, गैया, गंगा, गीता-गान।

(२)

दूध पवित्र शक्ति की खान, पावन जल मज्जन अरु-पान;
शुचिर शांत रस अमृत-समान, गैया, गंगा, गीता-गान।

---

* यह कविता स्व॰ पं॰ प्रतापनारायणजी मिश्र की प्रसिद्ध कविता हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान" के ढंग पर है।

(३)

अशुचि नीर सों मानहु ग्लान, तजौ घृणित मदिरा को पान ;
समुझि विषय बिष लाओ ध्यान, गैया, गंगा, गीता-गान ।

(४)

इनको देवन में सन्मान, ऋषि मुनि मानैं महिमावान ;
ये तीनों दायक कल्यान, गैया, गंगा, गीता-गान ।

(५)

सत्य सतोगुण संपतवान, देश-हितैषी सुमत-निधान ;
होवे जो सेवै करि मान, गैया, गंगा, गीता-गान ।

(६)

धन, संपत्ति, विजय, जस, मान, बल, विद्या, सुंदर संतान ;
पैहौ अवशि भजहु गुनवान, गैया, गंगा, गीता-गान ।

(७)

अंत समय जब अटकैं प्रान, येई आवैं काम निदान ;
इनसों अजहुँ करो पहचान, गैया, गंगा, गीता-गान ।

(८)

देहिं तजे फिर तनु बलवान, मन को राखैं मुदित महान ;
करिहहिं सहजहिं ज्ञान प्रदान, गैया, गंगा, गीता-गान ।

(९)

कर्म-योग की पद्धति मान, करिहौ भारत को कल्यान ;
जो धरिहौ मन में हित जान, गैया, गंगा, गीता-गान ।

(१०)

हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान, जिनमें बसत सदा मन, प्रान ;
साधन उनके कीजे कान, गैया, गंगा, गीता-गान ।

(११)

श्रद्धा करहु आर्य-संतान, मानत इन्हें वेद भगवान ;
महिमा गावत शास्त्र-पुरान, गैया, गंगा, गीता-गान ।

(१२)

करिहैं निर्मल बुद्धि महान, हरिहैं भय,भव,भ्रम,अभिमान ;
देहैं 'पूरन' पद निर्वान, गैया, गंगा, गीता-गान।

कृष्ण का गाय से प्रेम

(१)

ह्वै कर गोपाल जासु लालन औ पालन के,
पदवी गोपालजू की पारब्रह्म पाई है ;
जाकी पीर हरिवे को हरि ने अनेक बार,
लीन्हों धरणी पै अवतार सुखदाई है।
सुरभी-सी नंदिनी-सी जाकी ज़ातिवारिन की,
सेवा में लगो ही रहे देव-समुदाई है ;
दीनानाथ सोई कलिकाल के प्रभावन सों,
हाय जगपावन अनाथ भई गाई है।

(२)

उठिकै सवेरे जाय नेरे जासु आदर सों,
पहिले दरस लह्यो मोद अधिकाई है ;
नेकै दुहि जाको दूध बछरे पियायो कृष्ण,
तीर यमुना के सब दिवस चराई है।
आवै अन्हवायो मैल देह को छुड़ायो जासु,
नित ही ललक संग कीन्हीं सेवकाई है,
दीनानाथ सोई कलिकाल के प्रभावन सों,
हाय जगपावन अनाथ भई गाई है।

(३)

पीठ जाके ब्रह्मा गले विष्णु को निवास जाके,
मुख में बसत जाके शंकर सदाई है ;

आठ हू खुरिन में बसत सिद्धि आठ जाके,
रोमन में जाके कोटि देव-समुदाई है।
दूध जाको जीवन गोबर हूँ लौ पावन है,
मूत्र जाको देह-अघमन की दवाई है:
दीनानाथ सोई कलिकाल के प्रभावन सों,
हाय जगपावन अनाथ भई गाई है।

(४)

जाकी बली संतति सहाय के किसानन कों,
जोति खेत अन्न की करत अधिकाई है:
जासों मिलै दूध दही मक्खन मलाई मही,
खोवा और नाना स्वाद पूरित मिठाई है।
इतने अमोल दै पदारथ जो भारत को,
लेत बदले में रूखी सूखो घास खाई है:
दीनानाथ सोई कलिकाल के प्रभावन सों,
हाय जगपावन अनाथ भई गाई है।

(५)

दूध आठ सेर हू निपनिओं जहाँ दुर्लभ है,
मक्खन मिलै की कहा चरचा चलाई है:
घी है ढाई पाव पै रहत शंक चरबी की,
मट्ठा की दवाई को रहत कठिनाई है।
जाके घटे जग के पदारथ घटे हैं सब,
जाकी वृद्धि सब ही अभाव की दवाई है:
दीनानाथ सोई कलिकाल के प्रभावन सों,
हाय जगपावन अनाथ भई गाई है।

(६)

भारत को जीवन हो गऊ के अधीन जानो,
भारत की भूमि हरि गऊ ही बनाई है:

गऊ की बखानी बहु महिमा है बेदन में,
　　गऊ की सुकीरति पुरानन में गाई है।
संपति की सार अन्न धन की अधार गऊ,
　　धर्म को सकल भार गाय पै सदाई है;
दीनानाथ सोई कलिकाल के प्रभावन सों,
　　हाय जगपावन अनाथ भई गाई है।

सुदामा-चरित्र

(१)

सम्मति लै जब नारि की हरि पहँ चले सुदाम;
फरके द्विज-अँग दाहिने वाम :अंग हू बाम।

(२)

'पूरन' ये कैसो कृष्णजू को मीत मेरी बीर,
　　जाको तन पीरो छीन लागै जिमि सूखरो;
डोलत महीनो बलहीनो लकुटी के बल,
　　कटि बल खायो कै कढ्यो है कहूँ कूबरो।
निकसीं नसन में मिलत. मूँज मैले ताग,
　　भूख की बिथा हू ते अजौं ना दीन ऊबरो;
दूब को अहारी, कैधौं धूम को अहारी, कैधौं
　　पौन को अहारी, दुज काहे ऐसो दूबरो*।

(३)

'पूरन' सुदामा आस धारे धन संपति की,
　　द्वारिका-पुरी पै जबै श्याम-धाम आयो है;

---

* दे० "सीस पगा न भँगा तन पै प्रभु जानै को आहि बसै केहि ग्रामा;
धोती फटी-सी लटी दुपटी अरु पायँ उपानहु की नहिं सामा।
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल एक रहो चकि सो बसुधा अभिरामा,
पूछत दीनदयाल को धाम बतावत आपनो नाम सुदामा।
　　　　　　　　　　नरोत्तमदास

स्वागत कै सादर मुरारि कुसलात पूँछी,
रानिन समेत मन सेवा मैं लगायो है।
चावर की पोटली पै कर को बढ़ाय हँसि,
कृष्ण दीनानाथ प्रश्न मित्र को सुनायो है:
भाभी ने हमारो भेंट-काज जो पठायो सखा,
ताको तुम काँख बीच काहेको छिपायो है।

(४)

लखि सुदाम की प्रीति सुच, हरखाने यदुराय,
संपति दई कुबेर की, चावर-कन हरि खाय।

(५)

सुंदर बिसाल मणि-धाम अभिराम दीखे,
धेनु गज बाज रथ पालकी निहारी मैं;
'पूरन' समाज दरबार कामदार देखे,
संख्या दास-दासिन की नेक न सँवारी मैं।
नहिं सो कुटीर ना तिया है मति-धीर मेरी,
मेरी ना पुरी ये कैसी सुमति बिसारी मैं:
द्वारिका-पुरी तें चलि मारग भुलानी कहूँ,
जाते आय ठाढ़ो फेरि द्वारिका मझारी मैं।

(६)

चोर्‌यो कर्‌यो माखन चरायो कर्‌यो गोअन को,
बात ते न ताके ब्रज-गोपी एक ऊबरी;
'पूरन' जसोदानंदजू ते नेह-नातो तोरि,
जाय मथुरा में पटरानी करी कूबरी।
मारग-कलेस झेलि ऐसे के निकट जाय,
भरम गँवायो बाम दीनों मतो खूबरी:

संपति न दीन्हीं हरि लीन्हीं उलटे ही और,
फूस की मड़ैया औ लुगैया मेरी दूबरी।

(७)

घोर निरधनता सुदामा-घर बास कीन्हों,
दारुन कलेस दै-दै दीन को सतायो है ;
संपति लै बाम की सिधायो द्विज स्याम पास,
भेंट करि तंदुल अखंड धन पायो है।
'पूरन' जू मानौं भई द्वारिका गया की पुरी,
जाय विप्र जामें मनमानो फल पायो है :
दारिद पिशाच मान आखत निमंत्रन को,
संग जाय तरिगो न फेर भौन आयो है।

(८)

आपनो ही धाम है ललाम मणि कंचन को,
आपने ही पुर को सबै ये विसतार है ;
दासी दास गाँवैं रथ पालकी रतन बास,
साज ये अनंत कंत जेतो सुख-सार है।
'पूरन', सुदाम सों कहत समुझाय बाम,
तुम पर कीन्हीं स्याम करुणा अपार है ;
आपनी ही घुरसार आपनी ही हथसार,
आपनी ही संपति को सगरो पसार है।

"काम-कौतुक"

(१)

नारद-से योगी को भुलायो तप तेज ज्ञान,
जाको परिणाम राम-शोक में लखात है ;
बिस्वामित्रजू को तप कीन्हों त्यों अनंग भंग,
गौतम की अंगनै दिवायो शिला-गात है।

नीरगत लपत मुनीश को सतायो मैन,
कीन्हीं रजनीश हू पै याने बड़ी घात है;
औसर-अनौसर में कौने काज कौने ठाँव,
शंकर के शत्रु ने करो ना उतपात है।

(२)

बालि बधवायो, दशशीश कटवायो तासु
वंश नशवायो कौन जानत न बात है;
कृष्ण-बाणासुर को करायो घोर युद्ध महा,
ऊषा-अनिरुद्ध-बिथा कही ना सिरात है।
कीचक-सो बीर पछरायो भीमसेन हाथ,
सोचत कहानी अकुलानी मति जात है;
कलुष कलेशन को कारन कलंकी क्रूर;
काम को जहान में चलानो उतपात है।

(३)

गज को अंकुश हनिय, बैल को अरई दीजै।
चाबुक मारिय अश्व, कान गहि अज बस कीजै।
अद्भुत भावै रीति, सखी रतिनायक बंकहि।
अबल सबल नर नारि, सबन इक लाठी हंकहि।
जिन कठिन शरन सों शंभु पर, वार प्रबल मनसिज किए;
सोइ बान हनत सो आज हा! सुकुमारी अबला हिए।

(४)

प्रबल पंचशर सुभट बल, त्रिभुवन हलचल कीन।
जलचर थलचर गगनचर, सकल किए आधीन।

(५)

हे पंच-शायक मार! मत पुष्प के शर मार।
असि-गदा-शूल चलाव; पुनि देख मेरे दाँव।

हौं शौर्यधारी बीर ; सम्मुख दिखाव शरीर।
नहिं क्रूरता छवि देत ; यह अतनता केहि हेत।
हर संग जब संग्राम ; तूने कियो है काम!
तब मनुज-सम्मुख आय ; क्यों करत युद्ध लजाय?
मत जान तू विधु बाल ; है खौर चंदन भाल!
नहिं जटा मेरे शीश ; मंडील आहि रतीश!
नहिं जाह्नवी की धार ; है मुक्त हीरन हार।
हैं सर्प नाहिं अनंग! ; यह पस्यो शेला अंग!
मैं अहहुँ राजकुमार ; शिव जान मोहिं न मार!

गान-गुण-गान

हरि-ध्यान की आधार मंजुल मंजरी सतज्ञान की ;
सुखसारिनी प्रेमीन की, अपहारिनी चिंतान की।
हितकारिनी साधून की, विस्तारिनी यश-मान की ;
नहिं वस्तु गान-समान है, सुखदायिनी मन-प्रान की।

रूप-रस

(टेक) रूप-रस देख्यो अद्‌भुत माद ;
बिजया-सुरा पिए मद आवत याहि लखे उन्माद।
(अंतरा) मतत चखन चखिं जपी तपी झूमि करत सुर्काय हित वाद ;
'पूरन' सब बिधि गुन अनुपम जो देत सुप्रेम प्रसाद।

प्रेम-पाश

पति—"अद्‌भुत डोरी प्रेम की जामें बाँधे दोय ;
ज्यों-ज्यों दूर सिधारिए त्यों-त्यों लाँबी होय।
त्यों-त्यों लाँबी होय अधिकतर राखै कसिकै ;
नेह न्यून है सकत नेक नहिं दूरहु बसिकै।
बिधिना देत बिछोह, कहूँ तासों कर जोरी ;
रखिए छेम समेत, प्रेम की अद्‌भुत डोरी"।

प्रेम-पथ

(१)

पत्नी—"प्रेम-सुमन में परि गयो विरह-सिंधु गंभीर ;
नाव दया है रावरी पहुँचावन को तीर।
पहुँचावन को तीर तुमहि समरथ सुखरासी;
मैं अबला बिन बित्त, बिना दामन की दासी।
मेरो है न अधार दूसरो तुम बिन जग में;
दीजै तातें साथ प्रानपति प्रेम-सुमग में।"

(२)

परि मोह में श्रीमनमोहन के गति बावरी मेरी बनी सो बनी :
ब्रजचंद सरूप सुधारस में मति 'पूरन' मेरी सनी सो सनी।
कुलकानि की आनि छुटी सो छुटी मन गाँसी मनोज हनी सो हनी:
अनरीति कहौ चहौ नीति सखी हरि सों अब प्रीति ठनी सो ठनी।

(३)

लखि 'पूरन' मंजुल मूरति वा दृग साँवरे रंग रँग सो रँगे :
मन मोह के जाल पर्यो सो पर्यो अँग अंग अनंग पगे सो पगे।
अब सोच सकोच को ख्याल वृथा जग चौचँद जाल जगे सो जगे :
पिय अंग हौं नीके लगूँगी सखी ये कलंक के टीके लगे सो लगे।

(४)

सखियान की सीख लगैं बिख-सी बसुरी धुनि कान पगे सो पगे :
मति बौरी भई है अचेत दसा तन मैन के ज्वाल जगे सो जगे।
रँग त्यागि सबै दृग 'पूरन' ये घनश्याम के रंग रँगे सो रँगे ;
अँखियाँ पल एक न रैन लगैं ब्रजचंद सों नैन लगे सो लगे।

(५)

हम चेत चुकी हैं भले मन में जो हितू सो हितू जो सगे सो सगे ;
कुलचाल हमैं न सिखावौ कोऊ पग प्रेम के पंथ पगे सो पगे।

अपवाद सहूँगो न 'पूरन'जू यह चौचँद जाल जगे सो जगे ;
तुम गाँव के साँवरे द्रोही सबै अबलौं मुख मेरे लगे सो लगे *।

वीर-चरित्र

अब देस-सुधार को ठान हिए तज आलस धीर जगे सो जगे ;
जु अनीति करैं सोइ शत्रु तिन्हैं नित नीति में जोइ सगे सो सगे।
कवि "पूरन"जू परमारथ में सब भीति विहाय पगे सो पगे ;
पुरुषारथ की सुठ बानि यहाँ वर काज में वीर लगे सो लगे †।

छोटों की महिमा

छोटे फूल कुंद के चढ़त देवता के सीस,
नाहीं पै पलास जे अवास बन भासे हैं ;
भूप के मुकुट माहिं हीरा को मिलत ठौर,
काच के नगीने वरु बने बड़े खासे हैं।

---

* दे० "लाज सों काज कहा बनिहै ब्रजराज सों काज बनाइबे ही है।"
तथा—"लोक की लाज औ सोच प्रलोक को वारिए प्रीति के ऊपर दोऊ ;
गाँव के गेह को देह को नातो सनेह में हाँ तो करै पुनि सोऊ।
× × ×
लोक की भीति डरात जो मीत तौ प्रीति के पैंड़े परै जनि कोऊ।"—
—बोधा
तथा—"कबि ठाकुर नैन सों नैन लगे अब प्रेम सों क्यों न अघावरी री।
अब होन दै बीस बिसै री हँसी हिरदै बसी मूरति साँवरी री।"
तथा—"अब गाँव रे नाँव रे कोउ धरो हम साँवरे रंग रँगी सो रँगी।"
—ठाकुर
तथा—"जेहि कर मन रम जाहिसन ताहि ताहिसन काम।"
—तुलसी
† "मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुःख न च सुखम्।"
—भर्तृहरि

मान होत गुन को न छोटे को विचार होत,
नीति के बचन सुठ 'पूरन' प्रकासे हैं।
छाँड़ि लघु नारे निरमल जल स्वादवारे,
खारे जल सिंधु को न चाहत पियासे हैं *।

समुद्र-निंदा

जब देव अदेवन याहि मथ्यो बिख याने दिखायो भयंकर है ;
अरु बारुनी याते में दीन्हीं सोऊ जग में भई पातक को घर है।
खल जंतु अनेक बसाए रहै जिनसों दुनियाँ को सदा डर है ;
नहिं जानिए बोरे जहाज़ किते बड़ो पाप को सागर सागर है।

क्या हिंदी मुर्दा भाषा है ?†

विद्या-रसिक सज्जनो, हिंदी-हितैषी मित्रो ! जिस प्रस्ताव को आपके सामने उपस्थित करने के लिये मैं खड़ा हूँ वह इस भाँति है—"यह सम्मेलन इस बात पर अपना अतीव आश्चर्य प्रकट करता है कि पिगट-कमेटी के एक मेंबर ने हिंदी को, जो अधिकांश भारत-वासियों की प्रधान भाषा है, मृत भाषा कहने का साहस किया है और सैयद करामतहुसेन की सब-कमेटी ने यह निर्मूल आक्षेप किया है कि हिंदी के प्रचारक राजनैतिक उद्देश्यों से उसका साहित्य बढ़ रहे हैं। यह सम्मेलन लोकल गवर्नमेंट को धन्यवाद देता है कि उसने उक्त निर्मूल अपवादों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया"। मैं असमंजस में हूँ कि इस मंतव्य की प्रस्तावना में क्या कहूँ, स्वयंसिद्धि को क्या सिद्धि करूँ तथापि इस समय मेरा कथन भी खंडित खंडन

---

* "रहिमन, देखि बड़ेन को लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवै सुई कहा करै तरवारि।"—रहीम

† लखनऊ के पंचम हिंदी-साहित्य-सम्मेलन में दी गई 'पूर्ण'जी की प्रसिद्ध वक्तृता। कहते हैं इस वक्तृता के अंतर्गत छंदों को 'पूर्ण'जी ने सभा-मंडप ही में बनाया था।

तथा मंडित मंडन-पूर्वक जो कार्य हम कर चुके हैं उसका अनुचिं-
तन-स्वरूप और जो कार्य हमें करना है उसका भूमिका-स्वरूप
होगा। महाशयो, साहित्य में एक अलंकार होता है उसका नाम है
मिथ्याध्यवसित अलंकार। उसका प्रयोग बहुधा वेदांत में हुआ
करता है। वंध्या का पुत्र गँधर्व-नगर में आकाश-पुष्प-संचय के
लिये पंगु होकर भी सैर कर रहा है। बिना नाक के भी उन पुष्पों
को सूँघता है। जैसे यह सब सत्य वा असत्य है उसी प्रकार हिंदी
का निर्जीव होना भी सत्य वा असत्य है। मुझे तो अब भी ज्ञात
हुआ है कि मुर्दा भी बड़े-बड़े काम करता है। दूर-दूर से यात्रा करके
आता है, दान देता है, दान लेता है और खाता है और खिलाता भी
है, मंतव्य स्वीकार करता है और चियर्स भी देता है। क्या आश्चर्य
हिंदी को मुर्दा कहनेवाला वेदांती हो जो 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' के
भाव से हिंदी-साहित्य को कोई वस्तु नहीं समझता। ब्रह्म ही तो
वस्तु है जिसमें अवस्तु का आरोप हुआ करता है। उर्दू में वस्तु को
चीज़ कहते हैं। उर्दू बोलनेवालों का बोलचाल ही हुआ करता है
कि अजी जनाब यह ख़ाकसार तो बिलकुल नाचीज़ है। ऐसे ही
भाव से किसी ने हमको भी कुछ कह-सुन दिया होगा। हाँ एक
बात और याद आई कि हिंदी के प्रचारक तो उसका साहित्य
गढ़ ही रहे हैं परंतु अंधेर यह है कि हमारी सरकार भी इस धुन
में पड़ गई है। मिसाल के लिये देखिए वार कम्यूनिक। महाशयो, लोग
कहते हैं कि मुर्दा दिल ख़ाक जिया करते हैं। हम तो मुर्दा दिल उसी
को समझते हैं जो एक जीती-जागती इस देश की सबसे अधिक
प्रसिद्ध और प्रचलित भाषा से विमुख होने के अतिरिक्त उससे द्रोह
भी रखता हो। उर्दू के पक्षपाती कहते हैं कि उर्दू श्रेष्ठ है। सच! क्या
आपने नहीं सुना, प्यासा आब-आब चिल्लाता ही रहा और प्यास से
मर गया। यदि वह जल, पानी माँगता तो उसका आशय साधारण

सेवक भी समझ लेता। अन्य प्रांतों में निमक माँगिए नहीं मिलेगा। लवण के नाम से बंगाले व मदरास का देहाती पंसारी भी आपकी अभीष्ट वस्तु आपको दे देगा। इसी से समझ लीजिए कि देश-व्यापिनी भाषा कौन-सी भाषा हो सकती है।

अब मैं एक पद्य-द्वारा ईश्वर का धन्यवाद करता हूँ कि जिसकी कृपा से हिंदी केवल जीवित ही नहीं है किंतु एक परिपूर्ण प्रकाश-वाली वस्तु है इसी में साहित्य के गौरव का भाव गर्भित है।

(१)

अंधकार है वहाँ जहाँ आदित्य नहीं है;
है वह मुर्दा देश जहाँ साहित्य नहीं है।*
जहाँ नहीं साहित्य नहीं आदर्श वहाँ है;
जहाँ नहीं आदर्श वहाँ उत्कर्ष कहाँ है?
है धन्यवाद उस जगत के स्वामी विश्वादित्य का;
जो जग में पूर्ण प्रकाश है हिंदी के साहित्य का।

अब दूसरे पद्य में यह निवेदन है कि हिंदी का निर्जीव होना एक असंभव विचार है, अपितु उसे निर्जीव कहना ही एक निर्जीव आरोपण है और इस सम्मेलन की सत्ता ही इस पक्ष में प्रमाण है।

(२)

मिथ्याध्यवसित अलंकार जो सुनते आए;
उसके हमने उदाहरण मनमाने पाए।
शशक-शृंग लै छड़ी पंगु वंध्या-सुत घूमै;
मृग-जल कमल अगंध अंध अलि मुख बिन चूमै।
यों ही हिंदी की निर्जीवता-आरोपण निष्प्राण है;
सम्मेलन यह इस बात का सत्तापूर्ण प्रमाण है।

अब तीसरे पद्य में यह प्रश्न करते हैं कि जो इस प्रकार प्रबल

*ये दो पंक्तियाँ आजकल कहावत की भाँति हिंदी-संसार में खूब प्रचलित हैं।

है और जो इस प्रकार विविध ध्वनियों से बड़े-बड़े कार्य कर रही है क्या वह निर्जीव कही जा सकती है ?

(३)

प्रेम-ध्वनि से जो सोतों को सदा जगावे ;
शंख-ध्वनि से जो ईश्वर का प्रेम सिखावे ।
सिंह-ध्वनि से फूट और दुर्मति को मारे ;
मेघ-ध्वनि से दुराभाव को जो ललकारे ।
यह विनय-ध्वनि से प्रश्न है जो यों प्रबल अतीव है ;
तुम कहो हृदय पर हाथ रख क्या हिंदी निर्जीव है ?

(अगले पद का भाव स्पष्ट है)

(४)

शोक न होता यदि यों मुर्दा कहनेवाला ;
होता कोई अफ़रीक़ा का रहनेवाला ।
हिंद-निवासी हाय कहें हिंदी को मुर्दा ;
होगा उसका बड़ा ग़ैरमामूली गुर्दा ।
क्यों उन्हें देख पड़ती नहीं हिंदी भाषा हिंद की ;
यह प्रभापूर्ण जब है सभा दवा मोतियाबिंद की ।

अब यह दिखलाते हैं कि हिंदी का प्रयोग भारतवर्षीय संसार के संगीत में किस अधिकता से है । बंगाली और महाराष्ट्र गवैए भी, तानसेन, बैजू बावरे, इत्यादि के हिंदी-गीत गाते हैं ।

(५)

जिसमें ध्रुवपद भजन शूल धम्माल सुरीले ;
गाते हैं ठुमरियाँ रँगीली सदा रँगीले * ।
हाँ जिसमें मर्सिए तलक गावें दर्दीले ;
हाँ जिसमें व्याख्यान मधुर रस-चलित सजीले ।

---

* मुहम्मदशाह के दरबार में गवैयों में बहुधा 'सदा रँगीले' संबोधन भी आता था ।

ध्वनि गूँज रही जिसकी प्रबल भारत में अभिराम है;
मुर्दा कहना उस व्यक्ति को किन कानों का काम है?

अब अगले पद्य में यह सूचना देते हैं कि मुसलमानों में भी हिंदी के अच्छे लेखक बराबर होते चले आए हैं। तो फिर वह मर कब गई? यह भी सूचित करना अभीष्ट है कि पिछले समय में मुसल-मानों को हिंदी से द्वेष नहीं था; प्रत्युत इसके प्रति प्रेम और आदर था। अब भी बहुत-से मुसलमानों को हिंदी से उसी प्रकार प्रीति है।

(६)

हुए न थे जब दर्शन तक उर्दू बीबी के;
कुतुबअली, मसऊद हुए दो कवि हिंदी के।
पीछे कुतुबन शेख़ आदि हिंदी के लेखक;
हुए काव्य के रसिक और विद्या-उत्तेजक।
गुणवान ख़ानख़ाना-सदृश कविता-प्रेमी हो गए;
रसखान और रसलीन-से हिंदी-प्रेमी हो गए।

पाठको, रसखान की सुंदर रसमयी कविता आप लोगों ने पढ़ी ही होगी, कुछ रसलीन की रसलीनता की बानगी भी लीजिए। आप अवध-प्रांत में बिलग्राम में हो गए हैं। आपका नाम मुहम्मद आरिफ़ था।

राधापद बाधा हरन साधा करि रस लीन;
अंग अगाधा लखन को कीन्हों मुकुर नवीन।

यह अंगदर्पण का प्रथम दोहा है। और यह दोहा उनका बहुत ही प्रसिद्ध है, जिसे लोग भ्रांति से दूसरे कवि का समझते हैं। इसमें यथासंख्यालंकार का अपूर्व ही चमत्कार है।

अमी हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार;
जियत मरत झुकि झुकि परत, जेहि चितवत इक बार।

एक बात और स्मरण-योग्य है कि ईसाइयों ने बाइबिल हिंदी

में अनुवाद कर लाखों बँटवाई हैं। क्या उनको भी मुर्दा भाषा का साहित्य गढ़ना था ?

इसी प्रकार एक पादरी ने निर्जीव हिंदी का व्याकरण ही लिख डाला। जिसका नाम भाषा-भास्कर है। वर्षों तक शिक्षा-विभाग में पढ़ाया गया है।

अब हिंदी-कवियों के नाम उदाहरणवत् गिनाते हैं, जिनसे प्रत्यक्ष ही सिद्ध है कि हिंदी मुर्दा वा शिथिल होने के बदले क्रमशः उन्नति करती हुई आपके समय तक पहुँची है।

(७)

कविवर जगनिक, चंद्र-सदृश होते ही आए;
गोरखनाथ, कबीर प्रेम बोते ही आए।
तुलसी, केशव, सूर, गंग, सेनापति, सुंदर;
नरहरि, भूषण, देव, बिहारी, मति, पद्माकर।
है बहुत बड़ी नामावली श्रीहरिचंद्र, प्रताप तक;
है सदा वृद्धि पाती हुई हिंदी पहुँची आप तक।

पाठको, स्वयं हिंदी की उक्ति है कि यदि मेरी सामग्री उर्दू फेर दे तो वह बोल ही नहीं सके।

(८)

जिसे, पलक, पल, घड़ी, पहर, दिन, रात सिखाया;
पखवारा, ऋतु, बरस, महीनों तक रटवाया।
जिसे एक, दो, तीन, चार, पाँचादि पढ़ाया;
दूने, पौने, ड्योढ़, पहाड़ा कंठ कराया।
मम कोष, व्याकरण छोड़कर बीबी बोलें तो सही;
मम सम्मुख मुझसे विमुख हो कुछ मुँह खोलें तो सही।

(९)

अब हिंदी कहती है, बिना मेरे उर्दू की सत्ता ही नष्ट हो जाती है।

आना, जाना, रोना, गाना, खाना, पीना ;
कहना, सुनना, रहना, बहना, मरना, जीना ।
पोता, भाई, बहन, बाप, माँ, लिखना, पढ़ना ;
मेल, चढ़ावा, सजधज, कड़वी बातें गढ़ना ।
मुझ बिन उर्दू को एक भी जुमला रचना कठिन है ;
जुमला-रचना की क्या कथा, जीती बचना कठिन है ।

(१०)

हिंदी कुछ आतंक से पोसी हुई के प्रति उलहने से कहती है ।

जिस पक्षी को मृदुल शब्द-दानों से पाला ;
रक्षा की व्याकरण-रूप पिंजड़े में डाला ।
सुर्ख़, ज़र्द की जगह लाल, पीला सिखलाया ;
नवों रसों का सरस जिसे जल-पान कराया ।
मुझ पर ही आँखों की मटक, अरी कपोती वाह वा !
तू मुझसे ही चोंचें करे, परी तोती वाह वा !

(११)

और भी हिंदी ही की उक्ति है, वह उर्दू को दोष न देकर समय को दोष देती है ।

प्रीति पालने में मेरे ही पलनेवाली ;
अभी हुई है निज पैरों कुछ चलनेवाली ।
सीखा कैसा चलन लगी क्या चाल बताने ?
बोलचाल कुछ सीख चली है बात बनाने !
मत चरचा चालो नीति की, जग का ये ही हाल है ;
उपकार भुला देना सहज, आज कलिह की चाल है ।

(१२)

अगले पद्य में भी हिंदी ही की उक्ति है और आतंक की विशेषता है ।

कोसो जी भर हमें द्वेष से वा ईर्षा से ;
कोई मरता नहीं किसी के कोसे-कासे ।
हाँ मेरा आतंक नोट चाहो तो कर लो ;
होगा व्यर्थ कलंक चोट चाहो तो कर लो ।
हूँ दिव्य देववाणी-सुता, नाश नहीं मेरा कहीं ;
मैं अमरों की संतान हूँ, मैं मरनेवाली नहीं ।

(१३)

इसमें हिंदी अमरता का कारण स्पष्टता से बतलाती है—

मैं नेचर से बनी पली नेचरल् नियम से ;
संस्कृत का पीयूष पिया मैंने संयम से ।
है ज्यों रवि-चंद्रादि प्रकृति-सामग्री धन्या ;
मैं भी हूँ कुछ वस्तु देववाणी की कन्या ।
शुभ प्राकृत यह शब्दावली ध्वस्त कभी होगी नहीं ;
प्रतिभा-नभ की तारावली अस्त कभी होगी नहीं ।

(१४)

अब हिंदी और हिंद के स्पष्ट संबंध पर दृढ़ विश्वास के आधार र कहते हैं—

संभव नहीं कदापि धर्म को छोड़े धर्मी ;
हो सकती है दूर कभी पावक से गर्मी ।
स्वयंसिद्ध है मित्र हिंद हिंदी का नाता ;
है अभिलाषा यही रहे अनुकूल विधाता ।
तुम निष्ठा से जो आसरा प्रभु के पद-अरविंद का ;
यह नाता है जगदीश-कृत हिंदी का अरु हिंद का ।

(१५)

विश्वास की दृढ़ता का कथन है ।

यहाँ कुम्हड़े की नहीं अजी बतिया है कोई,
उँगली से निर्देश हुआ अरु बस वह सोई ;

नहीं पतंगी रंग धूप लगते उड़ जावै,
है यह वह संगठन कभी छूटने न पावै।
संयोग नहीं यह ओसकण और मृदुल अरविंद का ;
यह नाता समझो प्रलय तक हिंदी का अरु हिंद का।

(१६)

(हिंदी देवी की अत्यंत संक्षेप में स्तुति)

छल, जड़ता, अज्ञान आदि असुरों के दल का,
करै दलन अरु हरै भार धिया-भूतल का ;
धर्म, काव्य, इतिहास, नीति, विज्ञान, महत्ता ,
अर्थ, देश-हित, मेल, सुमति, दश आयुध, सत्ता।
उद्योग-सिंह आरूढ़ शुभ, दश दिशभुजी महेश्वरी ;
हो वरदा भारतवर्ष की, श्रीहिंदी पूर्णेश्वरी।

वृष्टि के लिये प्रार्थना

(१)

या दुख जाल दुकाल विहाल करो विधि की गति जाति न जानी,
भारी क्षुधा सों भरी सिगरी चहुँ ओर प्रजा अति ही बिललानी ;
कौन जियावनहार जबै जुनरी मटरी नव सेर बिकानी,
कैसे कहौं यह होती दशा जो कहूँ हरिजू बरसावत पानी।

(२)

कै न समुद्र में नीर रह्यो अथवा रवि शोषण-शक्ति थकानी,
कै नहिं वायु में वेग रह्यो न सुनात किधौं जग-आरत बानी ;
कै करुणाकर बानि तजी प्रभु कै सुरनाथ बगावत ठानी,
कै हरि चाहै प्रलय करिबो फिरि काहे नहीं बरसावत पानी।

(३)

ठाने जबै प्रभु ध्यान कियो सरनागत है करुणामय बानी,
'पूरन' वेग सहाय भए कहि नीचता तासु कछू चित आनी ;

वानर भालु गयंद किरातिनि गीध उधार न बान बखानी,
त्राहि रटैं अब जीव सबै न दया घन क्यों बरसावत पानी।

(४)

संकट तो पहलेई हुतो बिन वृष्टि दशा कछु और नसानी,
सूख गए सरिता सर कूप खरीफ़ खरी बिन सींच झुरानी;
लोग दुखी बिन अन्न मरैं जग छाय रही करुणामय बानी,
'पूरन' ईश दयाल हरे कस देर करी बरसावत पानी।

(५)

जो बिन नैन के देखत है अरु बोलत है सबही बिन बानी,
पाँव बिना जो चलै सबरैं बिन हाथ के कर्म करै सुखदानी;
लेत बिना रसना के सबै रस कान बिहीन सुनै सब बानी,
सोई सबै जग पालन हेतु सदा हित कै बरसावत पानी।

रामचंद्रजी का धनुर्विद्या-शिक्षण

(राग—देश, ताल—झूमड़ा)

(१)

सुरपुर होत जय-जयकार ;
शस्त्र-विद्या आज सीखत अवध-राजकुमार। सुरपुर०।
कुल-पुरोहित नियत कीन्हीं लग्न जो शुभ वार ;
ताहि में रघुवर गहे कर चाप सर तरवार। सुरपुर०।
गुरु बतावत लेत सोई सीख लगत न बार ;
लंसकारी धनुपधारी कहत देखनहार। सुरपुर०।
लखन मोद विनोद परजन लखन भीति अपार ;
सुरन धीरज देत यह नव वीर गुण-संचार। सुरपुर०।
पैंक बदलत कर चलावत ऊर्ध्व ग्रीवा धार ;
सिखन नृपसुत पैरबो सो समर-पारावार। सुरपुर०।
बाल-रूप अनूप शोभा देत शस्त्र-प्रहार ;
मनहुँ प्रविशत वीर-रस वात्सल्य के आगार। सुरपुर०।

काल के संवाद-सी जो लगत असुरन झार ;
अभय धुनि-सी सुनत सुर सो धनुष की टंकार । सुरपुर० ।
पीत पट, धनु रतनमय, तन स्याम, शर चौंकार ;
तड़ित-सुर धनु-सहित घन जनु रह्यो बुंदन डार । सुरपुर० ।
स्वच्छ लायक गुच्छ ऊरध उड़त बारंबार ;
मनहुँ सुर-संताप-ग्रीषम ताप-हरन फुहार । सुरपुर० ।
रामरूपित चाप लचि-लचि लहि ललित आकार ;
मनहुँ निज प्रभु-भृकुटि त्रुटि को करि रह्यो प्रतिकार । सुरपुर० ।
मृदुल कर गत कठिन धनु की विवश गतिहिं निहार ;
होत अचरज जलज जीती शमी द्रुम की डार । सुरपुर० ।
रुचत पूरन रामचंद्रहिं वीरता व्यवहार ;
वेग ही सब दूरि ह्वैहै भूरि भूतलभार । सुरपुर० ।

(२)

सरजूतीर सुख सरसाय ;
धनुर्वेद अवेद सीखत जहाँ चारिहु भाय । सरजू० ।
प्रात ही लै तात आयसु नगर बाहर जाय ;
शस्त्र को अभ्यास प्रमुदित करन राघवराय । सरजू० ।
सुभग सोहत मृदुल छोटे हाथ छोटे पाँय ;
तैसे ही सर चाप छोटे रहे अंग सुहाय । सरजू० ।
परत मुख नव भानु-द्युति जनु बाल श्रम जिय लाय ;
स्वेदकन मृदु करन पोछत कुल-पिता अपनाय । सरजू० ।
कबहुँ काचा कबहुँ धावा कबहुँ थिर करि काय ;
सघन फेंकत बान सर-सर कान लौं धनु लाय । सरजू० ।
अर्धचंद्राकार शर कोउ शूल सो दरसाय ;
हरत कोउ प्रकाश कोऊ प्रभा देत बढ़ाय । सरजू० ।

---

* 'कविता-कलाप' से ।

कोउ काटत कोउ छेदत कोउ देत उड़ाय ;
कोउ बहावत कोउ जरावत राम-शर-समुदाय । सरजू० ।
एक रिस कर चलत बिसधर सरिस सर लहराय ;
एक औचक केसरी सम उचकि धावत जाय । सरजू० ।
बान को संधान दस दिस मनहुँ धावन धाय ;
देत दिकपालन सँदेसो, "रह्यो सुख नियराय" । सरजू० ।
छवि छके छिति छाँह छिन-छिन रहे जलधर छाय ;
बिजन सीतल सलिल सरसत रहि समीर डुलाय । सरजू० ।
करत यों अभ्यास रघुवर बालखेल बिहाय ;
मनहुँ जानत लेन हमको आइहैं मुनिराय । सरजू० ।
रहे सुरगण शंख भेरी बार-बार बजाय ;
हरषि जय-जय कहत "पूरण" सुमन वन बरसाय । सरजू० । *

वामन *

(१)

अदेवन की डर आनि अनीति ;
निबाहन को सुर-पालन-रीति ।
सुधारन को जन को अधिकार ;
धस्यो हरि वामन को अवतार ।

(२)

बड़े जन को नहिं माँगन योग ;
फबै छल-साधन में लघु लोग ।
असंग रमापति विष्णु अनूप ;
धस्यो एहि कारन वामन-रूप ।

* 'कविता-कलाप' से ।

(३)

भले सजि साज, चले मख-भूमि ;
पगै पग लेति धरातल चूमि ।
प्रसून घने बरसैं सुर-गोत ;
दिवाकर-तेज निछावर होत ।

(४)

जबै पहुँचे बलि भूपति-द्वार ;
गए सब मोह रहे मन वार ।
कह्यो कोउ चंद, कह्यो कोउ भान ;
कोऊ समझ्यो तप मूरतिमान ।

(५)

गयो बलि भूपति पै दरबान ;
कियो द्विज को द्रुमि रूप बखान ।
"सुनो बिनती मम दानव-भूप !
खड़ो दर पै बटु एक अनूप ।

(६)

विराजत है तनु पै मृग-छाल ;
छटा-जुत छाजत छत्र विशाल ।
कमंडल-दंड लसैं कर माँहिं ;
महाद्युति की उपमा जग नाहिं।

(७)

बड़े दृग हैं अरविंद-समान ;
प्रलंब भुजा गज-शुंड-प्रमान ।
बड़ो तपवान बड़ो गुन-गेह ;
अहै पर बावन अंगुल देह !"

(८)

गई रुचि दर्शन की अधिकाय ;
कह्यो बलि सादर लेहु बुलाय।
कियो तब वामन यज्ञ-प्रवेश ;
हुताशन जंगम सो वर वेश।

(९)

अलोल विलोचन सों बलि भूप ;
विलोकि लख्यो वह मोहन रूप।
फल्यो निज पुण्य हिए इमि जान ;
अनेक विधान कियो सनमान।

(१०)

भरे अनुराग कहे पुनि बैन ;
"गिरा मम भाग सराहि सकै न।
कृतारथ मोहिं करौ द्विज-राज :
बनै कछु याचन सों मख-काज।"

(११)

रमावर चारु - चरित्र - प्रवीन ;
धरा तब माँगि लई पग तीन।
विचार कछू, कछु जोग मिलाय;
"अरे बलि।" शुक्र कह्यो घबराय।

(१२)

"अरे मतिमान! कहाँ तुव ध्यान ;
न दे बटु को अवनी-तल-दान ?
लगै लघु देखन में यह व्यक्ति ;
विशाल पराक्रम है अरु शक्ति।"

(१३)

"न भूल अरे नृप ! है यह विष्णु :
अदेव - समूह - विनाशन जिष्णु ।
अरे पग तीन धरा मत जान :
बुरे परिणाम भरो यह दान ।"

(१४)

चली बलि यों गुरु सों कर जोरि :
कह्यो, "नहिं सत्य सकूँ प्रण तोरि ।
धरा, धन, प्राण, चहो सब जाहिं :
मही करि दान कहूँ किमि नाहिं ।"

(१५)

कियो तनु दीरघ विष्णु प्रताप :
लिए पग द्वै वसुधा नभ नाप ।
तृतीय पुजावन को नृपराय :
दियो मुद सों निज अंग नपाय ।

(१६)

सुभक्त-प्रपन्न प्रसन्न रमेश :
निवास बताय रसातल-देश ।
कह्यो, "सुनु दानिशिरोमणि ! तोहि :
मिलै वर 'पूरन' जो रुचि होहि ।"

(१७)

कह्यो बलि भूप बढ़ाय हुलास :
"यही वर माँगत हूँ सुखरास ।
प्रभात प्रभो ! मम धाम पधारि :
सदा निज-दर्शन देहु मुरारि !"

(१८)

छल्यो बलि को नहिं भूतल नाप ;
छले बलि के कर सों प्रभु आप।
सदा जय 'पूरन' विश्व महेंद्र ;
सदा जय भक्त भविष्य-सुरेंद्र !

शकुंतला-जन्म *

(१)

लहन को वर ब्रह्मपद, निज दहन को अघलेश ;
वहन को वैराग-रस में, सहन को तन क्लेश।
गहन विपिन प्रवेश करि मुनिराज विश्वामित्र ;
तप-विधान अनन्त को संकल्प कीन पवित्र।

(२)

दूब-भोजन साधि क्रम सों, बहुरि धूमाहार ;
पुनि पवन के पान ही को मान प्राणाधार।
शांत रस में जती दिन-दिन अधिक भीजत जात ;
काम छीजत जात छिन-छिन जात सूखे गात।

(३)

डिगत सो निज समुझि आसन पाकशासन लोल ;
मेनका सन यों कहे शंका प्रकासन बोल।
"करत जो तप गाधि-नंदन तासु खंडन होहि ;
अपसरा-वर-बंस-मंडन तब सराहूँ तोहि।"

(४)

देव बाला, छवि रसाला, बसीकरन-प्रवीन ;
सहित हासी चंचला-सी चपल बीड़ा लीन।
कहे गरबीले रसीले वचन रोचक वाम ;
"मैन के बस करहुँ मुनि को मैनका तब नाम।"

* 'कविता-कलाप' से।

(५)

भूरि जोबन तपोवन में रह्यो पूरि वसंत ;
हरित मंजुल सुमन-संजुल हरत मनहिं दिगंत ।
वसुमती-युवती-वसन की लसन जनु छविसार ;
हरी जासु जमीन है रंगीन बूटेदार ।

(६)

लगत हीतल मंद शीतल पवन परिमल-ऐन ;
मनहुँ रोचन मान-मोचन कहति दूती बैन ।
गुंज-धुनि अलि-पुंज छावत कुंज-कुंज मँझार ;
मंजु श्यामा अंग जनु मंजीर की झनकार ।

(७)

कोकिला, चंडूल, चातक, चक्रवाक कठोर ;
शुक, कपोत, महोक, मैना, लाल मुनिया मोर ।
विविध रंग विहंग विहरत करत सुंदर गान ;
मनहुँ मधु नृप-मंडली संगीत की गुनवान ।

(८)

नीलगाय, कुरंग, कुंजर, आदि पशु-समुदाय ;
छेम सों विहरत परस्पर प्रेम-भाव बढ़ाय ।
सचिव तप को पाय जनु आदेश पावन देश ;
सत्त्व गुणमय चरित कीन्हें त्यागि दुर्गुण लेश ।

(९)

मेनका जब कीन वन छवि लीन माहिं प्रवेश ;
कहत देखनहार है शृंगार नारी-वेश ।
करत कोउ अनुमान देवी विपिन की द्युतिमान ;
कहत कोऊ है महीतल मध्य शीतल भान ।

(१०)

भ्रुकुटि धनु को डरत नाहीं अरत शुक ललचाय ;
चहत अधरन चोंच मारन बिंब को भ्रम खाय ।
शंक चंपक-रंग की तजि चंचरीक सुपुंज ;
भूलि अंग सुगंध पै लगि संग गुंजत गुंज ।

(११)

द्रुमन सों झरि सुमन सोहैं मनहुँ वन-देवीन
अंगना के पंथ डारे पाँवड़े रंगीन ।
तरल नवदल कलित मुकुलित तरु-लता लहराय,
पुलकि कर सों मनहुँ स्वागत करति मुद सरसाय ।

(१२)

आन बान समेत यहि विधि रूपमान-निकेत ;
साधुराज समीप पहुँची काज साधन हेत ।
रथ मनोरथ पैक पग, गजराज गति, मन बाजि ;
जनु अनंग चढ़यो अनी चतुरंगिनी निज साजि ।

(१३)

बंद लोचन, मंद स्वासा, तपन तेज अमंद ;
लीन लखि आनंद में मुनि द्वंदहीन सुछंद ।
अपसरा सुमनोहरा तब करन लागी गान ;
पवन पथ जनु सैन पठई दुर्ग दुर्गम जान ।

(१४)

गई छूटि समाधि उग्र उपाधि गुनि मुनि-भूप ;
अधखुले दृग यों लखैं मृगलोचनी को रूप ।
करत जिमि बिसराम अपने धाम औचक वीर ;
पाय खटका खोलि अर्ध कपाट झाँकै धीर ।

(१५)

बीन के जुग तुंब ही तंबूर हू बिन तार,
कंबु में कलकंठरव कलहंस में झनकार ;
नचत खंजन कंज पल्लव करत रंजन गान *,
वीतराग छके निरखि संगीत को सामान ।

(१६)

पन्नगी, सुविहंग, कुंजर, केसरी, इकसंग,
वसत हिल-मिल, लसत निर्मल सत्वगुन को रंग ;
मानि मंत्रण अतन को मुनि तपन-काज प्रवीन,
तिय-तन-नूतन तपोवन रचन को मन कीन ।

(१७)

अलंकार प्रकार तजि बरनहुँ बिना विस्तार,
संग मुनिवर अंगना को कीन्ह शृंगाकार ;
बढ़ी सुरपुर बासिनी की वासना उर धाम,
कामदा सब कामिनी की करी पूरन काम ।

(१८)

गर्विता करि गर्भ धारन अनत कीन पयान,
जाय कन्या रूप-धन्या फेरि पहुँची आन ;
चाव सों प्रिय हाव सों अति भरी भाव विनोद,
देन चाही बालिका द्युति-मालिका मुनि-गोद ।

(१९)

देखि फल तप-भंग तरु को सामने मुनिराय,
फेरि लीन्हों बदन, कर सों अरुचि अति दरसाय ;

* इन तीन चरणों में रूपकातिशयोक्ति द्वारा अंग-वर्णन है ।

कहाँ, वेश्या ! कहाँ 'पूरन' वशी विश्वामित्र,
अचित चित में खचित करिवो मैन-काठिन चित्र।

हा गोखले !

सज्जनो, देशानुरागी भाइयो, दीन भारत के हितैपी भाइयो;
क्या कहें किससे कहें, कैसे कहें ? घोर दुख चुपचाप भी कैसे सहें।
आज अपना देश दुख का धाम है, हाय है अरु गोखले का नाम है;
छा रहा हा हंत ! हाहाकार है, देश क्या संसार शोकागार है।
हाय!रे दुर्भाग्य भारत ! क्या हुआ ? तू बहुत है आज आरत,क्या हुआ ?
हाय ! थी कैसी भयंकर वह घड़ी, तार से जब देश पर बिजुली पड़ी।
गोखले ! तुम हाय सुरपुर को चले ! गोखले ! हा गोखले ! हा गोखले !
वह तुम्हारी योग्यता, वह विज्ञता, वह तुम्हारी उग्रता नीतिज्ञता।
वह तुम्हारी देश-सेवा-धीरता, वह तुम्हारी कार्य-रण की वीरता;
वह तुम्हारी प्रौढ़ भाषण-दक्षता, वह तुम्हारी वाद की प्रत्यक्षता।
वह तुम्हारा काटना प्रतिवाद का, वक्तृता में गुण महान प्रसाद का;
फ़र्गुसन् कालिज में वह अध्यापकत्व,दीर्घ उस निस्स्वार्थ सेवा का महत्त्व।
बोध आशय-पूर्ण वह फ़ाइनेंस* का,वह महाउत्कर्ष कॉमनसेंस† का;
घोर एक्स्ट्रीमिस्ट‡ के उन्माद पर, सुष्ठु वह आलोचना कल्यान कर।
सत् स्वदेशी पर परम उपदेश-संग, देश-सेवा का सिखाना रंग-ढंग;
वह तुम्हारी काउंसिल की मेंबरी, सुज्ञता, आतंक, शोभा से भरी।
कांग्रेस की उच्च वह अध्यक्षता, भेद के दूरीकरण में दक्षता;
क्रूर साउथ आफ्रिका को शुभगमन, मंद शासन के उपद्रव का दमन।
साक्षिता रायल कमीशन के समक्ष,देश का और सत्य का परिपूर्ण पक्ष;
देशव्यापी एजुकेशन ×के लिए, कार्य जो पुरुषार्थ के तुमने किए।
मेंबरी रायल कमीशन की प्रसिद्ध, कर रही थी जो हमारा कार्य सिद्ध;
हाय ! वे सब गुण तुम्हारे हे उदार, याद आते इस घड़ी हैं बार-बार।

---

* अर्थ-विभाग। † बुद्धि ‡ गरम दलवाले। × शिक्षा।

हाय प्यारे गोखले ! क्या हो गए ? रत्न भारत के, कहाँ तुम खो गए ?
दुख चले आते हैं आए दिन नए, देवता इस देश के हा सो गए !
भूमि ऐसी है अभागी देश की, है दुहाई कारुणीक महेश की !
नाथ ऐसी हाय ! क्यों त्यागी दया ? लाल मेरी गोद का हा ! छिन गया।
हाय ! मेरे कौन-से वह पाप हैं ? मिल रहे जिससे नए संताप हैं।
रत्न कितने खो चुकी हूँ गोद के; योग हैं आने न पाते मोद के।
गोखले ! हा पुत्र ! मेरे गोखले ! तज मुझे मझधार सुर-पुर को चले।
मातु-सेवा को कमर तुम थे कसे; लाल मेरे तुम अचानक चल बसे।
प्राणप्रिय हा पुत्र ! मेरे लाड़ले; गोखले ! हा गोखले ! हा गोखले !
दीर्घ पोलीटिक्स* का आकाश-मात्र; था तुम्हीं से कांति-पूर्ण प्रकाशपात्र।
हो गया तू सूर्य मेरा अस्त हाय ! हो गया उत्साह मेरा ध्वस्त हाय !
जग अँधेरा है दया की देर है; ईश के घर में बड़ी अंधेर है।
वत्स ! नैनों के सितारे गोखले ! गोखले ! गोपाल प्यारे गोखले !
जो कहूँ मेरा भवन उद्यान है; कौंसिलों की कुंज शोभा-स्थान है।
थे सुरीले पुत्र तुम कोकिल-समान; देश-हित का था तुम्हारा मंजु गान।
क्या भला विपरीतता मुँह खोलती ? थी सदा तूती तुम्हारी बोलती।
मुझपै टूटा हाय शोक-पहाड़ है; हो गया एक आन में पतझाड़ है।
पीट लूँ छाती व्यथा से शिर धुनूँ ; क्या कथा धीरज धराने की सुनूँ ?
खो गया मेरा अरे गोपाल कृष्ण ! हाय ! श्रीजगदीश, हे गोपाल कृष्ण !
वह तुम्हारी शील-गुण की संपदा ; जो मुझे आशा बँधाती थी सदा।
इस वयस में उग्र यह करतूत है ; धन्य हूँ जो गोखले-सा पूत है !
हाय सो आत्मा अभी मुरझा गई ! चल बसे तुम छा गई करुणामई।
चार ही दिन के दिखाकर चोचले ; गोखले तुम हाय निष्ठुर हो चले।
क्या हुए मेरे कलेजे के पले ? गोखले ! हा गोखले ! हा गोखले † !

---

* राजनीति। † जहाँ तक हमें विदित है, 'पूर्ण' जी की यह अंतिम रचना थी।